Downloaded from https:// www.studiestoday.com

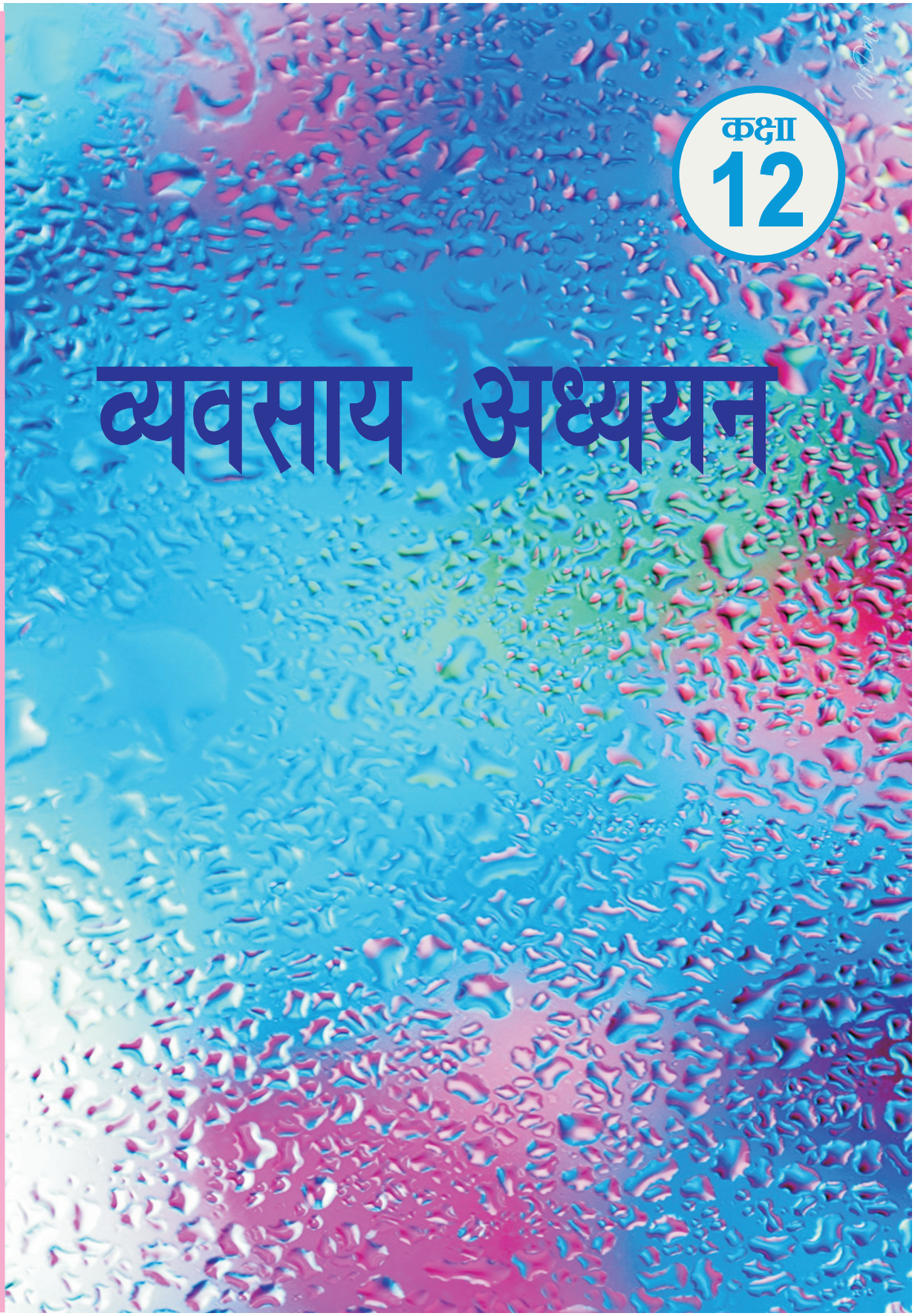

कक्षा 12
व्यवसाय अध्ययन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यवसाय अध्ययन

कक्षा – 12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : व्यवसाय अध्ययन

कक्षा – 12

संयोजक :– डॉ. लादू लाल शर्मा, व्याख्याता
व्यवसाय प्रशासन विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा

लेखकगण :– 1. डॉ. अशोक केवलरमानी, उप प्राचार्य
एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

2. प्रोफेसर विजय श्रीमाली, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
व्यवसाय प्रशासन विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. डॉ. कृष्ण मुरारी मोदी, व्याख्याता
व्यवसाय प्रशासन विभाग,
स्वामी विवेकानंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खेतड़ी, झुंझुनु

4. डॉ. गोविन्द नारायण पुरोहित, व्याख्याता
व्यवसाय प्रशासन विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, ओसियाँ जिला–जोधपुर

5. श्रीमती ज्योति शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, सी–स्कीम, जयपुर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यक्रम समिति

पुस्तक : व्यवसाय अध्ययन

कक्षा – 12

संयोजक :– प्रो. विजय श्रीमाली, डीन वाणिज्य विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

सदस्य :–

1. डॉ. जी.एन. पुरोहित, व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, भोपालगढ़, जोधपुर

2. श्री गोपाल कृष्ण पाराशर, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय, वैशालीनगर, अजमेर

3. श्री महेश बालक शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय उ.मा. विद्यालय, भैसलाना (पावटा), प्रागपुरा, जयपुर

4. श्रीमती ज्योति शर्मा, प्रधानाचार्या
राजकीय बालिका उ.मा. विद्यालय, सी–स्कीम, जयपुर

5. श्री सुखलाल त्रिवेदी, व्याख्याता
राजकीय उ.मा. विद्यालय, सलूम्बर, उदयपुर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्राक्कथन

व्यवसाय अध्ययन कक्षा–12 के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी पाठ्य पुस्तक प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता है। पुस्तक लेखन के समय हमारे केन्द्र में मुख्य रूप से वे विद्यार्थी रहे हैं जो वाणिज्यिक दृष्टिकोण से व्यावसायिक घटनाओं के संबंध में अवधारणात्मक समझ विकसित करने हेतु अध्ययन कर रहे हैं।

व्यवसाय का सीधा संबंध मनुष्य, समाज, सरकार, सरकारी नीतियां एवं अर्थतंत्र की घटना से होता है। मनुष्य के विचार सदैव परिवर्तनशील होते है। इसका परिवार व समाज की फेशन आवश्यकता, माँग, पूर्ति आदि पर प्रभाव पड़ता है, इसी कारण व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया गतिशील रहती है। प्रबंधकीय ज्ञान के विस्तार ने व्यवसाय के विकास को प्रभावित किया है। अभिप्रेरणा व नेतृत्व का महत्व वर्तमान परिपेक्ष्य में बहुत बढ़ गया है। विपणन एवं विज्ञापन व्यावसायिक जगत में अपनी पकड़ बना चुका है। ऐसे प्रतिदिन परिवर्तन हो रहे व्यावसायिक वातावरण में वाणिज्यिक गतिविधियों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

देश एवं समाज को सभी वर्गो को सुरक्षा देने के लिए सरकार को नियमों एवं अधिनियमों द्वारा व्यवसाय को नियंत्रित रखते हुए विकास को ध्यान रखना होता है। बीमा व्यवसाय को जोखिम से सुरक्षा प्रदान करता है तथा उद्यमिता प्रोत्साहन योजनाएँ साहसियों को विकास हेतु प्रेरित करती है। व्यवसाय को लाभ कमाने के साथ साथ सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी करना होता है। नैतिकता समाज एवं व्यवसाय के मध्य सम्बंधों को प्रगाढ़ कर मजबूती एवं स्थिरता प्रदान करती है। जी.एस.टी. कर सुधारों की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। प्रस्तुत पुस्तक में सभी विषयों पर विद्यार्थियों को अध्ययन सामग्री उपलब्ध करायी गई है।

अपेक्षा हैं कि विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की प्रतिक्रियाएं एवं सुझाव पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने में सहायक होंगे।

संयोजक एवं लेखकगण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा–12

विषय : व्यवसाय अध्ययन

समय : 3.15 घण्टे

पूर्णांक : 100

क्र.सं.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	सैद्धांतिक	56
2.	व्यावहारिक	8
3.	केस स्टडी	16
4.	सत्रीय मूल्यांकन	20

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
1.	प्रबन्ध – अर्थ, परिभाषा, प्रकृति, क्रियात्मक क्षेत्र – प्रबंध प्रक्रिया / कार्य एवं सिद्धांत – प्रबंधकीय भूमिका – उभरते आयाम : सोद्देश्य प्रबंध, अपवाद, निहित प्रबंध, व्यूहरचनात्मक प्रबंध, संयोगिक प्रबंध, तनाव प्रबंध	60	16
2.	अभिप्रेरणा एवं नेतृत्व – अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता, महत्व, तकनीकें – विचारधाराएँ : परिचयात्मक * एक्स, वाई, जेड विचारधारा * मसलों की आवश्यकता क्रमबद्धता विचारधारा * हर्जबर्ग की द्वी घटक विचारधारा नेतृत्व : अर्थ, परिभाषा, नेतृत्व, गुण शैलियाँ	30	8
3.	विज्ञापन : अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, माध्यम– लाभ, दोष, आवश्यकता, महत्व, तकनीकें	30	8

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
	विपणन प्रबंध : अर्थ, परिभाषा, कार्य प्रक्रिया एवं महत्व विक्र संवर्धन : परिचय, महत्व, प्रकार या विधियाँ		
4.	व्यापारिक विधि : परिचय * व्यावसायिक विधि – आशय एवं क्षेत्र * अनुबंध अधिनियम – शब्दावली * अनुबंध – वैधानिक प्रावधान	60	16
5.	उद्यमिता : परिचय, प्रकृति, महत्व, बाधाएँ उद्यमी के गुण, प्रकार, ग्रामीण तथा महिला उद्यमिता उद्यमिता विकास कार्यक्रम – सरकारी प्रयास	30	8
6.	बीमा : परिचय, क्षेत्र, प्रकार, उद्देश्य / कार्य आवश्यकता / महत्व, सामाजिक सुरक्षा बीमा एजेन्ट व कार्य	30	8
7.	निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व एवं नैतिकता : सी.एस.आर.– परिचय, वैधानिक स्थिति, महत्व, व्यावसायिक नैतिकता– परिचय, आवश्यकता एवं महत्व लघु उद्योग, कॉरपोरेट क्षेत्र में नैतिकता एवं जीवन मूल्य	30	8
8.	भारतीय जीवन दर्शन एवं नैतिक शिक्षा वस्तु एवं सेवा कर (विधेयक) / कानून : परिचय, महत्व कर प्रणाली, चुनौतियाँ	30	8
		300	80

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुक्रमणिका

अध्याय सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	प्रबंध : परिचय, प्रकृति, महत्व एवं क्षेत्र	1–13
2.	प्रबन्ध : प्रक्रिया या कार्य, प्रबंधकीय भूमिका एवं स्तर	14–21
3.	प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं तकनीकें	22–32
4.	अभिप्रेरणा– अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व, तकनीक एवं विचारधाराएँ	33–41
5.	नेतृत्व– अर्थ, परिभाषा, नेतृत्व गुण, शैलियाँ	42–46
6.	विपणन– अर्थ, परिभाषा, कार्य, प्रक्रिया एवं महत्व	47–53
7.	विक्रय संवर्द्धन– परिचय, महत्व, प्रकार एवं विधियां	54–58
8.	विज्ञापन– अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, माध्यम– लाभ क्षेत्र, महतव, तकनीकें	59–68
9.	व्यापारिक विधि एवं अनुबंध अधिनियम	69–74
10.	अनुबंध : वैधानिक प्रावधान	75–86
11.	उद्यमिता : परिचय, प्रकृति, महत्व एवं बाधाएँ	87–94
12.	उद्यमिता : विकास कार्यक्रम – अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व	95–98
13.	बीमा : परिचय, महत्व, सामाजिक सुरक्षा एवं बीमा एजेन्ट	99–117
14.	प्रबंध का सामाजिक उत्तरदायित्व एवं निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व	118–127

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय– 1

प्रबन्ध : परिचय, महत्व प्रकृति एवं क्षेत्र
Management : Introduction, Nature, Significance and Scope

दो या दो से अधिक का जुड़ना **'बन्ध'** कहलाता है (जैसे दो परमाणु बन्ध कर एक अणु बन जाता है), इस 'बन्ध' के आगे संस्कृत का उपसर्ग 'प्र' लगने से (बल–प्रबल एवं ख्यात–प्रख्यात बन जाता है) प्रबन्ध बन जाता है।

दो या दो से अधिक व्यक्ति बन्धकर (जुड़कर) समूह या संगठन बनाते है इस बन्धन से ही परिवार व समाज की रचना हुई है। परिवार के जीवन यापन, समाज में रहन–सहन के तरीके एवं प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का प्रयोग करने की तकनीक से सभ्यता व संस्कृति का निर्माण होता है। व्यक्ति, परिवार, समाज या संगठन अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए संसाधनों का प्रयोग करता है, किन्तु इन संसाधनों का प्रयोग कुशलता से हो इस हेतु प्रयुक्त ज्ञान–विज्ञान, दर्शन एवं कौशल (कला, अनुभव, चातुर्य) को ही प्रबन्ध व प्रबन्ध अध्ययन माना गया हैं अर्थात् प्रबन्ध का प्रादुर्भाव मानव सभ्यता के प्रादुर्भाव व विकास से जुड़ा हुआ है।

सम्पूर्ण विश्व में मानव सभ्यता की प्रथम विकसित नगरीय सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की सिन्धु घाटी (इण्डस वैली) की सभ्यता को ही माना जाता है, जिसे वर्तमान में उसके नगरों के नाम मोहनजोदड़ो, कालीबंगा एवं हड़प्पा सभ्यता/संस्कृति के नाम से जाना जाता हैं। भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान (IIT) खड़गपुर एवं भारतीय पुरातत्व विभाग के हाल ही में सम्पन्न किए गए शोध अध्ययन एवं विश्व प्रसिद्ध शोध पत्रिका–नेचर (Nature-May, 2016) में प्रकाशित शोध पत्र के अनुसार – यह सिन्धु घाटी सभ्यता 8,000 वर्ष पूर्व अस्तित्व में आयी थी और सम्भवतः इससे भी प्राचीन हो। इस शोध अध्ययन एवं उपलब्ध अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि अभी तक प्राचीनतम माने जाने वाले मिस्र व मेसोपोटामिया सभ्यता से भी इण्डस वैली सभ्यता 3000 वर्ष प्राचीन है (मिस्र व मेसोपोटामिया की सभ्यता अध्ययन में भी सिन्धु घाटी सभ्यता में प्रयुक्त सामग्री के अवशेष/चिन्ह प्राप्त हुए है।) हमारे लिए यह आत्मगौरव का विषय है कि हमने जिस धरा पर जन्म लिया है वहाँ 8000 वर्ष पूर्व विकसित सभ्यता थी। भारतीय उपमहाद्वीप को सभ्यता की जननी कहा जाता है।

8000 वर्ष पूर्व विकसित सिन्धु घाटी सभ्यता में वस्त्र बनाए जाते थे, मोहनजोदड़ों की बड़ी ईमारतों में अन्नागार, कालीबंगा में नक्काशीदार ईंटों का प्रयोग एवं प्राचीनतम बन्दरगाह के प्रमाण भी 'लोथल' में प्राप्त हुए हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता में नगरीय विकास भी श्रेष्ठ था। इस सभ्यता के काल में आसपास के देशों से व्यापार होता था– अर्थात् 8000 वर्ष पूर्व भी प्रबन्ध का प्रयोग पाया जाता है, प्रबन्ध के बिना विशाल अन्नागार, वस्त्र निर्माण, लोथल बन्दरगाह की स्थापना सम्भव नहीं मानी जा सकती। मिस्र के पिरामिड़, कम्बोडिया का प्राचीनतम विशाल हिन्दु मन्दिर एवं विश्व की अनेक प्राचीनतम धरोहरों का अवलोकन करने पर हमें उनके निर्माण एवं प्रयोग के विवरण पर आश्चर्य होता है इसका तात्पर्य है कि प्राचीनतम सभ्यताओं के निर्माण एवं विकास में 'प्रबन्ध' का प्रयोग हुआ था। अतः 'प्रबन्ध' विषय भी इतना ही प्राचीन है जितना मानव सभ्यता का विकास।

पाषाण युग से वर्तमान सूचना प्रौद्योगक युग के विभिन्न कालखण्डों में प्रयुक्त संसाधन (सामग्री–Material, पूँजी–Money, पद्धतियाँ–Methods मानव–Man, मशीन–Machine, बाजार–Market) लगभग समान ही रहे है, केवल उनके प्रयोग के तरीके, विधियाँ, पद्धतियाँ तथा मात्रा ही शोध, अनुभव एवं आवश्यकता के आधार पर बदलते रहे हैं।

प्रत्येक संसाधन की प्रकृति, उपयोगिता भिन्न होते हुए भी उनकी कुछ सीमाएँ होती है, लेकिन व्यापक एवं वृहत स्तर पर कार्य करने के लिए संसाधनों का मिश्रित अर्थात् साथ–साथ (बन्ध/जुड़) प्रयोग करना पड़ता है।

जीवन में सरलता एवं सुविधा, जीवन में समृद्धि तथा विस्तार प्रत्येक युग में मानव का स्वभाव व लक्ष्य रहा है। इसकी प्राप्ति हेतु मानव मस्तिष्क विभिन्न तरीकों से प्रकृत्ति प्रदत्त संसाधनों का संयोजन, प्रयोग एव शोध करता रहा है।

विविध संसाधनों को जोड़ते समय उसकी उपादेयता एवं सीमाओं का ध्यान रखते हुए लक्ष्य अनुरूप सन्तुलित रखना पड़ता है, इस कुशलता के लिए विशेष ज्ञान–चातुर्य की आवश्यकता पड़ती है। **इस अपेक्षित ज्ञान–चातुर्य की प्राप्ति (शिक्षण–प्रशिक्षण) प्रबन्ध अध्ययन से ही हो सकती है ।**

मानव सभ्यता विकास क्रम के प्रत्येक खण्ड में समाज व संगठन की देश–काल–परिस्थितियों में आवश्यकताएं एवं लक्ष्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परिवर्तित होते रहे है, उसके अनुरूप प्रबन्ध का अर्थ, कार्य, सिद्धान्त, कार्यक्षेत्र, महत्व भी बदलता रहा है। प्रबन्ध के ज्ञान का भी अनुभव एवं अनुसंधान के आधार पर क्रमबद्ध विकास हुआ है इसी आधार पर प्रबन्ध की अवधारणाएँ, सिद्धान्त, प्रक्रिया का प्रादुर्भाव, विकास तथा प्रबन्धकीय तकनीकें विकसित हुई है।

संगठित समूह व संसाधनों का लक्ष्य–जीविका उपार्जन करना, जीवन की सुविधाएँ प्राप्त करना, सेवा करना, लाभ कमाना अथवा अन्य कुछ भी हो सकता है जिसके लिए उन्हें कुछ उपक्रम (उद्योग) करना पड़ता है। उपक्रम का स्वरूप व कार्यक्षेत्र संगठन के लक्ष्य व वातावरण से प्रभावित होता है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में आप देख सकते हैं कि आपके जीवन की समस्त आवश्यकताओं व इच्छाओं को पूरा करने के लिए विश्व में कितने उपक्रम या संगठन काम कर रहे हैं। प्रातः जीवनचर्या प्रारम्भ करने पर दन्तमंजन से लेकर रात्रि निद्रा तक के साधन या सुरक्षा यन्त्र या प्रातः पुनः उठने के लिए अलार्म तक की समस्त आवश्यकताओं की वस्तुएँ या सेवाएँ व्यावसायिक संगठन, सरकार या सामाजिक संस्थाएँ उपलब्ध करवा रहे हैं। आपकी वर्तमान व भावी आवश्यकताओं को जानना, समझना, आपके बजट के अनुरूप उत्पाद/सेवा तैयार करना, आप तक पहुँचाना तथा विक्रय व्यवस्था करना तत्पश्चात् ग्राहक से उसके अनुभव संग्रहित करना। यह समस्त क्रियाएँ एक मात्र तत्त्व के कारण सम्भव हो पा रही है वह है – **प्रबन्ध** ।

विद्यार्थी व शिक्षक से निवेदन– विद्यार्थियों आप एवं आपके परिवार द्वारा उपभोग की जा रही वस्तुओं व सेवाओं की सूची बनाए तत्पश्चात उसके सामने उसका निर्माण करने वाले निर्माता, आप तक पहुँचाने वाले (विपणन कर्ता) तथा सेवा प्रदाता का नाम, पता लिखे। शिक्षक महोदय उस सूची में सर्वाधिक लोक प्रिय या उपयोग की जाने वाली वस्तु/सेवा के निर्माता/विपणन कम्पनी की पूरी कार्य प्रणाली अर्थात प्रयुक्त संसाधन कारखाना, निर्माण प्रक्रिया, पैकिंग एवं बाजार व ग्राहक तक पहुँचने की समस्त गतिविधियों के सम्पन्न होने की प्रक्रिया व कार्यप्रणाली तथा उसमें प्रबन्ध की उपयोगिता का वर्णन करें एवं समझायें। यह कम्पनी का वर्तान्त या विवरण अध्ययन ही आजकल Case Study के रूप में प्रचलित हैं।

'प्रबन्ध ही पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों (मानव), पूंजी (धन), सामग्री, मशीन–उपकरण, उत्पादन पद्धतियों एवं बाजार जैसे संसाधनो को एकत्र करना एवं उनके बीच समुचित सामजंस्य स्थापित करता है। प्रबन्ध बहुत शक्तिशाली एवं गत्यात्मक तत्व है जो देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत व गतिशील बनाता है।

हमारे समाज में व्यक्तियों व परिवारों की दशा व दिशा बदलने; स्वस्थ व उच्च जीवन स्तर देने, युवा शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार देने व काम धन्धा लगाने, राष्ट्र को सुरक्षा देने तथा विश्व पटल पर उत्तरोत्तर आर्थिक व तकनीकी प्रगति की ओर ले जाने वाला एक मात्र महत्वपूर्ण तत्व है –**"प्रभावी प्रबन्ध एवं कुशल प्रबन्धक।"**

संगठन द्वारा प्रयुक्त संसाधनों में 'मानव' एक मात्र सजीव संसाधन है शेष समस्त संसाधन – पूंजी, मशीन, पद्धतियां एवं बाजार निर्जीव है जिनका प्रयोग मानव ही करता है।

प्रबन्ध को समझने के लिए इन दो वर्गों (सजीव व निर्जीव) के स्वभाव, इनकी उपयेागिता एवं प्रयुक्त करने की प्रणाली को जानना आवश्यक है। इस पृथ्वी पर मानव सबसे जटिल प्राणी है, जिसके स्वभाव एवं प्रकृति को पूर्णतः समझना असंभव है। मनुष्य स्वभाव से मूलतः आलसी होता है एवं उसका व्यवहार प्रति पल बदलता है तथा दुसरे द्वारा सौंपे गए कार्य को (ठीक वैसे ही नहीं कर पाता है) भी पूर्णतः सौंपने वाले की उम्मीद/आशानुरूप नहीं कर पाता है। अर्थात् किसी संगठन में कार्यरत मानव संसाधन–कर्मचारी एवं श्रमिक से कार्य करवाना तथा पूर्ण मापदण्ड के अनुरूप करवाना बहुत कठिन व चुनौतीपूर्ण होता है। इसलिए प्रबन्ध की सर्वाधिक प्रचलित परिभाषा या अर्थ इसी पर केन्द्रित है कि – **अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने की कला ही प्रबन्ध है।**

पूर्ण प्रतियोगिता के वैश्विक बाजार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की क्रान्ति ने दूसरे संसाधनों के प्रयोग को चुनौतिपूर्ण बना दिया है। वर्तमान में चीन के निर्मित उत्पाद सबसे सस्ते होने के कारण पूरे विश्व में बिक रहे हैं। इसलिए उद्योगों द्वारा निर्मित उत्पाद व सेवा की उत्पादन लागत को न्यूनतम रखना सबसे महत्वपूर्ण चुनौति बन गई है। उत्पादन लागत में कमी या नियन्त्रण करना कोई जादू नहीं इसके लिए संसाधनों का वैज्ञानिक विधियों द्वारा कुशलतम व मितव्ययी तरीके से प्रयोग करना पड़ता है। प्रबन्ध का दूसरा प्रचलित अर्थ इसी पर केन्द्रित है कि –**न्यूनतम प्रयास या लागत से अधिकतम उत्पादन या लाभ प्राप्त करना ही प्रबन्ध है।**

संसाधनों के प्रयोग के भी भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण व लक्ष्य है। प्रकृति प्रदत्त सामग्री (Raw Material) व पूँजी का मितव्ययिता पूर्वक प्रयोग करना, उपलब्ध भौतिक संसाधन – कारखाना भवन, मशीन तथा मानव का अधिकतम दोहन या प्रयोग करना, (कारखाने का 24 घण्टे तीन पारी में संचालन।) उत्पादन विधियों में नवीनतम तकनीक का प्रयोग व नए–नए बाजार का सृजन करते हुए उसका अधिकतम दोहन करना। प्रबन्ध या प्रबन्धक का प्रत्येक संसाधन के लिए भिन्न दृष्टिकोण रहता है। यही नहीं प्रबन्धक के इस लक्ष्य –'न्यूनतम प्रयास/लागत पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अधिकतम उत्पादन' की प्राप्ति के लिए उसे कई कार्य या क्रियाएँ करनी पड़ती है इसलिए प्रबन्ध को प्रबन्धक द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों से भी पहचानते हैं कि – **प्रबन्ध निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु नियोजन, संगठन, नियुक्ति, निर्देशन एवं नियन्त्रण की प्रक्रिया है।**

प्रबन्ध : परिभाषाएँ

उपरोक्त परिचयात्मक वर्णन से सम्भवतः प्रबन्ध का सामान्य अर्थ समझ में आया होगा। चूँकि प्रबन्ध का प्रयोग सर्वव्यापक एवं सार्वभौमिक है। इसलिए इसे कई विद्वानों ने अलग–अलग तरीके व दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ इस प्रकार है–

मेरी पार्कर फोलेट (Mary Parker Follt) के अनुसार ''प्रबन्ध दूसरों से कार्य करवाने की कला है।''

लारैन्स एप्पले (Lawrence Appley) ने भी इसी प्रकार की परिभाषा दी है। "अन्य व्यक्तियों के प्रयासों से परिणाम प्राप्त करना ही प्रबन्ध है।"

हेराल्ड कुंट्ज (Harold Koontz) ने इस परिभाषा में थोड़ा संशोधन किया है और लिखा, "प्रबन्ध औपचारिक रूप से संगठित समूहों के द्वारा एवं समूहों में कार्य करवाने की कला है।"

क्रीटनर (Kretiner) के शब्दों में, "प्रबन्ध परिवर्तनशील वातावरण में दूसरों के साथ तथा दूसरों से कार्य करवाने की प्रक्रिया है। सीमित संसाधनों का प्रभावी एवं कुशलतापूर्वक उपयोग करना इस प्रक्रिया का आधार है।"

ग्लुएक (Glueck) के शब्दों में, "संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय एवं भौतिक साधनों का प्रभावकारी उपयोग ही प्रबन्ध है।"

वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता **टेलर** (F.W. Taylr) के अनुसार, "प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप क्या करना चाहते हैं और तत्पश्चात् यह सुनिश्चित करना कि वह कार्य सर्वोत्तम एवं मितव्ययितापूर्ण विधि से किया जायें।"

स्टेनले वेन्स (Stanley Vance) के अनुसार, "प्रबन्ध पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से निर्णय लेने तथा मानवीय क्रियाओं पर नियन्त्रण करने की प्रक्रिया है।"

प्रो. क्लग (Clough) के शब्दों में, "प्रबन्ध निर्णय करने तथा नेतृत्व प्रदान करने की कला तथा विज्ञान है।"

मेक्फारलैण्ड (Mc Farland) के अनुसार, "प्रबन्ध....वह प्रक्रिया है जिसमें प्रबन्धक समन्वित एवं सहकारी मानवीय प्रयासों की सहायता से उद्देश्यपूर्ण संगठनों का सृजन, निर्देशन, संरक्षण तथा संचालन करते हैं।"

पीटरसन एण्ड प्लाउमैन के अनुसार–"प्रबन्ध का अर्थ उस तकनीक से है, जिसके द्वारा एक विशिष्ट ज्ञान एवं मानव समुदाय के उद्देश्यों का निर्धारण, स्पष्टीकरण एवं क्रियान्वयन किया जाता है।

थिरोफ, क्लेकैम्प एवं ग्रीडिग के शब्दों में–"प्रबन्ध नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियंत्रण द्वारा संस्था के संसाधनों के आवंटन की प्रक्रिया है, ताकि ग्राहकों की इच्छित वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन कर, संस्था के उद्देश्यों को पूरा किया जा सकें। इस प्रक्रिया में कार्य का निष्पादन प्रतिदिन परिवर्तनशील व्यावसायिक वातावरण में संगठन के कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है।"

वीहरिच तथा कुइंज (Weihirich and Knoontz) के अनुसार, "प्रबन्ध एक ऐसे वातावरण का निर्माण करने तथा उसे बनाये रखने की प्रक्रिया है जिसमें लोग समूह में कार्य करते हुए चयनित उद्देश्यों को दक्षतापूर्वक पूरा करते हैं।"

लुईस ए. एलन के शब्दों में – "प्रबन्ध व्यवस्थित ज्ञान का समूह है जो व्यावसायिक पेशे के सन्दर्भ में प्रमापित सामान्य प्रबन्ध के कुछ सिद्धान्तों पर आधारित है।"

निष्कर्ष : उपरोक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध एक कला एवं विज्ञान है जो अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने, लागतों को कम करने, मानवीय प्रयासों की सहायता से संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में नियोजन से लेकर नियंत्रण तक समग्र क्रियाओं में निहित है।

प्रबन्ध : विशेषताएँ एवं लक्षण

प्रबन्ध को विद्वानों द्वारा विभिन्न तरीके से परिभाषित किया गया है इनका विश्लेषण करने पर प्रबन्ध के निम्न लक्षण या विशेषताएँ ज्ञात होती हैं –

1. प्रबन्धक अन्य लोगों से कार्य करवाते हैं और वे स्वयं प्रबन्धकीय कार्य (नियोजन, संगठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण) करते हें।
2. प्रबन्ध कार्य निरुद्देश्य या लक्ष्यहीन नहीं होता है। प्रबन्ध के पूर्व निर्धारित कुछ उद्देश्य होते हैं।
3. प्रबन्ध कार्य औपचारिक समूहों में सम्पन्न किया जाना सहज होता है। असंगठित व्यक्तियों के समूह केवल भीड़ होती है जिनका प्रबन्ध करना कठिन होता है।
4. प्रबन्ध एक मानवीय कार्य है। प्रबन्ध कार्य समाज के श्रेष्ठ या विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला कार्य है। ऐसे व्यक्ति (प्रबन्धक) विशिष्ट ज्ञान, अनुभव एवं अनुभूति वाले होते हैं।
5. यह एक अत्यधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है। यह असंगठित संसाधनों का उपयोग कर उपयोगी उत्पादों/सेवाओं का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उत्पादन करने में सक्षम है।

6. प्रबन्ध एक सृजनात्मक कार्य है। यह साधनों की प्रभावशीलता एवं दक्षता को बढ़ाकर अधिकाधिक उत्पादकता का सृजन करने में योगदान देता है।

7. प्रबन्ध कुछ सामान्य सिद्धान्त है। ये सिद्धान्त विभिन्न शिक्षाविदों, चिन्तकों एवं प्रबन्धकों ने गहन शोध व अनुभव के आधार पर प्रतिपादित किये हैं.

8. प्रबन्धक में नेतृत्व करने की क्षमता होनी आवश्यक है।

9. प्रबन्धक जो भी करता है निर्णयन द्वारा ही करता है। कभी कुछ कार्य करने के सम्बन्ध में तो कभी किसी कार्य को टालने के सम्बन्ध में निर्णय लेना ही पड़ता है।

10. प्रबन्धक दूसरों से कार्य करवाने हेतु अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीनस्थों को सौंपते हैं। वे अधीनस्थ पुनः अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीनस्थों को सौंपते हैं। फलतः प्रत्येक अधीनस्थ अपने अधिकारों के प्रति उत्तरदायी भी बन जाता है। इस प्रकार संस्था के प्रत्येक स्तर पर अधिकार एवं दायित्व की श्रृंखला का निर्माण हो जाता है।

11. प्रबन्ध कार्य संस्था के अन्दर व बाहर के वातावरण से प्रभावित होता है तथा उसे प्रभावित करता है। आन्तरिक वातावरण में नियोक्ता–कर्मचारी तथा संसाधन होते हैं जबकि बाह्य वातावरण में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा तकनीकी वातावरण होता है। यह सम्पूर्ण वातावरण एवं प्रबन्ध कार्य एक–दूसरे को परस्पर रूप से प्रभावित करते रहते हैं।

12. प्रबन्ध संस्था के मानवीय प्रयासों एवं भौतिक संसाधनों के समन्वय की प्रक्रिया है ताकि संस्था के उद्देश्यों, इससे सम्बन्धित सभी वर्गों की अपेक्षाओं को दक्षतापूर्ण एवं कारगर ढंग पूर्ण किया जा सके।

13. प्रबन्धक अपने संसाधनों की प्रभावी उत्पादकता पर ध्यान रखता है।

14. प्रबन्ध एक सार्वभौमिक क्रिया है। वह छोटे, बड़े, धार्मिक, राजनैतिक, सैनिक, सामाजिक, व्यावसायिक आदि संगठनों में की जाने वाली क्रिया है।

15. प्रबन्ध एक अदृश्य शक्ति है। इसे देखा एवं छुआ नहीं जा सकता किन्तु इसके प्रयासों के परिणाम के आधार पर इसकी उपस्थिति का स्वतः अनुमान हो जाता हे। जब संस्था में सभी कार्य सुचारू रूप से होते रहते हैं, कर्मचारी सन्तुष्ट होते हैं तथा संस्था में सौहार्दपूर्ण कार्य वातावरण होता है तब प्रबन्ध शक्ति की उपस्थिति का सहज ही अनुमान हो जाता है। कभी–कभी इस अदृश्य शक्ति का भान इसकी अनुपस्थिति में तब होता है जबकि संस्था असफलता की ओर जाने लगती है। ऐसे समय में लोग यह कहकर इस शक्ति को स्वीकार करते हैं कि "संस्था कुप्रबन्ध (Mismanagement) के कारण डूब रही है।"

प्रबन्ध : उद्देश्य

प्रबन्ध एक क्रिया है और प्रत्येक क्रिया का अपना उद्देश्य होता है। इस प्रकार प्रबन्ध के भी कुछ उद्देश्य है। चूंकि प्रबन्ध विस्तृत क्रियाओं का समूह है, अतः इसके उद्देश्य भी विस्तृत हैं जिन्हें मुख्य रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राथमिक उद्देश्य
2. सहायक उद्देश्य
3. व्यक्तिगत उद्देश्य एवं
4. सामाजिक उद्देश्य।

1. प्राथमिक उद्देश्य – प्रबंध का प्राथमिक उद्देश्य किसी उपक्रम से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों की आकांक्षाओं को संतुष्टि प्रदान करना है जिससे उपक्रम अपने उन उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके जिसके लिए इसे स्थापित किया गया है। अतः प्रबन्ध के प्राथमिक उद्देश्य :

(i) उचित लागत पर उत्पादों एवं सेवाओं का उत्पादन करना है।

(ii) उन उत्पादों एवं सेवाओं का उचित मूल्य पर वितरण करना है जिससे उपभोक्ताओं को सम्पूर्ण संतुष्टि प्राप्त हों,

(iii) उपक्रम में उन सभी संसाधनों को उचित पारिश्रमिक देना है, और

(iv) उपक्रम को उचित मात्रा में लाभार्जन करना है।

2. सहायक उद्देश्य – सहायक उद्देश्य प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं। सहायक उद्देश्य किसी उपक्रम की आंतरिक कार्यप्रणाली से सम्बन्धित होते हैं जिससे कार्य निष्पादन में यथेष्ट कुशलता प्राप्त की जा सके। इसके अंतर्गत उपक्रम के विभिन्न संसाधनों का इस तरह प्रयोग करना होता है जिससे इन संसाधनों का योगदान अधिकतम हो सके। ये संसाधन मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक रूप में होते हैं। विभिन्न संसाधनों की कार्यकुशलता और योगदान इस बात पर निर्भर करती है कि उनकी गुणवत्ता कैसी है, उनका कैसे उपयोग किया जाता है और उनके उपयोग में किस तरह सामंजस्य स्थापित किया जाता है। अतः प्रबन्ध के सहायक उद्देश्य :

(i) विभिन्न संसाधनों में गुणवत्ता उत्पन्न करना

(ii) इनका यथोचित समय एवं स्थान पर उपयोग करना

(iii) इनके उपयोग में सामंजस्य स्थापित करना ताकि सभी संसाधन एक–दूसरे के पूरक रूप में कार्य करें और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कार्यक्षमता प्रभावशाली हो।

3. व्यक्तिगत उद्देश्य – किसी उपक्रम में व्यक्तिगत उद्देश्य मानवीय संसाधनों की संतुष्टि से हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि किसी संस्था में विभिन्न संसाधनों को मानवीय एवं अन्य संसाधनों में विभाजित किया जाता है। मानवीय संसाधनों अन्य संसाधनों से भिन्न है क्योंकि उन्हीं के द्वारा गैर–मानवीय संसाधनों का संचालन होता है। किसी उपक्रम में मानवीय संसाधनों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–उद्यमी, प्रबंधक एव अन्य कर्मचारी। इन सभी वर्गों के अलग–अलग कार्य, उत्तरदायित्व व आकांक्षाएँ होती है। प्रबंध का उद्देश्य इन सभी वर्गों की आकांक्षाओं को पूरा करना है। इसके लिए आवश्यक है कि उपक्रम में ऐसा वातावरण एवं कार्यप्रणाली विकसित की जाय जिससे सभी व्यक्तियों को संतुष्टि प्राप्त हो और वे अपनी सम्पूर्ण क्षमता से कार्य कर सकें।

4. सामाजिक उद्देश्य – उपक्रम अपने संसाधन समाज से प्राप्त करता है, उनमें से कुछ को उत्पादों एवं सेवाओं में परिवर्तित करता है, और पुनः समाज को देता है। इस प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में सामाजिक उद्देश्य निहित होता है। इन उद्देश्यों में समाज के विभिन्न संसाधनों का विकास एवं उनका समूचित उपयोग, समाज के प्रत्येक घटक की इच्छापूर्ति, समुचित आचरण में संलग्नता, अच्छे उदाहरण का प्रस्तुतीरकण आदि सम्मिलित है।

प्रबन्ध : महत्व

प्रबन्ध किसी न किसी रूप में मानव सभ्यता के विकासक्रम जिसमें मानव ने संगठित रूप से कार्य करना प्रारंभ किया, विद्यमान था। कोई भी संगठित कार्य चाहे वह किसी भी क्षेत्र–आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा न्यायिक–में हो बिना सुचारू प्रबंध के अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी प्रकार चाहे कोई भी देश हो, या कोई भी आर्थिक प्रणाली हो या कोई भी वाद हो, सभी में समान रूप से प्रबन्ध का महत्व है। इस संबंध में उर्विक का निम्नलिखित कथन प्रबन्ध के महत्त्व को प्रदर्शित करता है : "कोई सिद्धान्त, वाद अथवा राजनीतिक कल्पना सीमित मानवीय तथा भौतिक साधनों के उपयोग से एवं कम प्रयत्न द्वारा अधिक उत्पादन संभव नहीं बना सकते। यह केवल प्रभावी प्रबन्ध से ही संभव है। इस अधिक उत्पादन के आधार पर जन–साधारण के उच्च जीवनस्तर, अधिक आराम तथा अधिक सुविधाओं की नींव रखी जा सकती हैं।

आधुनिक युग में पूरे विश्व में प्रबन्ध की नई तकनीकों की खोज हो रही है ताकि विभिन्न संसाधनों को और अधिक दक्ष बनाया जाय। आज प्रबन्ध सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया बन गया है। प्रबंध अतीत में भी महत्त्वपूर्ण था और आज के परिवेश में इसका महत्त्व और अधिक हो गया है। इसके दो कारण हैं– **प्रथम**, अतीत की तुलना में वर्तमान संगठनों का स्वरूप काफी बड़ा हो गया है। बड़े स्वरूप के कारण निष्पादन में जटिलताएँ बहुत अधिक बढ़ गयी है, जिनका समाधान केवल प्रभावी प्रबन्ध द्वारा ही किया जा सकता है। **द्वितीय** व्यापार के वैश्वीकरण के फलस्वरूप, प्रत्येक देश और उसके संगठनों को विश्वस्तरीय प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है।

भारत भी व्यापार में भूमंडलीकरण से अछूता नहीं है। देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई जिसमें आर्थिक नीतियों में व्यापक परिवर्तन किये गये। फलस्वरूप, पूर्व–उदारीकरण एवं उदारीकरण–पश्चात् की परिस्थितियों एवं प्रबंध के महत्त्व में मूलभूत परिवर्तन आ गया जिन्हें निम्न सारणी द्वारा समझा जा सकता है–

	घटक	उदारीकरण पूर्व	उदारीकरण पश्चात्
1.	बाजार का स्वभाव	विक्रेता बाजार	क्रेता बाजार
2.	प्रतिस्पर्द्धा का स्वरूप	एकाधिकार एवं सीमित प्रतिस्पर्द्धा	पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा
3.	प्रतिस्पर्द्धा का स्रोत	आंतरिक	बाह्य एवं आंतरिक
4.	प्रतिस्पर्द्धा का आधार	लाइसेंस एवं कोटा	प्रतिस्पर्द्धी क्षमता का विकास
5.	व्यवसाय का विकास	आन्तरिक	क्षमता–आधारित व्यवसाय
6.	व्यवसाय का उद्देश्य	अधिक लाभार्जन	हित रखने वाले सभी पक्षों की संतुष्टि
7.	प्रबन्ध का महत्व	सहायक	प्राथमिक
8.	प्रबन्ध विधियाँ	परम्परागत	आधुनिक
9.	मानवीय संसाधनों पर ध्यान	गौण	प्राथमिक

इस बदलते परिवेश में भारत तथा अन्य दूसरे देशों में जो इस तरह की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, प्रबंन्ध का महत्व बढ़ता ही जा रहा है जिसे हम निम्नलिखित विवरणों से देख सकते हैं :

1. प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना – आज के समय में प्रत्येक व्यावसायिक क्षेत्र प्रतिस्पर्द्धी हो गया है। यह प्रतिस्पर्द्धा केवल आंतरिक उपक्रमों द्वारा ही नहीं बल्कि बाह्य उपक्रमों से भी पैदा हुई है। ऐसी अवस्था में उपक्रम को प्रतिस्पर्द्धी बनाना प्रबंध का मुख्य कार्य है। प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के लिए आवश्यक है कि गुणवत्तापूर्ण उत्पाद निर्माण और कीमत भी तुलनात्मक रूप से कम

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हो। यह प्रबन्ध द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

2. संसाधनों का विकास – किसी देश या संस्था के विकास के लिए उसके संसाधनों का विकास आवश्यक है। किसी संस्था का विकास इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि उसे उत्तराधिकार में कितने संसाधन मिले है, बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि उसने स्वयं कितने संसाधनों का एवं किस प्रकार विकास किया है। संसाधनों के विकास में प्रबन्ध का बहुत महत्त्व है।

3. संसाधनों का समुचित उपयोग – केवल विभिन्न संसाधनों का विकास ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उनका समुचित उपयोग किसी संस्था की कार्यक्षमता को बढ़ाता है। चूँकि संसाधनों की मात्रा सीमित होती है और उन्हें विभिन्न वैकल्पिक कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है, इसलिए यह आवश्यक है कि संसाधनों का प्रयोग उन कार्यों में किया जाय जहाँ उनका योगदान उच्चतम हों। प्रबंध न केवल यह सुनिश्चित करता है कि किस संसाधन का कहाँ प्रयोग समुचित होगा, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि वहाँ पर संसाधनों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से हो।

4. नवप्रवर्तन एवं उसका उपयोग – आज के युग में नवप्रवर्तन और उसका उपयोग किसी संस्था के बहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है। नवप्रवर्तन का आशय किसी नयी वस्तु का उत्पादन, जैसे वसा–आधारित धोने के साबुन के स्थान पर कृत्रिम रूप से साफ करने वाला पदार्थ (Synthetic Detergent) किसी वस्तु में परिवर्तन करके उसे अधिक उपयोगी बनाना जैसे मोबाइल को छोटे कम्प्यूटर में परिवर्तित कर स्मार्ट फोन बनाना, विपणन व वितरण के नये प्रकार ढूँढना जैसे उत्पादक–थोक विक्रेता–फुटकर विक्रेता–ग्राहक की लम्बी श्रृंखला के स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से ग्राहक को सामान पहुंचाना ऑन लाइन ई–व्यापार करना इत्यादि सम्मिलित है। नवप्रवर्तन का उद्देश्य मुख्य रूप से ग्राहकों को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करना है। नवप्रवर्तन में प्रबन्ध का बहुत ही महत्त्व है, क्योंकि इसी के द्वारा नवप्रवर्तन की सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती है। किसी संस्था का प्रबन्ध नवप्रवर्तन पर जितना अधिक ध्यान देता है वह संस्था उतनी ही अधिक अग्रणी व सफल होती है।

5. संगठन का अस्तित्व संरक्षण एवं वृद्धि – किसी संगठन के मुख्यतः तीन उद्देश्य होते है– अस्तित्व संरक्षण, वृद्धि एवं लाभप्रदता। ये तीनों उद्देश्य परस्पर निर्भर है, जैसे वृद्धि के लिए संगठन का अस्तित्व आवश्यक है; दीर्घकालीन अस्तित्व के लिए लाभप्रदता आवश्यक है। प्रबंध किसी संगठन के विभिन्न आवकों (inputs) जैसे कच्चा माल, ईंधन तथा अन्य सामग्री और विभिन्न परिवर्तित उत्पादों एवं सेवाओं में समुचित सामंजस्य स्थापित करके संगठन के अस्तित्व एवं वृद्धि को सुनिश्चित करता है। इस सामंजस्य के विपरित होने पर संगठन में क्षय प्रारंभ हो जाता है और अन्ततः उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। भारत में बहुत से उद्योगों जैसे सोयाबीन, लघु–स्तरीय स्टील, लघु स्तरीय सीमेंट इत्यादि में इस तरह की परिस्थितियाँ आ चुकी है। इसके विपरीत 1907 में स्थापित टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी एवं सफल स्टील कम्पनी है।

6. देश का आर्थिक विकास – किसी देश के आर्थिक विकास में प्रबंध का प्रमुख योगदान होता है। माइकेल पोर्टर के अनुसार– किसी देश के किसी उद्योग में प्रतिस्पर्द्धी योग्यता चार कारकों पर निर्भर होती है– संसाधन की स्थिति, उत्पादों एवं सेवाओं के माँग की स्थिति, सम्बन्धित एवं सहायक उद्योगों की स्थित, तथा विभिन्न संगठनों के बीच प्रतिस्पर्धा। यदि ये सभी कारक अनुकूल हो तो देश का विकास तीव्र गति से होता है। भारत में विभिन्न संसाधनों – प्राकृतिक एवं मानवीय तथा उत्पादों एवं सेवाओं की माँग की प्रचुरता है, किन्तु सम्बंधित एवं सहायक उद्योगों तथा विभिन्न संगठनों में प्रतिस्पर्द्धा के अभाव के कारण किसी उद्योग का विकास इतना नहीं हुआ है कि वह अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी बन सके (संरक्षण विकास का अवरोधक होता है)। यद्यपि आर्थिक उदारीकरण के बाद प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि हुई है किन्तु इसका लाभ विदेशी कम्पनियों को ही अधिक हो रहा है क्योंकि प्रतिस्पर्द्धा देश के आन्तरिक कारकों में न होकर बाह्य कारकों से प्रभावित हुई है। इसलिए देश के विकास के लिए प्रबंध का स्थानीय संगठनों को प्रभावी बनाना आवश्यक है।

7. विभिन्न रुचि–समूहों में समन्वय – किसी संगठन में विभिन्न रुचि समूह होते हैं, जैसे एक व्यावसायिक संस्था में स्वामी, कर्मचारी ग्राहक, आपूर्तिकर्ता, वित्तीय संस्थान, निवेशक, सरकार एवं समाज। इन सभी समूहों की संगठन से अलग–अलग अपेक्षाएँ होती हैं जैसे ग्राहक कम मूल्य पर अच्छे उत्पाद, कर्मचारी अधिक से अधिक वेतन एवं सुविधाएँ, सरकार अधिक से अधिक कर इत्यादि चाहते हैं। ऐसी अवस्था में प्रबन्ध संगठन से सम्बंधित समूहों की अपेक्षाओं में समन्वय स्थापित करता है ताकि प्रत्येक समूह की अपेक्षाएँ उसके योगदान के बराबर हों।

8. समाज में स्थिरता – प्रबंध सामाजिक व्यवस्था में स्थिरता लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। यह स्थिरता समाज में परिवर्तन की निरंतरता द्वारा प्राप्त होती है। जब किसी नई तकनीक का विकास होता है या किसी नए उत्पाद का आविष्कार होता है तो समाज उसे धीरे–धीरे ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में समाज अपने पुराने परम्परागत तरीकों के स्थान पर परिवर्तित तरीकों को अपनाता है जिससे समाज में निरंतरता बनी रहती है। यदि यह परिवर्तन द्रुत गति से होता है तो निरंतरता के अभाव में समाज में विखंडन प्रारंभ हो जाता है। प्रबंध इस विखंडन के परिणामों से समाज को बचाता है।

प्रबन्ध : प्रकृति

समय के साथ–साथ प्रबन्ध का अध्ययन एवं तकनीकों के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रयोग में विभिन्नता के कारण इसके स्वभाव में परिवर्तन होता रहा है। जैसे प्रबंध को पहले केवल कला के रूप में लिया जाता था, आज विज्ञान एवं कला दोनों रूपों में लिया जाता है। इसी प्रकार प्रबंध पहले गैर–पेशे के रूप में लिया जाता था, अब इसे पेशे के रूप में लिया जाता है। वर्तमान में प्रबंध के स्वभाव को निम्नलिखित रूपों में देख जा सकता है।

1. प्रबन्ध बहु–विधा के रूप में,
2. प्रबन्ध विज्ञान एवं कला के रूप में,
3. प्रबन्ध पेशे के रूप में तथा
4. प्रबन्ध की सार्वभौमिक प्रक्रिया

1. प्रबन्ध बहु–विधा के रूप में – ज्ञान की प्रत्येक स्वतंत्र शाखा को विधा (discipline) कहा जाता है जैसे कला, विज्ञान, वाणिज्य व कानून आदि। प्रत्येक विधा का अपना उद्देश्य होता है और उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का विकास किया जाता है। वैसे प्रबंध अपने–आप में एक स्वतंत्र विधा है, किन्तु इसके सिद्धान्तों को विकसित करने में निम्न विभिन्न विधाओं के योगदान के कारण इसे बहु–विधा के रूप में माना जाता है –

भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, इलेक्ट्रोनिक्स, सामाजिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, इतिहास, व्यवहार विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र।

प्रबन्ध शास्त्र में कुछ का अधिक है और कुछ का कम योगदान रहा है जो इस प्रकार है :

1.अर्थशास्त्र ने प्रबन्ध में निर्णय प्रक्रिया, संसाधनों का आवंटन, संसाधनों के समुचित उपयोग आदि से सम्बन्धित सिद्धान्त दिये।

2. राजनीति शास्त्र ने संगठन संरचना, संगठन के सिद्धान्त, नौकरशाही आदि को योगदान दिया है।

3.जीवविज्ञान व मनोविज्ञान ने व्यक्ति के व्यवहार को समझने एवं उसे नियंत्रित करने सम्बन्धी सिद्धानों को प्रतिपादित किया है।

4. समाजशास्त्र ने व्यक्ति–समूहों की अवधारणा एवं उनकी कार्यप्रणाली समझने में योगदान दिया है।

5. मानव शास्त्र ने नैतिक मूल्यों व व्यावसायिक नैतिकता से सम्बन्धित सिद्धान्तों के विकास में योगदान दिया है।

यहाँ पर इसका उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि प्रबध शास्त्र ने इन सभी शास्त्रों की विभिन्न सामग्रियों का एकीकरण करके उसे प्रबंधकों के प्रयोग योग्य बनाया है।

2. प्रबंध विज्ञान एवं कला के रूप में : कुछ लोग प्रबंध को विज्ञान, कुछ लोग कला तथा कुछ लोग दोनों मानते हैं। कुछ लोग इसे अयथार्थ विज्ञान (Inexact Science) की संज्ञा देते हैं। इस विचारात्मक भिन्नता को दूर करने के लिए विज्ञान एवं कला का स्वरूप जानना आवश्यक है। तत्पश्चात् यह निर्धारित किया जा सकता है कि प्रबंध विज्ञान या कला या दोनों।

प्रबन्ध विज्ञान के रूप में विज्ञान किसी ज्ञान का एक क्रमबद्ध अध्ययन है जो कारण और परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करता है। जॉर्ज टेरी के अनुसार, "विज्ञान किसी भी विषय, उद्देश्य अथवा अध्ययन का सामान्य सत्यों के संदर्भ में संग्रहित तथा स्वीकृत व्यवस्थित ज्ञान है।" विज्ञान के सिद्धान्त प्रयोगों पर आधारित होते हैं तथा सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं। इस प्रकार विज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

1. विज्ञान स्थिति अध्ययन के आधार पर सिद्धान्तों एवं नियमों का समूह प्रदान करता है जिन्हें सार्वभौमिक रूप से लागू किया जा सकता है।
2. विभिन्न सिद्धान्त प्रयोगों के आधार पर प्रतिपादित किए जाते हैं। अतः ये सत्यों तथा तथ्यों पर आधारित होते हैं।
3. सिद्धान्त कारण एवं परिणाम में सम्बन्धों को प्रदर्शित करते हैं।
4. सिद्धान्तों का प्रयोग किसी समस्या या समस्याओं के समूह क निवारण में प्रयोग किया जाता है।
5. विभिन्न सिद्धान्तों का परीक्षण किया जा सकता है और सभी परीक्षणों में एक–एक निष्कर्ष निकलता है।

यदि विज्ञान की उपरोक्त विशेषताओं के संदर्भ में प्रबंध को देखा जाए तो इसमें कुछ विशेषताएँ है किन्तु बहुत सी विशेषताएँ नहीं है। जैसे प्रबन्ध के सिद्धान्तों को प्रयोगों के आधार पर प्रतिपादित किया जाता है; ये कारण एवं परिणाम को दर्शाते हैं; इन सिद्धान्तों का प्रयोग विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु होता है। परन्तु अन्य बहुत से लक्षण जो मूल है जैसे सार्वभौमिकता, यथार्थता (Exactness) का सर्वथा अभाव है; प्रबन्ध के सिद्धान्त परिवर्तनीय एवं परिस्थितिजन्य होते हैं। अतः प्रबंध को शुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। इसे अयथार्थ विज्ञान (Inexact science) की श्रेणी में रखा जा सकता है जो यह इंगित करता है कि प्रबंध में वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग किया जा सकता है। वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग से प्रबंध के परम्परागत सिद्धान्तों को आधुनिकतम स्तर पर लाया जा सकता है और नए सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जा सकता है। किंतु केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग के कारण प्रबंध को शुद्ध विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

प्रबन्ध कला के रूप में – विज्ञान के विपरीत कला सिद्धान्तों एवं नियमों पर आधारित न होकर व्यवहार एवं अभ्यास पर आधारित है। कला का आशय उस विधि से है जिसके माध्यम से सिद्धान्तों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

का प्रयोग कुशलतापूर्वक करके इच्छित परिणामों को प्राप्त किया जाता है। टेरी के अनुसार **"चातुर्य के प्रयोग से वांछित परिणाम प्राप्त करना ही कला है।"** कला की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

1. कला इच्छित परिणामों को प्राप्त करने की विधि है।
2. इच्छित परिणामों की प्राप्ति व्यक्तिगत चातुर्य एवं ज्ञान तथा उनके प्रयोग पर निर्भर होती है
3. कला व्यावहारिक अथवा अभ्यास पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण निरंतर अभ्यास से किसी कार्य को करने में दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

प्रबन्ध में कला की समस्त विशेषताएँ पाई जाती है जो कि निम्नलिखित है :

1. प्रबन्ध अन्य कलाओं जैसे संगीत, नृत्य, चित्रकारी आदि की भाँति व्यक्तिगत गुणों पर आधारित है।
2. अन्य कलाओं की भाँति प्रबन्ध में निरंतर अभ्यास से दक्षता प्राप्त की जा सकती है।
3. अन्य कलाओं की भाँति प्रबंध में सृजनात्मकता प्राप्त की जा सकती है जिसका उपयोग समस्याओं के समाधान में हो सकता है।

इस प्रकार प्रबंध निर्विवाद रूप से कला की श्रेणी में रखा जा सकता है। वास्तव में यदि देखा जाए तो प्रबन्ध का प्रारंभ कला के ही रूप में हुआ था जिसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग बाद में प्रारंभ हुआ।

यदि प्रबंध को विज्ञान एवं कला के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो इसमें दोनों गुण सन्निहित है और इसे दोनों के रूप में लिया जाना चाहिए। इस सम्मिश्रण में प्रबंध की समस्याओं का समाधान तुलनात्मक रूप से अच्छी तरह हो सकता है जैसा निम्न गुणों से अभिव्यक्त होता है–

प्रबंध विज्ञान के रूप में	**प्रबंध कला के रूप में**
1. ज्ञान के आधार पर दक्षता	1. अभ्यास के आधार पर दक्षता
2. सिद्धान्तों का प्रतिपादन	2. सिद्धान्तों का उपयोग
3. समस्याओं को परिभाषित करना	3. समस्याओं की व्याख्या करना
4. वैज्ञानिक प्रतिरूप (मॉडल) के आधार पर निर्णय	4. अंतर्ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर निर्णय

इस प्रकार यदि देखा जाए तो **प्रबंध विज्ञान (शुद्ध विज्ञान नहीं) एक कला दोनों है।** प्रबंध में सिद्धान्तों का ज्ञान जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक उन सिद्धान्तों का प्रयोग में लाने की कला का। दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और किसी एक के अभाव में दूसरा महत्वहीन हो जाता है। पुरानी कहावत ''ज्ञान शक्ति है'' का स्थान नई कहावत ''प्रायोगिक ज्ञान शक्ति है'' ने ले लिया है।

3. प्रबंध पेशे के रूप में– आज के युग में प्रबंध को एक पेशा के रूप में लेने की प्रवृत्ति हो गयी है। प्रबंध के अध्ययन को भी एक पेशेवर शास्त्र की श्रेणी में डाल दिया गया है। ऐसी अवस्था में यह निर्धारित करना आवश्यक है कि प्रबंध एक पेशा है या नहीं। इसके लिए पेशे की परिभाषा, उसकी विशेषता एवं प्रबंध में इन विशेषताओं की विद्यमानता जानना आवश्यक है। अलग–अलग समय में पेशे को विभिन्न रूप से परिभाषित किया गया है जिससे उसकी विशेषताओं में भी विभिन्नता पायी जाती है। सन् 1928 में कार सांडर्स ने पेशे को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया था."प्रबंध संभवतः वह व्यवसाय है जो बौद्धिक अध्ययन एवं प्रशिक्षण पर आधारित है और जिसका उद्देश्य फीस या वेतन लेकर दूसरों को प्रवीण सेवाएँ देना है।"

इस परिभाषा के अनुसार कोई भी व्यवसाय जिसमें न्यूनतम ज्ञान प्राप्ति आवश्यक हो और उस ज्ञान प्राप्ति के उपरांत दूसरों को फीस या वेतन देना हो, पेशे की श्रेणी में रखा जा सकता है।

पेशा एक ऐसा व्यवसाय है जिसके लिए विशिष्ट ज्ञान, दक्षता एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है तथा इन दक्षताओं का प्रयोग समाज के व्यापक हितों के लिए किया जाता है और प्रयोग की सफलता केवल मुद्रा अर्जन में नहीं मापी जाती है।

पेशे की विशेषताएँ

मैकफरलैंड ने पेशे की पाँच विशेषताएँ बतायी है : ज्ञान विद्यमानता, औपचारिक रूप में ज्ञान की प्राप्ति, प्रतिनिधि संस्था, नैतिक आचार–संहिता, एवं सेवा की प्रवृत्ति। यदि इन सभी विशेषताओं के संदर्भ में प्रबंध को देखा जाए तो इसमें कुछ विशेषताएँ विद्यमान हैं जबकि कुछ का अभाव है ।

1. प्रबंध ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा के रूप में विकसित हो चुका है और इस ज्ञान के विस्तार में बहुत सी संस्थाएँ लिप्त हैं। अतः प्रबंध को पेशे की श्रेणी में रखा जा सकता है।

2. ज्ञान की प्राप्ति के लिए औपचारिक व्यवस्था है जिसके अंतर्गत उपाधि देने की व्यवस्था है जैसे बी.बी.ए., एम.बी.ए. की उपाधि। यहाँ तक प्रबंध को पेशे की श्रेणी में रखा जा सकता है। किंतु इसका दूसरा पक्ष यह है कि प्रबंधक के लिए एम.बी.ए. की उपाधि आवश्यक नहीं है। अतः इस आधार पर प्रबंध को पेशा नहीं माना जा सकता है।

3. अन्य प्राचीन एवं स्थापित पेशों जैसे चिकित्सा तथा कानून के समान प्रबंध में प्रतिनिधि संस्थान है, जैसे भारत में ऑल इंडिया मैनेजमेंट एसोसिएशन, अमेरिका में अमेरिकन मैनेजमेंट एसोसिएशन। किन्तु प्रबंधकों के लिए इन संस्थाओं की सदस्यता

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की अनिवार्यता नहीं है जैसा कि चिकित्सा एवं कानून पेशे में हैं। अतः प्रबंध को पेशे की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

4. अन्य पेशों की भाँति प्रबंध में भी आचार–संहिता (Code of Conduct) की व्यवस्था है, किन्तु बहुत से प्रबंधक इस आचार–संहिता से परिचित भी नहीं है। इस दृष्टि से भी प्रबंध स्थापित पेशे के समकक्ष नहीं हैं।

5. सेवा की प्रवृत्ति प्रत्येक पेशे के लिए आवश्यक है, यद्यपि किसी पेशे में ऐसी प्रवृत्ति का पालन करना या न करना देश की सामाजिक एवं नैतिक व्यवस्था पर निर्भर करताहै। इस विशेषता के आधार पर प्रबंध को पेशे की श्रेणी में रखा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रबंध को कुछ विशेषताओं के आधार पर पेशा माना जा सकता है, जबकि अन्य आधार पर नहीं। इसलिए प्रबंध को स्थापित पेशे की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है, बल्कि इसे पेशें की दिशा में अग्रसरित की श्रेणी में रखा जा सकता है। **'रीस'** ने पेशों को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा है और विभाजन में प्रबंध को होने वाला **भावी पेशा** (Would-be profession) बताया है जो निम्न सारणी में व्यक्त है :

सारणी : पेशे के विभिन्न स्वरूप

पेशे की श्रेणी	**पेशे की विशेषता**
1. स्थापित पेशा	ज्ञान की शाखा पर आधारित जैसे चिकित्सा, कानून
2. नवीन पेशा	नए विषयों पर आधारित जैसे रसायन शास्त्री, समाजशास्त्री
3. अर्द्ध पेशा	प्राविधिक ज्ञान एवं अभ्यास पर आधारित जैसे नर्स, प्रयोगशाला सहायक
4. **भावी पेशा**	आधुनिक व्यावसायिक तकनीकों पर आधारित जैसे प्रबंध
5. सीमान्त पेशा	प्राविधिक दक्षता पर आधारित जैसे ड्राफ्ट्समैन

पेशेवर प्रबंध– सैद्धांतिक रूप से प्रबंध को पेशे की श्रेणी में रखना या न रखना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना इस बात का महत्त्व है कि किसी संगठन में प्रबन्ध को किस रूप में अपनाया जाता है – पेशेवर या गैर–पेशेवर । जैसा कि प्रमुख प्रबंध शास्त्री एल.सी. गुप्ता ने कहा – "पेशेवर प्रबंध केवल पेशेवर उपाधि–धारकों की नियुक्ति से नहीं होता है बल्कि उचित दृष्टिकोण की भी आवश्यकता होती है। पेशेवर उपाधि से अधिक महत्त्व पेशेवर दृष्टिकोण है।" एक पेशेवर प्रबंध में निम्नलिखित विशेषताएँ होती है :

1. पेशेवर ज्ञान एवं तकनीक के प्रति समर्पित होना
2. आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीकों का प्रयोग
3. व्यक्तिगत स्वेच्छाचारिता के स्थान पर टीम भावना पर बल,
4. परिवर्तन एवं परिवर्तन प्रबंध हेतु तैयार रहना.
5. संगठन में नियुक्ति एवं पदोन्नति दक्षता पर आधारित हो; न कि जन्म स्थान या पारिवारिक सम्बंधों या जाति पर आधारित.
6. अनुकूलतम निर्णय प्रक्रिया जिसमें विभिन्न पक्षों का हित समन्वित हो, और
7. समाज के प्रति उत्तरदायी एवं राष्ट्रीय नीतियों के प्रति सम्मान।

प्रारम्भ से बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध तक समाज व राष्ट्रों में व्यक्तिगत नेतृत्व की परम्परा प्रभावी रही किन्तु बदलते परिवेश में सामूहिक नेतृत्व (लोकतंत्र) की परम्परा का विकास हुआ, इस सामूहिकता की प्रवृत्ति ने प्रभावशीलता व दक्षतापूर्ण कार्य को अधिक महत्व दिया है इसलिए–पेशेवर व्यक्तियों की प्रासंगिकता दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है।

4. प्रबंध की सार्वभौमिकता – सार्वभौमिकता का तात्पर्य किसी ज्ञान का सर्वत्र एक समान रूप से लागू होना है सार्वभौमिकता के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ है : एक पक्ष में दूसरी विपक्ष में।

सार्वभौमिकता के पक्ष में तर्क : थियो हैमन ने कहा है, "प्रबंध के सिद्धान्त लागू किये जा सकते हैं।" इसके पक्ष में निम्न तर्क दिये हैं :

1. प्रबंध की प्रक्रिया–(नियोजन, संगठन, सेविवर्गीय क्रियाएँ, निर्देशन एवं नियंत्रण)–सभी तरह के संगठनों में एवं सभी देशों में समान रूप से पायी जाती है।
2. प्रबन्ध के सिद्धान्त सार्वभौमिक है यद्यपि उन सिद्धान्तों का प्रयोग करते समय देश या संगठन विशेष की परिस्थिति को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

इस प्रकार इन विचारकों के अनुसार प्रबंध सार्वभौमिक है।

सार्वभौमिकता के विपक्ष में तर्क : स्टीफन राबिन्सन के अनुसार "प्रबंध में पाँच दर्जन से अधिक सिद्धान्त है। यद्यपि इनमें से अधिकांश परिस्थितयों के अनुरूप लागू होते हैं किन्तु इनको सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि सार्वभौमिकता के परीक्षण में ये खरे नहीं उतरे हैं।" विभिन्न शोधों से भी इस बात की पुष्टि हुई है कि अमेरिका में प्रतिपादित प्रबंध के सिद्धान्तों को विश्व के सभी देशों में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। हॉलैण्ड के एक शोधकर्ता **गीर होफ्स्टेड** ने 1980 के दशक में 40 देशों की प्रबन्ध प्रणालियों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि मानवीय विशेषताएँ विभिन्न देशों में अलग–अलग है, इसलिए अमेरिकी प्रबंध सिद्धान्तों को सर्वत्र लागू नहीं किया जा सकता है। केवल यही नहीं, बल्कि किसी एक प्रबंध सिद्धान्त को एक ही देश में दो अलग तरह के उपक्रमों में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार प्रबंध के किसी सिद्धान्त का लागू होना या न होना मुख्यत तीन कारकों पर निर्भर करता है :

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1.देश या संगठन की संस्कृति,

2. संगठन का उद्देश्य, एवं

3. संगठन का प्रबंधकीय दर्शन

1. देश या संगठन की संस्कृति –चूंकि प्रत्येक देश की संस्कृति अलग–अलग होती है, इसलिए प्रबंध के सभी सिद्धान्तों को सभी देशों में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। केवल यही नहीं, प्रत्येक संस्कृति में उप–संस्कृतियाँ भी होती है, इसलिए एक ही देश के दो संगठनों की संस्कृति भी अलग–अलग हो सकती है जो प्रबंध के सिद्धान्तों को प्रभावित करती है। इसीलिए प्रबंध को संस्कृतिपरक (Culture -bund) माना गया है।

2. संगठन का उद्देश्य –विभिन्न क्षेत्र के संगठनों के उद्देश्यों में विभिन्नता होती है, जैसे व्यावसायिक संगठन एवं गैरव्यावसायिक संगठन। यहाँ तक कि दो व्यावसायिक संगठनों के भी उद्देश्यों में अन्तर हो सकता है। उद्देश्यों में भिन्नता के कारण प्रबंध सिद्धान्तों के प्रयोग में भी भिन्नता हो सकती है। **पीटर ड्रकर** के अनुसार व्यावसायिक संगठनों के सिद्धान्तों एवं दक्षताओं को गैरव्यावसायिक संगठनों में हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है।

3. संगठन का प्रबंधकीय दर्शन – प्रबंधकीय दर्शन में उन मान्यताओं एवं विश्वासों को सम्मिलित किया जाता है जिनके आधार पर किसी संगठन का प्रबंध किया जाता है। संगठन में प्रबंधकीय दर्शन उच्च स्तर प्रबंधकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। चूँकि विभिन्न सगठनो का प्रबंधकीय दर्शन अलग हो सकता है इसलिए उनमें प्रबंध के अलग सिद्धान्त लागू होते हैं। एस.के. भट्टाचार्य ने शोध उपरांत निष्कर्ष निकाला है कि भारत में पेशेवर प्रबंधित तथा परिवार प्रबंधित कम्पनियों के प्रबंध सिद्धान्तों में भिन्नता है। ये भिन्नताएँ प्रबंधकीय दक्षता एवं गुण, कार्य–निष्पादन परिणाम, नियोजन एवं निर्णय विधियों, प्रबंध रीतियों और नियंत्रण के सम्बन्ध में हैं।

निष्कर्ष – इस प्रकार प्रबंध सार्वभौमिक है किन्तु इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक नहीं है, बल्कि परिस्थिति जन्य हैं। अतः प्रबंध ज्ञान के हस्तांतरण में निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है:

1.प्रबंध के वे सिद्धान्त जो सार्वभौमिक है और मानवीय व्यवहार का प्रभाव नगण्य है, को पूर्णतः हस्तांतति किया जा सकता है जैसे नियोजन के सिद्धान्त, पूर्वानुमान के सिद्धान्त इत्यादि।

2. प्रबंध के वे सिद्धान्त जो मानवीय व्यवहार से प्रभावित होते है और सार्वभौमिक नहीं है उन्हें हस्तांतरित करने के लिए देश एवं संगठन को ध्यान में रखना आवश्यक है जैसे निर्देशन के सिद्धान्त, अभिप्रेरणा के सिद्धान्त, नेतृत्व के सिद्धान्त इत्यादि। प्रबंध के ज्ञान का हस्तांतरण निम्नलिखित तरीकों से हो सकता है

1. विकसित देशों के प्रबंध साहित्य के अध्ययन एवं प्राचीनतम प्रबन्ध व्यवस्था के शोध द्वारा,
2. अविकसित देशों के प्रबंधकों को विकसित देशों में प्रशिक्षण द्वारा।
3. विकसित देशों के प्रबंधकीय परामर्शदाताओं द्वारा एवं
4. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, जो कम विकसित देशों में व्यवसाय करती है, के वृत्त अध्ययन (Case Study) द्वारा।

प्रबन्ध क्षेत्र

प्रबंध का क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि जहाँ पर मानव समूह के रूप में कार्य करता है वहाँ प्रबंध की अवधारणा किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है चाहे वह समूह छोटा हो या बड़ा; व्यवसाय में हो या अन्य क्षेत्र में। हेनरी फेयोल के शब्दों, "प्रबंध एक सार्वभौमिक विज्ञान है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध या जन–कल्याण सभी पर समान रूप से लागू होता है।" अर्थात् जहाँ पर मानव सामूहिक प्रयास द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न है, वहाँ प्रबंध आवश्यक है। प्रबंध के क्षेत्र को दो तरह से परिभाषित किया जाता है : **प्रथम,** किसी एक उपक्रम में निष्पादित होने वाली क्रियाओं के क्षेत्र में जिसे **प्रबंध का क्रियात्मक क्षेत्र** कहा जाता है; **द्वितीय** विभिन्न प्रकार के संगठन जिनमें प्रबन्ध का प्रयोग होता है इसे **प्रबंध का गैर व्यावसायिक क्षेत्र** कहा जाता है।

प्रबन्ध : क्रियात्मक क्षेत्र

वैश्विक प्रतिस्पर्धा बाजार में प्रत्येक पक्ष की (अंशधारी, कर्मचारी, ग्राहक, सरकार) की अपेक्षाएं बहुत अधिक हो गई है इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए प्रत्येक कार्य को, चाहे वो छोटा हो या परोक्ष रूप से प्रभावित करने वाला हो, विशेषज्ञ या विशिष्ट ज्ञान की सहायता से सम्पन्न करना पड़ता। उपक्रम में विशिष्टीकरण का समावेश करने के लिए प्रबन्ध विशेषज्ञों एवं प्रबन्धकीय कुशलता का प्रयोग प्रयुक्त संसाधनों एवं निष्कासित की जाने वाली प्रत्येक क्रिया में किया जाने लगा है। अतः उपक्रम/संस्था की प्रत्येक संसाधन क्रिया पेशेवर प्रबन्धकों द्वारा निष्पादित की जाने लगी है, इसलिए इसे 'प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र' कहा जाता है।

अध्ययन की दृष्टि से क्रियात्मक क्षेत्र को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है।

(अ) व्यावसायिक प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र,

(ब) गैर–व्यावसायिक प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र,

(स) प्रबन्ध के नवीन क्रियात्मक क्षेत्र,

(अ) व्यावसायिक प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र

(i) उत्पादन प्रबन्ध– प्रबन्ध की यह शाखा उत्पादन नियोजन, किस्म नियन्त्रण आदि क्रियाओं को अपने क्षेत्र में सम्मिलित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करती है।

(ii) सामग्री प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा सामग्री के क्रय, भण्डारण उठाई–धराई, स्टॉक, नियन्त्रण आदि क्रियाओं को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(iii) विपणन प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा निर्मित वस्तुओं के विक्रय, विक्रय सम्वर्धन, बाजार शोध, विक्रय शाखाओं की स्थापना और संचालन, वितरण श्रृंखलाओं के चयन, विक्रय शक्ति प्रबन्ध आदि कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(iv) वित्त प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा पूँजी की जरूरतों के निर्धारण, वित्त प्रबन्ध के स्रोतों की जानकारी करने, पूँजी प्राप्त करने तथा उसके सर्वोत्तम उपयोग को संभव बनाने के कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(v) सेवावर्गीय प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा कर्मचारियों की भर्ती,चयन, प्रशिक्षण, कार्य मूल्यांकन, योग्यता अंकन, श्रम कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, दुर्घटनाओं की रोकथाम, कार्य दशाओं में सुधार, विवादों के निपटारे आदि कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(vi) कायार्लय प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा पत्र व्यवहार, सूचना प्राप्ति एवं प्रेषण, संस्था के भीतर सम्पर्क श्रृंखला बनाए रखने आदि कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(vii) परिवहन प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा माल एवं व्यक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर कम व्यय एवं समय में सुरक्षित पहुँचाने से सम्बन्ध रखती हैं।

(viii) निर्यात एवं आयात प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा वस्तुओं के निर्यात तथा आयात करने सम्बन्धी कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(ix) शोध एवं विकास प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा टेक्नोलॉजी के विकास, विस्तार, नवाचार, प्रबन्ध आदि क्रियाओं से सम्बन्ध रखती है।

(x) लेखाकर्म प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा हिसाब– किताब रखने, लागत लेखे तैयार करने, भुगतान करने, राशियाँ प्राप्त करने, सम्पत्तियों का लेखा जोखा रखने आदि क्रियाओं को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती हैं।

(ब) गैर व्यावसायिक प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र–

(i) जनपयोगी सेवाओं का प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा पानी, बिजली, गैस, परिवहन, संचार, चिकित्सा आदि सेवाओं को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(ii) वातावरण प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा वातावरण अथवा प्रदूषित होने से बचाने के कार्यों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है। वातावरण अथवा पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम सरकार, समाज ओर उद्योग प्रमुख दायित्व बनता जा रहा है।

(iii) शिक्षा प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा शिक्षण–प्रशिक्षण सुविधाओं के विकास, विस्तार और संचालन से सम्बन्ध रखती है।

(iv) प्रतिरक्षा प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा सैन्य संगठनों की स्थापना, संचालन तथा नियंत्रण से सम्बन्ध रखती है ताकि राष्ट्रीय सुरक्षा कमजोर नहीं हो सके।

(v) न्याय प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा कानूनों की विवेचना, अपराधों को सुनवाई तथा न्याय दिलाने से सम्बन्ध रखती है।

(vi) तकनीकी प्रबन्ध–प्रबन्ध की यह शाखा ज्ञान–विज्ञान को बढ़ावा देने वाली सेवाओं और क्रियाओं के विकास–विस्तार को अपने क्षेत्र में सम्मिलित करती है।

(स) नवीन क्रियात्मक क्षेत्र–

आज के व्यवसाय एवं उद्योग/उपक्रम` क्षेत्र में प्रबन्ध की महत्ता बढ़ने के कारण प्रबन्ध के कई क्षेत्र महत्वपूर्ण हो गये हैं । लेकिन ये उद्योग की प्रकृति, आवश्यकता, उद्देश्य एवं क्षेत्र पर निर्भर करते हैं। अतः प्रबन्ध के नवीन क्रियात्मक क्षेत्र में निम्नलिखित प्रबन्ध सम्मिलित हैं –

1. सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबन्ध
2. निर्यात–आयात प्रबन्ध
3. विनियोग एवे पोर्टफोलिया प्रबन्ध
4. उद्यमिता प्रबन्ध
5. लघु व्यवसाय प्रबन्ध
6. फार्म प्रबन्ध
7. थोक एवं फुटकर व्यापार प्रबन्ध
8. जोखिम एवं सुरक्षा प्रबन्ध
9. विपणन शोध प्रबन्ध
10. परिवर्तन का प्रबन्ध
11. कार्यक्रम (इवेन्ट) प्रबन्ध
12. संघर्षों का प्रबन्ध
13. सीखने का प्रबन्ध
14. समय का प्रबन्ध
15. ज्ञान प्रबन्ध

सारांश

अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने की कला ही प्रबन्ध है। जो अति प्राचीन काल से चला आ रहा है उत्पान के साधन, श्रम, पूंजी, मशीन उत्पादन पद्धतियां व बाजार में मानव ही सजीव है। अतः इसका प्रबन्ध करके सभी का प्रबन्ध किया जा सकता है। यही वह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

है जिससे लागतों को न्यूनतम व उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है।

विभिन्न परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाना, संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नियोजन, संगठन, समन्वय, व निर्देशन नियंत्रण करना ही प्रबन्ध है।

विशेषताएं : मानवीय कार्य, चुनौतीपूर्ण कार्य, सृजनात्मकता, सामान्य सिद्धान्त, नेतृत्व की क्षमता, सार्वभौमिक क्रिया, अदृश्य शक्ति आदि।

महत्व : उदारीकरण से पहले एवं पश्चात, प्रतिस्पर्द्धा का सामना, संसाधनों का विकास, संसाधनों का समुचित उपयोग, नवप्रर्वत्तन, अस्तित्व का संरक्षण एवं वृद्धि, देश का आर्थिक विकास, समाज में स्थिरता आदि।

प्रकृति : प्रबन्ध बहु–विधा के रूप में, विज्ञान एवं कला, पेशे के रूप में तथा सार्वभौमिक क्रिया

उद्देश्य : प्राथमिक, सहायक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्य

क्षेत्र : प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र, गैर व्यावसायिक प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र एवं नवीन क्रियात्मक क्षेत्र।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. "प्रबन्ध दूसरों से कार्य करवाने की कला है।" यह परिभाषा किसने दी है?
   (अ) लारेन्स एप्पले (ब) मेरी पार्कर फोलेट
   (स) स्टेनले वेन्स (द) लुईस ए एलन
2. प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है–
   (अ) उचित मात्रा में लाभार्जन
   (ब) विभिन्न संसाधनों में गुणवत्ता
   (स) यथोचित समय एवं स्थान पर उपयोग
   (द) समाज के प्रत्येक घटक की इच्छापूर्ति
3. उदारीकरण के पश्चात् 'प्रबन्ध का महत्व' यह
   (अ) सहायक (ब) परम्परागत
   (स) प्राथमिक (द) आन्तरिक
4. प्रबन्ध की प्रकृति में सम्मिलित है–
   (अ) प्रबन्ध की सार्वभौमिकता
   (ब) प्रबन्ध पेशे के रूप में
   (स) अ एवं ब दोनों
   (द) इनमें से कोई नहीं
5. प्रबन्ध के नवीन क्रियात्मक क्षेत्र में सम्मिलित नहीं है–
   (अ) वातावरण प्रबन्ध (ब) उद्यमिता प्रबन्ध
   (स) थोक एवं फुटकर व्यापार प्रबन्ध
   (द) परिवर्तन का प्रबन्ध

अतिलघूरात्मक प्रश्न

1. लारेन्स एप्पले की परिभाषा दीजिये।
2. प्रबन्ध की कोई दो विशेषताएं बताइये।
3. प्रबन्ध के दो सहायक उद्देश्य बताइये।
4. भावी पेशा किसे कहते हैं।
5. 'प्रबन्ध सर्वव्यापी है।' स्पष्ट कीजिये
6. 'प्रबन्ध अपूर्व शक्ति है।' कैसे

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध की चार विशेषताएं समझाइये।
2. प्रबन्ध के प्राथमिक उद्देश्य कौनसे हैं?
3. उदारीकरण से पूर्व प्रबन्ध चार महत्व समझाइये।
4. उदारीकण के पश्चातप्रबन्ध के चार महत्व समझाइये।
5. प्रबन्ध विज्ञान एवं कला के रूप में है। समझाइये।
6. प्रबन्ध 'बहु–विधा' के रूप में है। समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध की परिभाषा देते हुए इसके उद्देश्य स्पष्ट कीजिये
2. प्रबन्ध के महत्व को समझाइये।
3. प्रबन्ध की सार्वभौमिकता का अर्थ बताते हुए इसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिये।
4. प्रबन्ध के क्रियात्मक क्षेत्र को समझाइये।

घटना अध्ययन (Case Study) : खाली डिब्बा

प्रबन्धकीय गुण व कौशल का विकास करने के लिए प्रबन्ध के क्षेत्र में आ रही समस्याओं का विश्लेषण कर समझना तथा उसके निदान हेतु उचित समाधान आमन्त्रित करना।

प्राप्त सम्भावित उपचार में से विचार विमर्श कर सर्वोपयुक्त सुझाव का चयन कर क्रियान्वित करना ही प्रबन्ध समस्या का विश्लेषण एवं निदान कहलाता है। इसे ही घटना अध्ययन (Case Study) कहते है। जैसे शिक्षक इस समस्या – 'खाली डिब्बा' का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते है–

जापान की एक साबुन बनाने वाली कम्पनी अपनी क्वालिटी और वर्ल्ड क्लास प्रोसेसेट के लिए जानी जाती थी। पर आज

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उनके सामने एक समस्या आ खड़ी हुई। उन्हें शिकायत मिली कि एक ग्राहक ने जब साबुन का डिब्बा खरीदा तो खाली था। शिकायत की जांच की गयी तो पता चला कि चूक कंपनी की तरफ से हुई थी, असेंबली लाइन से जब साबुन की डिलीवरी डिपार्टमेंट को भेजे जा रहे थे तब एक डिब्बा खाली ही चला गया। इस घटना से कम्पनी की काफी किरकिरी हुई। कम्पनी के अधिकारी बड़े परेशान हुए कि आखिर ऐसा कैसे हो गया। तुरंत एक हाई लेवल मीटिंग बुलाई गयी, गहन चर्चा हुई, और भविष्य में ऐसी घटना ना हो इसके लिए लोगों से उपाए मांगे गए। बहुत विचार–विमर्श के बाद निश्चय किया गया कि असेंबली लाइन के अंत में एक एक्स–रे–मशीन लगायी जायेगी जो एक हार्ड रेसोलुशन मॉनिटर से कनेक्टेड होगी। मॉनिटर के सामने बैठा व्यक्ति देख पायेगा कि डिब्बा खाली है या भरा।

कुछ ही दिनों में ये सिस्टम इम्प्लीमेंट कर दिया, पर जब एक छोटी रैंक के कर्मचारी को इस समस्या का पता चला तो उसने इस समस्या हल बड़े ही सस्ते और आसान तरीके से निकाल दिया। एक ऐसा तरीका जिसमें ना लाखें की मशीन खरीदने का खर्च था और ना ही किसी आदमी को रखने की जरूरत।

सोचिये अगर आपके सामने ये समस्या आती तो आप क्या करते?

स्वीकृत सुझाव एवं क्रियान्वित– उसने एक हाई पावर इलेक्ट्रिकल फैन खरीदा और असेंबली लाइन के सामने लगा दिया, अब हर एक डिब्बे को पंखे की तेज हवा के सामने से होकर गुजरना पड़ता और जैसे ही कोई खाली डिब्बा सामने आता हवा से उसे उड़ा कर दूर फेंक देती। फ्रेंड्स, इस तरह के सोल्यूशन को हम आउट ऑफ द बॉक्स या क्रिएटिव थिंकिंग कहते हैं और सबसे अच्छी बात ये है कि इसका किताबी ज्ञान से कोई लेना–देना नहीं होता। हममें से हर एक व्यक्ति अपनी समस्याओं को सरल तरीकों से सुलझा सकता है पर शायद हम सबसे पहले दिमाग में आने वाले हल को ही पकड़ कर बैठ जाते हैं आइये इस केस स्टडी से प्रेरणा लेते हुए हम भी अपनी समस्याओं के नए–नए समाधान ढूंढे और इस जीवन को सरल बनाऐं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रबन्ध : प्रक्रिया या कार्य, प्रबन्धकीय भूमिका एवं स्तर
(Managment : Process or Functions, Managerial Role and Levels)

प्रबन्ध किसी कार्य को करने अथवा कराने की एक निश्चित प्रक्रिया है जो तब तक चालू रहती है जब तक कि पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता है। स्टोनर के शब्दों में 'प्रक्रिया कार्यो को व्यवस्थित रूप से करने का तरीका है।' प्रबन्ध एक जटिल, लचीली एंव गतिशील प्रक्रिया है। प्रबन्धक द्वारा पूर्ण की जाने वाली प्रक्रिया में विभिन्न चरण या कार्य या तत्व होते है यह तत्व अपने आप में स्वतन्त्र नहीं होते बल्कि आपस में एक–दूसरे पर अन्तः निर्भर होते हैं तथा अनेक तत्वों से प्रभावित भी होते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक किये जाने वाले कार्यो की सतत् श्रृंखला है। इस श्रृंखला में कई चरण या कदम है जिन्हें क्रमबद्ध तरीके से पूर्ण करते हुए लक्ष्य प्राप्ति तक एवं उसके पश्चात् भी अनवरत चलते रहना होता है। प्रारम्भ में योजना बनाने से क्रियान्वयन तक, तत्पश्चात् किये गए कार्य का मूल्याकंन करने तक की प्रक्रिया में प्रबन्धक उद्देश्य निर्धारण, नियोजन, संगठन, नियुक्ति, निर्देशन, नेतृत्व, सम्प्रेषण, अभिप्रेरणा एवं नियन्त्रण आदि कई प्रबन्धकीय कार्यों को निष्पादित करता है। इसे ही संयोजित या सामूहिक रूप से 'प्रबन्ध प्रक्रिया' कहते है। यह प्रबन्ध प्रक्रिया 'प्रबन्ध प्रतिरूप' Managment model भी कहलाता है।

प्रबन्ध प्रक्रिया : विशेषताएँ

1. प्रबन्ध कार्यों की निरन्तर एवं गतिशील प्रक्रिया है।

2. प्रबन्ध के सभी कार्य प्रबन्धक द्वारा किये जाते है। अतः यह मानवीय प्रक्रिया है।

3. प्रबन्ध की क्रियाएँ मूलतः व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर करती है। अतः प्रबन्ध एक सामाजिक क्रिया है।

4. प्रबन्धक अपने प्रभाव का प्रयोग कर लक्ष्य प्राप्ति का पूर्ण प्रयास करता है। इसलिए यह प्रभावोत्पादक एवं परिणाम प्रधान प्रक्रिया है।

5. लक्ष्य प्राप्ति की यह प्रक्रिया व्यक्तिगत जीवन से लेकर सभी छोटे–बड़े, व्यावसायिक–गैर व्यावसायिक संगठनों में प्रयुक्त होती है इसलिए सार्वभौमिक प्रक्रिया कहा जाता है।

प्रबन्ध प्रक्रियाः चरण या प्रबन्ध : कार्य

प्रबन्ध प्रक्रिया में बहुत से कार्य सम्मिलित है, किन्तु इन कार्यो के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच मत–भिन्नता है, जो उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली, उनके दृष्टिकोण एवं उनके अनुभव के कारण है। जो निम्न विवरण तालिका/सारणी से स्पष्ट है–

'प्रबन्ध कार्य' विद्वानों के अभिमत अनुसार :–

1. राल्फ डेविस	:	नियोजन, संगठन, नियन्त्रण
2. कुन्ट्ज ओ'डोनेल	:	नियोजन, संगठन, नियुक्ति, निर्देशन, नियन्त्रण
3. ब्रेक	:	नियोजन, संगठन, अभिप्रेरणा, समन्वय, नियन्त्रण
4. हेनरी फेयोल	:	नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय, नियन्त्रण
5. लिण्डाल उर्विक	:	नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय, सन्देशवाहन, पुर्वानुमान, जाँच
6. लुथर गुलिक	:	नियोजन, संगठन, नियुक्ति, निर्देशन, समन्वय, विवरण देना, बजटिंग

उपरोक्त कार्यो के अतिरिक्त कई विद्वानों ने प्रबन्ध के बहुत अन्य कार्य भी बताए है। प्रबन्धक द्वारा किए गए कार्यो की सूची बहुत विस्तृत हो सकती है। किन्तु अध्ययन की दृष्टि से इन कार्यो को दो भागों में विभक्त कर सकते है–(अ) प्रमुख कार्य (ब) सहायक कार्य

(अ) प्रमुख कार्यः– उपरोक्त वर्णित सारणी का विश्लेषण करने पर विभिन्न प्रबन्ध विचारकों में भी तीन कार्य की समानता नजर आ रही है। ये कार्य है– नियोजन, संगठन एवं नियन्त्रण। इसे अन्य शब्दों में ऐसे भी व्यक्त कर सकते हैं– नियोजन, क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण। नियोजित कार्य को क्रियान्वित करने के लिए संगठन में योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति एवं उनका निर्देशन भी आवश्यक होता है। नियुक्ति कर्मचारियों को सौंपे गए कार्यो की जांच भी करनी पड़ती है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रबन्धक सभी से कार्य करवाता है तथा संसाधनों का आंवटन करता है, तो उसे सभी को साथ लेकर चलना पड़ता है अर्थात् समन्वय करना पड़ता है इसलिए प्रबन्ध के प्रमुख कार्यो में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है–1. नियोजन 2. संगठन 3. निर्देशन 4. नियन्त्रण 5.

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समन्वय

1. नियोजनः– किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले अपेक्षित कार्यो की रूपरेखा या चित्रण ही नियोजन है। उदाहरण के लिए, किसी कार्य हेतु किसी गंतव्य स्थान पर पहुँचना है तो हम निम्न बातों पर विचार करते है– कब पहुँचना है, कितनी दूरी है, कौनसा रास्ता व कौनसा साधन उपयुक्त रहेगा, साथ में क्या–क्या ले जाना है, कितना खर्च कर सकते है इत्यादि इन सभी प्रश्नों के उपयुक्त उत्तर (उपलब्ध विकल्पों में से एक का चयन करना) प्राप्त कर गंतव्य तक सही समय पर पहुँचने की रूपरेखा तैयार करते है। यही 'नियोजन' है। प्रबन्धक भी संगठन के लक्ष्य प्राप्त करने हेतु ऐसे ही प्रश्नों पर विचार कर कार्य करने से पूर्व कार्य की रूपरेखा या कार्य योजना बनाता है जिससे निर्धारित लक्ष्य सुगमता से प्राप्त हो सके। प्रबन्धक इस कार्य योजना (Action plan) के साथ इस हेतु आवश्यक साधनों, विधियों, कार्य–पद्धतियों, नियमों, कार्य–प्रणालियों, समय व बजट (पूँजी) का भी अग्रिम निर्धारण करता है।

नाइल्स के शब्दों में–''नियोजन किसी उद्देश्य को पूरा करने हेतु सर्वोत्तम कार्यपथ पर चुनाव करने एवं विकास करने की जागरूक प्रक्रिया है।'' नियोजन मूलतः प्रत्येक कार्य को करने के लिए उपलब्ध विविध विकल्पों में से श्रेष्ठ या उचित का चयन करना एवं जागरूक रहते हुए बदलती परिस्थितियों के साथ विकल्प का बदलना है। इसीलिए गोइज (Goetyz) के अनुसार, नियोजन एक चयन प्रक्रिया है तथा नियोजन की समस्या का जन्म कार्य के वैकल्पिक तरीकों की खोज के साथ होता है।

नियोजन कार्य के प्रमुख घटक या तत्व है–उद्देश्य; नीतियाँ; कार्य विधियाँ; प्राविधियाँ; रीतियाँ; नियम; कार्यक्रम; व्यूहरचना; प्रमाप या मापदण्ड; समय; बजट आदि। भविष्य की समयावधि को ध्यान में रखते हुए योजनाएँ दीर्घकालीन या अल्पकालीन हो सकती है।

2. संगठन :– यह प्रबन्ध प्रक्रिया का महत्वपूर्ण कार्य है। उद्देश्य प्राप्ति हेतु जो आवश्यक कार्य या क्रियाएँ सम्पन्न करनी है उसका निर्धारण करना, उन कार्यो का विभाजन व वर्गीकरण करना, उस कार्य को करने योग्य व्यक्तियों की योग्यता का निर्धारण करना, अधिकार व दायित्व तय करना, सभी कार्य करने वाले व्यक्तियों (कर्मचारियों) के आपसी संबंध निर्धारित करना, समान कार्यों का विभागीकरण करना इत्यादि महत्वपूर्ण रचना (संगठन संरचना) प्रबन्धक को करनी पड़ती है। इससे ही विभाग–विभागाधिकारी, अधिकारी–अधीनस्थ सम्बन्ध, सम्प्रेषण प्रारूप, नियन्त्रण की विधि निर्धारित होती है। संस्था की सफलता एवं स्थायित्व उसके संगठन रचना व संगठन कार्य पर निर्भर करती है। इसलिए प्रबन्ध चिन्तकों ने इसे मानव शरीर में स्थित 'मेरुदण्ड' के समकक्ष बताया है।

3. निर्देशनः– किसी कार्य को करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग किस प्रकार किया जायें कि अधिकतम सफलता या लक्ष्य प्राप्त हो सकें–यही निर्देशन है। समान संसाधनों के होते हुए भी प्रत्येक निर्देशक (प्रबन्धक) के प्राप्त परिणाम भिन्न होते है। इसका अच्छा उदाहरण भारतीय फिल्म उद्योग में मिलता है। 1917 में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखे गए एक रोमांटिक उपन्यास 'देवदास' पर 1927 से लेकर 2013 तक 14 फिल्म निर्देशकों द्वारा 16 फिल्में हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं में बनाई गई किन्तु सबका परिणाम (कमाई) भिन्न–भिन्न रहा। यह एक ही उपन्यास पर आधारित इतनी फिल्में बनने का अनूठा उदाहरण है। हिन्दी में चार बार 1935, 1955, 2002 व 2009 में बनी इन फिल्मों का फिल्माकंन एवं प्रस्तुति पर अमेरिका के प्रमुख शोध विश्वविद्यालय–यूनिवर्सिटि ऑफ आयोवा (www.uiowa.edu) ने निर्देशन का तुलनात्मक अध्ययन किया है। फिल्म निर्देशक–नायक, नायिका, खलनायक व सभी पात्रों को अभिनय, नृत्य व बातचीत करने के तरिके का निर्देश देता है। संगीतकार, कैमरामेन, ड्रेस डिजानयर एवं फिल्म के निर्माण में लगे सभी व्यक्तियों को आदेश–निर्देश देता है, अभिप्रेरित करता है, पर्यवेक्षण व जाँच करता है अंततः संयोजन कर फिल्म प्रदर्शन के लिए तैयार करता है। सम्भवतः आप निर्देशन कार्य की व्यापकता, प्रांसगिकता एवं जटिलता को समझ पाये होंगे।

प्रबन्धक भी संगठन में कार्यरत अधिकारी–कर्मचारियों को आदेश–निर्देश देता है, अभिप्रेरित करता है, नेतृत्व करता है, सम्प्रेषण करता है, पर्यवेक्षण करता है। निर्देशन के द्वारा प्रबन्धक कर्मचारियों के व्यवहार को संगठन के अनुकूल बनाता है, संस्था के प्रति अपनत्व भाव (Belongingness) उत्पन करता है। जिससे वे स्वेच्छा से उद्देश्य प्राप्ति में योगदान देने को तत्पर या तैयार होते हैं। निर्देशन में समाहित इन सभी कार्यो के लिए निर्देशक (प्रबन्धक) का प्रभावी व्यक्तित्व होना आवश्यक है। निर्देशन कार्य के प्रमुख घटक है– अनुशासन; आदेश–निर्देश; अधिकारों का भारार्पण; सम्प्रेषण; अभिप्रेरण; नेतृत्व; पर्यवेक्षण इत्यादि।

4. नियन्त्रणः– नियन्त्रण से प्रबन्धकीय कार्यो का कुशलता से निष्पादन सम्भव होता है। कार्य के प्रमाप नियोजन के समय ही लक्ष्य निर्धारण के साथ निर्धारित कर दिए जाते है। कर्मचारी द्वारा सम्पन्न किए गए कार्य के वास्तविक परिणामों को इन पूर्व निर्धारित मानकों से तुलना कर विचलन– अधिक या कम (+/–) ज्ञात करते है। ज्ञात विचलनों का प्रयोग सुधारात्मक प्रयास करने के लिए या आगामी योजना में विस्तार के लिए करते

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

है।

हेनरी फेयोल के अनुसार– ''नियन्त्रण का आशय यह जाँचने से है कि संस्था के सभी कार्य या योजनाएँ, दिए गये निर्देश एवं निर्धारित नियमों के अनुसार हो रहे है या नहीं। नियन्त्रण का उद्देश्य कार्य की त्रुटियों का पता लगाना है। जिससे यथासमय उसमें सुधार किया जा सके तथा भविष्य में इस प्रकार की त्रुटियों की पुनरावृत्ति रोकी जा सके।''

नियन्त्रण प्रक्रिया के चार प्रमुख तत्त्व है–प्रमाप का निर्धारण करना; कार्यो का मूल्याकंन व परिणाम विवरण तैयार करना; वास्तविक परिणामों का प्रमापों से तुलनाकर विचलन ज्ञात करना तथा विचलनों के आधार पर संशोधन या सुधारात्मक कार्यवाही करना।

5. समन्वय :– संगठन में कर्मचारियों की क्रियाओं, कार्यविधियों, कार्य क्षमताओं व गुणों में पर्याप्त भिन्नता तथा पायी जाती है, जिससे व्यक्तिगत व अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष की सम्भावना रहती है। किन्तु प्रबन्धक को इनके प्रयासों में एकरूपता व सामंजस्य उत्पन्न करना होता है, ताकि न्यूनतम लागत पर निश्चित लक्ष्य प्राप्त किया जा सकें। भौतिक साधनों की सीमितता तथा अधिकतम प्रयोग की बाध्यता के कारण इनके आवंटन में भी सामंजस्य उत्पन्न करना पड़ता है। ताकि प्रति ईकाई उपरिव्यय लागत न्युनतम हो सके। मैसी के अनुसार– ''समन्वय अन्य प्रबन्धकीय कार्यो के उचित क्रियान्वयन का परिणाम है।'' इसीलिए कून्टज् ओ'डोनेल ने तो कहा कि– ''समन्वय प्रबन्ध का सार है।''

सहायक कार्य :– प्रबन्ध के प्रमुख कार्यो को सम्पन्न करने के लिए उसके उपभाग या सहायता के लिए जो कार्य किये जाते है वो सहायक कार्य है। सहायक कार्य संगठन, प्रबन्धक, संसाधन के अनुसार कई हो सकते है। उसमें से सामान्यतः किये जाने वाले कार्य निम्न है–

(1) निर्णयन :– यह किसी कार्य को करने या नहीं करने के संबंध में उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से किसी एक 'श्रेष्ठ विकल्प' के चयन की प्रक्रिया है। यह एक बौद्विक प्रक्रिया है। जिसके द्वारा किसी समस्या के समाधान या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कुछ सम्भावित विकल्पों में से एक उपयुक्त विकल्प का चयन किया जाता है। प्रबन्धकों को प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते है जो संगठन के कार्यो व कार्य प्रणाली को प्रभावित करते हैं। यह प्रबन्धकीय कार्य 'निर्णयन' प्रबन्ध के प्रत्येक कार्य में अन्तर्व्याप्त होता है। इसलिए हरर्बट साइमन कहते है कि–''निर्णयन एवं प्रबन्ध सामानार्थक है।''

(2) नियुक्ति करना :– संगठन संरचना के दो प्रमुख भाग है– प्रथम, भौतिक संरचना करना– जिसमें भवन उपकरण–मशीन, सामग्री तथा पूँजी आदि साधनों को एकत्रित कर व्यवस्थित करना आदि शामिल है। दूसरा, मानवीय संरचना–जिसमें योग्य कर्मचारियों की भर्ती एवं विकास का कार्य होता है। प्रबन्धक संस्था में किए जाने वाले कार्यो के अनुरूप योग्य व्यक्ति उचित पारिश्रमिक पर चयन कर नियुक्त करता है। कर्मचारी की भर्ती से लेकर सेवा निवृत्ति तक के समस्त कार्य इसमें सम्मिलित होते है। परिवर्तन के दौर में बदलते उत्पाद, तकनीक व बाजार के कारण श्रमिक या कर्मचारियों की छंटनी व नियुक्ति निरन्तर चलती रहती है। यह प्रबन्ध में निरन्तर चलते रहने वाला सहायक कार्य है।

(3) नवप्रवर्तन या नवाचार :– सूचना–प्रौद्योगिकी के क्रान्तिकारी युग में हर पल बदलाव आ रहा है। हम सभी मोबाइल का प्रयोग करते है आप देखते होगें कि हर रोज नये वैशिष्ट्य (Feature) के साथ नए तरीके का मोबाइल बाजार में आ रहा है, यही नहीं मोबाइल में प्रयुक्त एप (Application) के वैशिष्ट्यता (Functions) में भी निरन्तर सुधार या विकास हो रहा है, यही नवाचार या नवप्रर्वत्तन है। बदलते परिवेश में निरन्तर उत्पाद विकास व शोध पर कार्य करते रहना प्रबन्धक का कार्य हैं। यहीं नहीं नये बाजार का सृजन या खोज करना, कच्ची सामग्री को सस्ती दर पर प्राप्त करने हेतु नए आपूतिकर्त्ता खोजते रहना, नई तकनीक व मशीनें ढूँढ़ना तथा कुशल, योग्य व प्रभावी व्यक्तियों को संगठन से जोड़ना यह समस्त कार्य कुशल प्रबन्धक निरन्तर करता रहता है। ऐसा करना संगठन के अस्तित्व, सफलता एवं विकास या विस्तार के लिए अपरिहार्य है। पीटर ड्रकर ने इस कार्य को प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण व प्रमुख कार्य बताया है।

(4) सम्प्रेषण :– प्रबन्धक व कर्मचारियों के मध्य विचारों, तथ्यों, सूचनाओं एवं भावनाओं के आदान–प्रदान को सम्प्रेषण कहते है। सम्प्रेषण प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर सन्देश, निर्देश, आदेश, सुझाव व सूचनाओं का प्रसारण है ताकि कर्मचारी कुशलता पूर्वक कार्य निष्पादित कर सके। संगठन में सुचारू सम्प्रेषण व्यवस्था या प्रणाली को लागू करना प्रबन्धक का विशेष कार्य है। प्रभावी सम्प्रेषण प्रणाली से कर्मचारियों में फैलने वाले भ्रम, अफवाह, मनमुटाव या दुर्भावनाओं को दूर किया जा सकता है।

(5) प्रतिनिधित्व :– प्रत्येक व्यवसाय को प्रभावित करने वाले बाहरी घटक तत्वों से सम्पर्क में रहना, उनसे अच्छे संबंध बनाना, सम्बन्धों को बनाए रखना, वार्तालाप करना, उनके साथ विचार गोष्ठियाँ करना तथा संगठन के हितों की सुरक्षा करना यह समस्त कार्य आज के वैश्विक युग में नितान्त आवश्यक हो गया है। इसके लिए प्रबन्धक को सम्बधित एसोसिएशन, दल या संघ में हिस्सा लेने के लिए संगठन का प्रतिनिधित्व करना पड़ता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उपरोक्त सभी कार्य संस्था में कार्यरत प्रबन्धक करते है, लेकिन प्रश्न आता है कि–

क्या सभी प्रबन्धक प्रत्येक कार्य को समान मात्रा में समय देते है ? या

प्रबन्धक वास्तव में क्या कार्य करते है ?

मैकगिल विश्वविद्यालय के प्रबन्ध विचारक प्रोफेसर हेनरी मिनट्ज बर्ग (H. Mintz Berg) ने प्रबन्धकों की क्रियाओं का अध्ययन करके बताया कि–प्रत्येक कार्य पर दिया जाने वाला समय प्रबन्धकीय स्तर के साथ–साथ बदलता रहता है। सामान्यतः उच्च स्तर का प्रबन्धक नियोजन पर अधिक, मध्यम स्तरीय प्रबन्धक निर्देशन, नेतृत्व, समन्वय व सम्प्रेषण पर तथा प्रथम पंक्ति (निम्न स्तरीय) प्रबन्धक निर्देशन, अभिप्रेरणा व पर्यवेक्षण–नियन्त्रण पर अधिक समय देता है। मिन्ट्ज बर्ग ने शोध अध्ययन से विभिन्न स्तरीय प्रबन्धकों द्वारा प्रबन्धकीय कार्यो पर व्यतीत समय की तुलनात्मक रिर्पोट इस प्रकार चित्रमय प्रदर्शित की है–

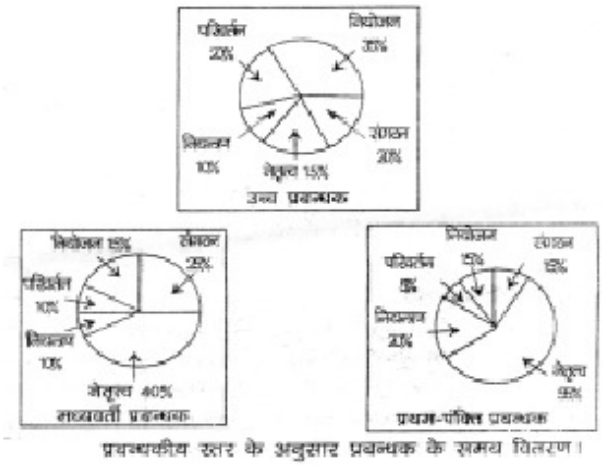

प्रबन्धकीय स्तर के अनुसार प्रबन्धक के समय वितरण।

यह प्रबन्धक क्या करते है ? इस प्रश्न का उत्तर मिन्ट्जबर्ग क्रिया या भूमिका अभिमुखी दृष्टिकोण से व्यक्त किया है।

प्रबन्धकीय भूमिका (Managerial Role) :–

भूमिका Role – का आशय प्रबन्धक के व्यवहार एवं व्यवहारों के समूह तथा कार्य व क्रियाओं के समूह से है, जिसकी अपेक्षा समाज व संगठन उससे करता है और उसके अनुरुप प्रबन्धक उनसे व्यवहार करता है या भूमिका निभाता है।

प्रोफेसर हेनरी मिन्ट्जबर्ग ने पाँच बड़ी औद्योगिक कम्पनीयों के उच्च स्तरीय प्रबन्धकों– (मुख्य कार्यकारी प्रबन्धक) की क्रियाओं एवं व्यवहार (भूमिका) का अध्ययन किया। उनका शोध अध्ययन निम्न मान्यताओं पर आधारित था–

1. प्रबन्धकों को संस्था में उच्च पद स्थिति (Position) और अधिकार सत्ता (निर्णयन) प्राप्त होती है।

2. अधिकारिक शक्ति या सत्ता एवं उच्च पद स्थिति उन्हें अपने अधीनस्थों व सहकर्मियों के साथ लोक व्यवहार के कारण अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का निर्माण करने में सहायता करता है।

3. प्रबन्धकों की संस्था में उच्च पद स्थिति एवं अधीनस्थों से अन्तर्वैयक्तिक संबंध संगठन व लोक व्यवहार में प्रबन्धकों की कई भूमिकाएँ उत्पन्न करता है।

प्रबन्धक के कार्यो व उसकी भूमिकाओं का मेल भी मिन्ट्जबर्ग ने निम्न प्रकार के व्यक्त किया है–

भूमिका (Role)	कार्य (Functions)
(अ) अन्तर्वैयक्तिक	(1) नियोजन
	(2) संगठन
(ब) सूचनात्मक	(3) निर्देशन
(स) निर्णयात्मक	(4) नियन्त्रण

प्रबन्धकीय भूमिकाएँ प्रबन्धकों की पद स्थिति एवं उस पर प्राप्त अधिकारों की मात्रा पर निर्भर करती है। प्रबन्धकों के

प्रबन्धकीय भूमिकाएँ

(अ) अन्तर्वैयक्तिक भूमिकाएँ

(1) मुखिया की भूमिका (Figurehead Role)

(2) नायक या नेता की भूमिका (Leader's Role)

(3) सम्पर्क अधिकारी की भूमिका (Liason Officer's Role)

(ब) सूचनात्मक भूमिकाएँ

(1) प्रबोधक या निरीक्षक भूमिका (Monitor's Role)

(2) प्रसारक या प्रचारक भूमिका (Dissaminatore's Role)

(3) प्रवक्ता की भूमिका (Spokes Person's Role)

(स) निर्णयात्मक भूमिकाएँ

(1) साहसी या उद्यमी भूमिका (Entrepre neur's Role)

(2) अशान्ति या उपद्रव निवारक भूमिका (Disturbance Handler's Role)

(3) संसाधन वितरक या आवण्टक भूमिका (Resource Allocator's Role)

(4) मध्यस्थ या वार्त्ताकार भूमिका (Ngotiator's Role)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यक्तिगत कौशल (ज्ञान, चातुर्यता व लोक व्यवहार) के साथ उनकी पद स्थिति एवं अधिकार जोड़ दिए जाएँ तो प्रबन्धकों की भूमिकाएँ उभरती है या निर्धारित होती है। मिनट्ज बर्ग ने प्रबन्धकों की 10 तरह की भूमिकाएँ निर्धारित की एवं उनका वर्गीकरण करते हुए मूलतः तीन प्रमुख भूमिकाओं का वर्णन किया है।

अन्तर्वैयक्तिक भूमिकाएँ (Interpersonal Roles)

अपनी औपचारिक सत्ता, पद एवं स्थिति के कारण प्रबन्धक अन्तर्वैयक्तिक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। इन भूमिकाओं में निम्नलिखित शामिल हैं–

1. संस्था अध्यक्ष–इस भूमिका में अपनी संस्था का मुखिया या अध्यक्ष होने के नाते प्रबन्धक वैधानिक प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करते हैं, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा समारोह आदि की अध्यक्षता करते हैं।

2. नेता–नेता की भूमिका में प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करते हैं। वे अपनी सत्ता, समन्वय तकनीकों तथा अभिप्रेरण उपायों के द्वारा व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा संगठन के लक्ष्यों में एकीकरण स्थापित करते हैं।

3. सम्पर्क अधिकारी–प्रबन्धक अपने संगठन एवं बाह्य पक्षों तथा विभिन्न विभागों व संगठनात्मक इकाइयों के मध्य सम्पर्क सूत्र की भूमिका भी निभाते हैं। यह भूमिका सूचनाओं के आदान–प्रदान तथा समन्वय की दृष्टि से अन्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

सूचनात्मक भूमिकाएँ (Informational Roles)

इन भूमिकाओं में प्रबन्धक विभिन्न सूचनाओं, तथ्यों व ज्ञान का संग्रहण एवं वितरण करते है। इस प्रकार वे संगठन के 'स्नायु केन्द्र' (Nerve Centre) माने जाते हैं। इससे सम्बन्धित उनकी निम्न तीन भूमिकायें होती हैं–

1. प्रबोधक–प्रबन्धक को नियोजन, निर्णयन व अन्य प्रबन्धकीय कार्यों के लिए विभिन्न सूचनाओं की आवश्यकता होती है। अतः वह अपने संगठन तथा इसके वातावरण के बारे में विभिन्न ज्ञान स्त्रोतों से सूचना सामग्री एकत्रित करता है। वह अपने अधिकारियों, अधीनस्थों, सह–प्रबन्धकों तथा अन्य सम्पर्क सूत्रों के माध्यम से जानकारी प्राप्त करता है।

2. प्रसारक–प्रबन्धक इस भूमिका में एकत्रित सूचनाओं को उपयोगिता एवं आवश्यकता अनुसार अपने अधीनस्थों व सम्बन्धित ईकाइयों को वितरित एवं प्रसारित करता है। इसमें तथ्यात्मक सूचनाएँ तथा मूल्य सूचनाएँ (Value informations) दोनों प्रसारित की जाती है। मूल्य सूचनाएँ प्रबन्धकों के दृष्टिकोण, प्राथमिकता आदि से सम्बन्धित होती है।

3. प्रवक्ता–प्रवक्ता की भूमिका में प्रबन्धक अपने संगठन की योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों के बारे में बाह्य पक्षकारों–ग्राहकों, सरकार, समुदाय, संस्थाओं आदि को विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ संचार माध्यम से प्रेषित करता है।

निर्णयात्मक भूमिकायँ (Decisional Roles)

यह प्रबन्धकों की व्यूहरचना–निर्माण करने (Strategy making) सम्बन्धी भूमिका होती है। ये भूमिकायें तीन प्रकार की होती हैं–

1. उद्यमी–इस भूमिका में प्रबन्धक अपने संगठन के लिए विभिन्न सम्भावनाओं, अवसरों व खतरों का पता लगाता है तथा उनके अनुरूप परिवर्तनों व सुधारों को लागू करता है। वह वातावरण में होने वाले परिवर्तन से लाभ उठाने के लिए संगठन में नवप्रवर्तनों को लागू करता है।

2. उपद्रव निवारक–प्रबन्धक अपने संगठन में उत्पन्न होने वाले दिन प्रतिदिन के झगड़ों, उपद्रवों, उत्पात, मनमुटावों, संघर्षो, अशान्तियों को दूर करता है। वह कर्मचारियों की विभिन्न समस्याओं व दबावों के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करता है। वह हड़तालों, अनुबन्ध खण्डन, कच्चे माल की कमी, कर्मचारियों की शिकायतों व कठिनाईयों पर विचार कर पद स्थिति तथा अधिकारों का प्रयोग करते हुए उन्हें दूर करता है।

3. संसाधन वितरक–इस भूमिका में प्रबन्धक अधीनस्थों के समय प्रबंधन, संसाधनों व कार्यो के बारे में कार्य योजना (कार्यक्रम) बनाता है। वित्त, कच्चे माल, यन्त्र, अन्य आपूर्ति आदि के आवंटन के बारे में निर्णय लेता है। विभिन्न विभागों की संसाधन–प्राथमिकताएँ निश्चित कराता है। बजट आदि तैयार करता है। इस प्रकार प्रबन्धक संगठन के संसाधनों को क्यों, कब, कैसे, किसके लिए खर्च करने सम्बन्धी निर्णय लेता है।

4. वार्ताकार–प्रबन्धक विभिन्न पक्षकारों के विभिन्न समूहों जैसे श्रम संघ, पूर्तिकर्त्ता, ग्राहक, सरकार व अन्य एजेन्सियों के साथ समझौतों सम्बन्धी वार्ताएँ करके संगठन को लाभान्वित करता है। वह विभिन्न विवादों की दशा में भी उनके हल के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

प्रबन्धकीय पदानुक्रम (Managerial Levels)

प्रबन्धकीय पदानुक्रम– वे प्रबन्ध स्तर है जो विभिन्न प्रबन्धकों के बीच आदेश या सम्प्रेषण श्रृंखला का निर्माण करते है तथा उनके बीच लम्बवत् (सीधी रेखा) सम्बन्धों को बतलाते हैं। संगठन संरचना में विभिन्न स्तर होते है जो सत्ता अधिकार मात्रा, पद, स्थिति, आदि का अन्तर बताते है इन्हें ही पदानुक्रम (Hierarchy or Level) कहते हैं।

किसी संगठन में प्रबन्ध के पदानुक्रम कितने होंगे?यह संस्था के आकार, नियोक्ताओं के दर्शन, संगठन की विशेषताएँ व

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सीमाएँ, प्रबन्धकों की क्षमताएँ, अधिकारों के केन्द्रीयकरण या विकेन्द्रीकरण की नीति पर निर्भर करता है।

प्रत्येक संगठन में सर्वोच्च स्तर से लेकर निम्न स्तर (प्रथम पंक्ति) तक के कर्मचारियों में कार्यो व अधिकारों का विभाजन कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप अधिकारी–अधीनस्थ का संबंध निर्मित होता है। यह संबंध लम्बवत होते है एवं इससे ही प्रबन्धकीय स्तर का निर्माण होता है। प्रारम्भ में केवल दो ही स्तर होते थे–एक उच्च जो नियोक्ता या मालिक का होता था तथा शेष सभी कर्मचारीयों का निम्न स्तर होता था। किन्तु बदलते परिवेश में संगठन के आकार बहुत बड़े एवं कार्य प्रणाली जटिल हो रही है। संगठन के वास्तविक स्वामी (पूँजी निवेशक) भी व्यापारिक क्रियाओं में भाग नहीं लेते, ऐसी स्थिति में नियोक्ता (अशंधारक) समस्त कार्यो व अधिकारों को तीन स्तर पर विभाजित करने लगे है। प्रथम स्तर, जो सर्वोच्च या शीर्ष प्रबन्ध (Top Level) कहलाता है, जो नियोक्ताओं के हितों की रक्षा करते हुए उनके लक्ष्य प्राप्ति का कार्य करते है। उसी अनुरूप सर्वाधिक अधिकार उनके पास केन्द्रित होते हैं। शीर्ष स्तर का प्रबन्ध बृहत्त व जटिल संगठनों में रोजाना उभरती नई चुनौतियों का सामना करने एवं जटिलता को सरलता व सुगमता में परिवर्तित करने में अधिकतम समय व ऊर्जा व्यय करता है। संगठनों में धरातल पर कार्य की देखरेख एवं पूरा करवाने का जिम्मा या दायित्व जिन कर्मचारियों को दिया जाता है वो प्रथम या निम्न स्तरीय प्रबन्धक कहलाते हैं। प्रथम पंक्ति के कर्मचारियों से कार्य करवाने व उनके कार्यो की जाँच या निरीक्षण करने के लिए बीच की कड़ी में मध्यम स्तर के कर्मचारियों की नियुक्ति कर दी जाती है। इस प्रकार आधुनिक युग में संचालित बड़े आकार के संगठनों में प्रबन्धकीय पदानुक्रम या स्तर का यही स्वरूप सार्वभौमिक हो गया है।

उच्च स्तरीय प्रबन्ध : सामान्यतः उच्च या शीर्ष पदों पर क्रियाशील प्रबन्धकों का समूह उच्च स्तरीय या उच्च प्रबन्ध कहलाता है। अन्य शब्दों में, प्रबन्ध की कार्यात्मक विचारधारा के अनुसार संगठन में नियोजन एवं नीति–निर्धारण प्रबन्ध को उच्च स्तरीय प्रबन्ध कहा जाता है। लुईस ए. ऐलन के अनुसार,''उच्च प्रबन्ध, नीति–निर्धारक समूह है, जो कम्पनी की समस्त क्रियाओं के निर्देशन एवं सफलता के लिए उत्तरदायी है।''

इस प्रकार उच्च स्तरीय प्रबन्ध में संचालक मण्डल, अध्यक्ष, प्रबन्ध संचालक, महाप्रबन्धक आदि आते हैं। इसे मुख्य अधिशासी (Chief Executive) के नाम से भी जाना जाता है।

उच्च स्तरीय प्रबन्ध का मुख्य कार्य संस्था की नीतियों का निर्धारण करना है ताकि संगठन का कुशल संचालन किया जा सके। लिविंग्स्टन के अनुसार उच्च स्तरीय प्रबन्ध के तीन कार्य हैं– 1. निर्णयात्मक कार्य–विचारों का उद्गम, नियोजन, उद्देश्यों का निर्धारण, प्रक्रिया संरचना, समन्वय एवं अधिकारियों की नियुक्ति, नीति–निर्धारण एवं विश्लेषण, क्रियान्वयन, अधिकारों का हस्तान्तरण, वित्तीय साधन का चुनाव एवं उन्हें जुटाना और लाभ का वितरण करना। 2. मंशा (Opinion) जानना।

3. न्याय सम्बन्धी कार्य–नीतियाँ एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की तुलना करना, लागत एवं वैकल्पिक आधार का मूल्यांकन करना।

उच्च स्तरीय प्रबन्ध के सहायक कार्य निम्नलिखित हैं–

1. उपक्रम के उद्देश्य को निश्चित करना एवं नीतियों की व्याख्या करना।
2. आवश्यक आदेश–निर्देश प्रसारित करना।
3. महत्वपूर्ण मामलों पर विचार–विमर्श करना।
4. उपक्रम में दीर्घकालीन स्थायित्वता लाना।
5. बजट का अनुमोदन करना।
6. योजनाओं एवं परिणामों की जाँच करना।
7. संगठन–संरचना के अन्तर्गत अधीनस्थों में स्वैच्छिक आधार पर कार्य करने की भावना को विकसित एवं बनाये रखना।
8. अधिकारियों में मितव्ययिता तथा कार्य–कुशलता का उच्च स्तर बनाये रखना।
9. मुख्य कार्यकारी अधिकारियों का चयन करना।
10. उपक्रम की सम्पत्तियों के प्रन्यासी या निक्षेपी के रूप में कार्य करते हुए उनकी सुरक्षा करना।

नियोक्ता (अंशधारी)

प्रबन्धकीय स्तर

उच्च/शीर्ष प्रबन्ध	मध्यम प्रबन्ध	प्रथम पंक्ति/निम्न/प्रबन्ध
संचालक मण्डल प्रबन्ध संचालक	क्षेत्रीय प्रबन्धक	शाखा प्रबन्धक
मुख्य कार्यकारी अधिकारी	मण्डल प्रबन्धक	अनुभाग प्रबन्धक
अधिशाषी अधिकारी	विभागीय प्रबन्धक	पर्यवेशक प्रबन्धक निरीक्षक
	सयन्त्र प्रबन्धक	फौरमेन दल नायक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मध्य–स्तरीय प्रबन्ध : मध्य–स्तरीय प्रबन्ध का आशय उस स्तर से है जो उच्च एवं निम्न स्तरीय प्रबन्ध के मध्य होता है। अन्य शब्दों में, विभिन्न विभागों के अध्यक्ष एवं प्रथम व्यक्ति प्रबंधक के मध्य स्तर पर कार्यरत प्रबन्ध मध्य स्तरीय प्रबन्ध कहलाता है। मेरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार –''मध्य–स्तरीय प्रबन्ध अपने अधीनस्थों के प्रयासों से नीतियों को क्रियान्वित कराते हैं। वे आदेश–निर्देश एवं परामर्श नीचे की ओर प्रेषित करते हैं एवं सुझाव, निवेदन तथा शिकायत ऊपर की ओर प्रेषित करते हैं।''

इस प्रकार मध्य–स्तरीय प्रबन्ध में मण्डल प्रबन्धक, संयंत्र प्रबन्धक, विभागीय प्रबन्धक–उत्पादन, विपणन, वितरण एवं कार्मिक प्रबंधक आदि तथा क्षेत्रीय प्रबन्धक होते हैं। मध्य–स्तरीय प्रबन्ध का मुख्य कार्य क्रियात्मक या परिचालन प्रबन्ध तथा उच्च वर्गीय प्रबन्धकों के मध्य समन्वय स्थापित करना होता है। मध्य–स्तरीय प्रबन्ध के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. नीतियों की व्याख्या करना एवं समझाना।
2. कार्य संचालन हेतु विस्तृत निर्देश देना।
3. दैनिक कार्यों की प्रगति का मूल्यांकन करना।
4. क्रियात्मक कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहयोग देना।
5. विभागीय कार्यों के समन्वय में सहयोग देना।
6. परिचालन कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना।
7. पर्यवेक्षीय प्रबन्धकों को आवश्यक प्रशिक्षण देना।
8. पर्यवेक्षीय कर्मचारियों की समस्याओं को सुलझाना।
9. पर्यवेक्षीय प्रबन्ध स्तर पर उत्पन्न विवादों को निपटारा।
10. शोध एवं अनुसंधान के लिए प्रयत्न करना।

प्रथम–पंक्ति या पर्यवेक्षीय प्रबन्ध : प्रथम–पंक्ति पर्यवेक्षीय प्रबन्ध, जिसे निम्न–स्तरीय प्रबन्ध (Lower-Level Managament) भी कहते हैं, का तात्पर्य उन कार्यकारी नेतृत्व (Operating Leadership) प्रदान करने वाले पदों से है जिनका कार्य मुख्यतः कार्यकारी कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण एवं निर्देश करना होता है। आर.सी. डेविस के शब्दों में, ''पर्यवेक्षीय प्रबन्ध से आशय नेतृत्व करने वाले उन प्रबन्धकों से है जिनका मुख्य कार्य संचालन कर्मचारियों का व्यक्तिगत निरीक्षण एवं निर्देश करना है। इनका कार्य दैनिक कार्यों के निष्पादन से सम्बन्धित एवं तकनीकी प्रकृति का होता है।''

इस प्रकार प्रथम–पंक्ति या निम्न–स्तरीय प्रबन्ध में शाखा प्रबन्धक, मुख्य पर्यवेक्षक, कार्यालय अधीक्षक, मुख्य लिपिक, लेखाकार, निरीक्षक, फोरमेन, खण्ड प्रभारी एवं पारी पर्यवेक्षक आदि सम्मिलित हैं।

प्रथम–पंक्ति प्रबन्ध का मुख्य कार्य योजनानुसार कार्य करना, कार्यों में समन्वय स्थापित करना, पर्यवेक्षकों तथा श्रमिकों की समस्याओं का निवारण करना आदि है। प्रथम–पंक्ति प्रबन्ध के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. संचालकीय योजनाएँ बनाना।
2. कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करना एवं उनकी त्रुटियों में सुधार करना।
3. कर्मचारियों के कार्यों की समीक्षा करना।
4. कर्मचारियों की कार्यविधियों का ज्ञान करवाना।
5. कर्मचारियों या श्रमिकों को कार्यभार सौंपना।
6. विभिन्न संचालकीय कार्यों में समन्वय स्थापित करना।
7. उच्च प्रबन्धकों को सामाजिक प्रगति विवरण प्रस्तुत करना।
8. अधिकारियों से सम्पर्क रखना एवं आवश्यक सूचना देना।
9. दैनिक कार्य के प्रवाह पर नियंत्रण रखना।
10. कर्मचारियों के मामलों को उच्चाधिकारियों को भेजना।
11. कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना एवं उनमें अनुशासन बनाये रखना।
12. कर्मचारियों को आवश्यक शिक्षण–प्रशिक्षण प्रदान करना।
13. कर्मचारियों से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाये रखना।
14. कर्मचारियों को परामर्श, मार्गदर्शन देना एवं उनकी कार्य समस्याओं को हल करना।
15. कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन करना।

सारांश–

प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योजना पूर्वक किये गए प्रयासों एवं उसके समूह को प्रबन्ध कहते है। प्रारम्भ से अन्त तक किये जाने वाले प्रबंध कार्यों की सतत शृंखला है। प्रबन्ध प्रक्रिया में बहुत से कार्य शामिल होते है लेकिन प्रमुख रूप से सर्वत्र किए जाने वाले कार्य है– नियोजन, संगठन रचना, नियुक्तिकरण, निर्देश एवं नियंत्रण। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे–बड़े कार्य होते है जो संगठन व लक्ष्य प्रेरित होते है। समय के साथ परिवर्तित वातावरण में भी विभिन्न कार्यों की प्रांसगिकता बढ़ती–घटती रहती है या नए कार्य की शुरूआत हो जाती है। 21वीं सदी के आरम्भ में सृजनात्मकता एवं नवप्रवर्तन कार्य विशेष महत्वपूर्ण बन कर उभरा। सम्प्रेषण व व्यापार के तरीके बदले, कार्य दशाएँ एवं कर्मचारियों का स्वरूप बदला, फलस्वरूप प्रबन्ध के नए कार्य एवं तकनीकों का प्रादुर्भाव हुआ।

21 वीं सदी में संगठन के आकार, प्रकृति एवं लक्ष्य भी विस्तृत हो गए। वैश्विक स्तर पर दुनिया भर में व्यापार व उद्योग के विस्तार के साथ सर्वाधिक लाभ कमाना चिन्तन व लक्ष्य का केन्द्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बिन्दु हो गया। ऐसी जटिल, चुनौतिपूर्ण परिस्थितियों में विशाल कर्मचारियों के साथ कार्य करने के लिए पेशेवर प्रबन्धकीय व्यक्तियों प्रबन्धकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी। प्रबन्धक संगठन में कई स्तरों पर कार्य करते है। जिसे दायित्व व अधिकारों के आधार पर तीन स्तरों में वर्गीकृत किया जाता है– शीर्ष, मध्यम एवं पर्यवेक्षीय प्रबंधक।

प्रबन्धक क्या कार्य करते है ?इनकी संगठन में क्या भूमिका होती है ?इसे जानने व सामान्य व्यक्ति के समझने योग्य बनाने हेतु हेनरी मिन्टस्बर्ग में शोध कार्य किया, एवं प्रबन्धकीय भूमिका को स्पष्ट किया। सम्पूर्ण अध्याय प्रबन्ध के कार्य, कार्य प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप तथा स्तर को स्पष्ट करता है।

अभ्यास प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. प्रबन्ध प्रक्रिया किसे कहते है ?
2. नवप्रवर्तन से क्या आशय है ?
3. प्रबन्ध के कार्यों से क्या अभिप्राय है ?
4. प्रबन्ध के प्रमुख कार्य कौनसे है ?
5. अन्तर्वैयक्तिक भूमिका क्या होती है ?
6. पीटर ड्रकर ने प्रबन्ध का कौनसा कार्य प्रमुख माना है ?
7. मिनट्ज बर्ग के शोध कार्य का प्रश्न या विषय क्या था ?
8. प्रबन्ध के विभिन्न स्तर बताइये।
9. सम्पर्क भूमिका क्या है ?

लघूरात्तत्मक प्रश्न :

1. प्रबन्ध प्रक्रिया की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।
2. हेनरी मिनट्जबर्ग के शोध अध्ययन की मान्यताएँ क्या थी?
3. प्रबन्धक की निर्णयात्मक भूमिका बताइये।
4. उच्च स्तरीय प्रबन्ध किसे कहते है ?
5. उच्च एवं मध्य स्तरीय प्रबन्ध में क्या अन्तर है ?
6. पर्यवेक्षीय प्रबन्धक के कार्य बताइयें।
7. प्रबन्ध के सहायक कार्य बताइये।
8. वार्ताकार भूमिका क्या है ?
9. प्रबन्ध के मध्यम स्तरीय अधिकारी कौन होते है ?

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. प्रबन्ध प्रक्रिया से आप क्या समझते है? इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्रबन्ध प्रक्रिया क्या है? प्रबन्ध के कार्यो का वर्णन किजिए।
3. प्रबन्धकीय भूमिका से क्या तात्पर्य है। मिनट्जबर्ग की प्रबन्धकीय भूमिकाएँ की विवेचना कीजिए।
4. प्रबन्धकीय कार्य में विभिन्न स्तरों की आवश्यकता क्यों है ? विभिन्न स्तरीय प्रबन्धकों के कार्यो का वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं तकनीकें
Principles & Techniques of Management

प्रबन्ध सार्वभौमिक है, इच्छित एवं प्रभावी परिणाम प्राप्त करने में महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। लेकिन प्रश्न आता है कि "प्रभावी प्रबन्ध कैसे किया जाता है ? अच्छे एवं प्रभावशील प्रबन्धक कैसे बनाए जाए ? उन्हें शिक्षित–प्रशिक्षित कैसे किया जाये ? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर है – **'प्रबन्ध के सिद्धान्त'।** चुंकि आधुनिक प्रबन्ध–ज्ञान व विज्ञान की शाखा के रूप में प्रस्थापित हो चुका है एवं भावी पेशे की ओर अग्रसर है इसलिए प्रबन्ध विज्ञान के कुछ आधारभुत सिद्धान्त है।

"किसी विषय के सन्दर्भ में पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर एवं पर्याप्त तर्क–वितर्क के पश्चात् निश्चित किया गया मत या विचार, जो समय, अनुभव एवं निरीक्षण की कसौटी पर खरा उतरता है, 'सिद्धान्त' कहलाता है।"

सिद्धान्त हमारे कियाकलापों, व्यवहार एवं निर्णय लेने में मार्गदर्शक के रूप में प्रभावी नियम या तत्व होते है। नियम या सिद्धान्त का पालन नहीं करने पर दण्डित नहीं किया जाता है, केवल कार्य के परिणामों में अनिश्चितता का भय बनता है। देश–काल–परिस्थितियों में जब नियम या सिद्धान्त अव्यावहारिक हो जाते है तो उसमें संशोधन या परिवर्तन कर दिया जाता है। यह लोचशीलता ही सिद्धान्तों की स्वीकार्यता को सार्वभौमिक बनाता है। प्रबन्ध के सिद्धान्त पूर्णतः विज्ञान के सिद्धान्तों की तरह कार्य नहीं करते, न ही एक समान परिणाम देते है। चूंकि प्रबन्ध सामूहिक प्रयासों का किया जाता है जिसमें मानव तथा मानवीय व्यवहार की भागीदारी तथा भूमिका अधिक होती है और मानवीय व्यवहार उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संचालित होता है, जो प्रत्येक भू–भाग या देश का पृथक–पृथक होता है, इसलिए प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रत्येक देश व संगठन में न तो समान रूप से लागु होते हैं न ही समान रूप से परिणाम देते हैं। अर्थात् प्रबन्ध के सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप से प्रयोग प्रत्येक संगठन, समाज व देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसलिए कुछ सिद्धान्त किसी देश या संगठन में पूर्ण रूप से व्यावहारिक या अव्यावहारिक हो सकते है तो कुछ आंशिक (सीमित) रूप से या

कुछ निर्धारित पैमाने से भी अधिक रूप में क्रियान्वित किए जा सकते हैं।

सामान्यत लक्ष्य या परिणामों को ध्यान में रख कर कार्य योजना, क्रियाएं एवं उनके सफल संचालन के लिए नियम या सिद्धान्त बनाए जाते हैं। सदियों पूर्व के संगठन, समाज तथा शासकों (राजाओं) का लक्ष्य केवल प्रजा एवं समस्त जीवों की सेवा व कल्याण का होता था। **वसुधैव कुटुम्बकम्** की अवधारणा पर आधारित – **"सर्वे भवन्तु सुखिनः"** का लक्ष्य रखकर ही संगठन संचालन किया जाता था। जिससे समाज में समानता एवं सहकारिता का भाव रहता है।

भारतवर्ष एवं शिया भू–भाग के पौराणिक ग्रंथों व नीति शास्त्रों में उपलब्ध **प्रबन्ध के सूत्र (सिद्धान्त)** मानव एवं समाज कल्याण से प्रेरित थे। किन्तु 18वीं सदी से प्रारम्भ हुए परिवर्तन, विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध के बाद जैसे – तकनीकी विकास, मशीनीकरण, औद्योगिकरण क्रान्ति, सम्प्रेषण व परिवहन विकास ने पूरी दुनिया में कार्य प्रणाली एवं दर्शन (चिन्तन) को पूरा ही उलट दिया। अब संगठन व समाज का लक्ष्य या ध्येय वाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम' से पलटकर **'श्रेष्ठतम उत्तरजीवित'** (Survival of Fittest) हो गया है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या संगठन प्रत्येक कार्य एवं उसके परिणामों में स्वयं को श्रेष्ठतम सिद्ध करने का प्रयास करता है। परिणामस्वरूप प्रतियोगिता का जन्म होता है।

तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के विकास से कार्य की गति एवं मात्रा बढ़ गई, परिवहन तकनीकी के विकास से आवागमन तीव्र एवं सुगम हो गया, सम्प्रेषण एवं सूचना क्रान्ति ने पूरे विश्व को एकाकार कर वैश्विक गॉव (Global Village) बना दिया। इस कारण बाजार एवं उद्योग भी वैश्विक हो गए, जिसमें प्रतियोगिता भी स्थानीय व घरेलू से वैश्विक हो गई। **अतः वैश्विक प्रतिस्पर्द्धी एवं आधुनिक वैज्ञानिक युग में संगठन का सफल संचालन कैसे हो? एवं इच्छित परिणाम (अधिक लाभ तथा बाजार नेतृत्व) कैसे प्राप्त किए जाए, यह चुनौतिपूर्ण कार्य हो गया है। इस चुनौतिपूर्ण कार्य को सरल एवं सुगम बनाने में आधुनिक प्रबन्ध एवं प्रबन्ध के सिद्धान्त ही उपयोगी सिद्ध हो रहे है।**

आधुनिक प्रबन्ध को वैज्ञानिक प्रबन्ध भी कहते हैं। इस वैज्ञानिक प्रबन्ध की अवधारणा का प्रादुर्भाव – हेनरी फयोल द्वारा विकसित– 'प्रशासनिक प्रबन्ध मॉडल' से हुआ, जिसमें हेनरी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

फेयोल ने प्रबन्ध के 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् एफ. डब्ल्यू टैलर, मेक्स वेबर, एल्टन मेयो आदि कई प्रबन्ध विद्वानों या चिन्तकों ने विभिन्न कारखानों में श्रमिकों व कर्मचारियों पर उनकी कार्य प्रणाली, कार्यदशाएं एवं व्यवहार पर शोध कार्य किये एवं लगभग 6 से 54 तक अलग–अलग प्रबन्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वैज्ञानिक युग में सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव पूर्णतः शोध आधारित एवं मॉडल के रूप में हुआ है फिर भी इसके परिणाम देश–काल–परिस्थितियों से प्रभावित होते है। सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न राष्ट्रो की विविधता के कारण सभी सिद्धान्तों का सर्वत्र प्रयोग सम्भव नहीं है। लेकिन सामान्य मार्गदर्शक के रूप में हेनरी फेयोल के प्रबन्ध सिद्धान्त, अधिक लोचशील होने के कारण, सर्वत्र स्वीकार किए गए एवं प्रयोग में लाये गए है।

प्रबन्ध के सिद्धान्त कार्यकुशलता में वृद्धि एवं कार्य के प्रति सही दृष्टिकोण रखने में सहायक होते है, प्रबन्ध के सिद्धान्तों से प्रबन्ध की शिक्षा (शिक्षण–प्रशिक्षण) सुगम, प्रभावी तथा सर्वमान्य हो जाती है जिससे प्रबन्ध एक पेशे के रूप में विकसित हो रहा है। बदलते परिवेश में कार्यक्षमता व कार्यकुशलता को बनाए रखने व बढ़ाने के लिए प्रबन्ध के सिद्धान्तों पर निरन्तर शोध कार्य हो रहे है एवं उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं विस्तार कर सर्वमान्य बनाने का प्रयास निरन्तर चल रहा है। अतः सार्वभौमिक रूप से सर्वस्वीकार्य प्रबन्ध के सिद्धान्त निम्न प्रकार है–

1. कार्य का विभाजन– फेयोल ने विशिष्टीकरण का लाभ लेने के लिए कार्य–विभाजन का सिद्धान्त उपयोगी बताया है। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक एवं प्रबन्धक विशिष्ट कार्यों में संलग्न होते है। इसलिए कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए कार्यों का विभाजन इस प्रकार किया जाए ताकि कार्य एवं कार्यकर्ता में सामन्जस्य रहे और कार्यकर्ता की पूरी क्षमता का उपयोग हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि प्रबन्धक प्रबन्धकीय कार्यों में संलग्न रहें तथा श्रमिक क्रियान्वयन कार्यों में संलग्न रहें।

2. अधिकार एवं उत्तरदायित्व– अधिकार एवं उत्तरदायित्व एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं, अतः दोनों में समानता होनी चाहिए। संगठन में जब किसी व्यक्ति को कोई कार्य सौंपा जाता है तो उस कार्य के निष्पादन का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति पर होता है। कार्य का यह निष्पादन उचित ढंग से तभी हो सकता

है जब व्यक्ति को उचित अधिकार प्राप्त हो। यदि उत्तरदायित्व एवं अधिकार में समानता नहीं होती है तो या तो संगठन में अधिकारों का अनावश्यक केन्द्रीयकरण हो जाता है या कार्य के प्रति उत्तरदायी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों पर आश्रित होना पड़ता है। इन दोनों परिस्थितियों में संगठन की समग्र कार्यकुशलता में कमी आती है।

3. अनुशासन– अनुशासन का सिद्धान्त कर्मचारियों में ऐसे व्यवहार को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है जो संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सहायक होते हैं। अनुशासित व्यवहार के लिए आवश्यक है कि संगठन में निरीक्षण प्रणाली उचित हो, कर्मचारी एवं संगठन के बीच उचित अनुबंध हो तथा गैर अनुशासित व्यवहार के लिए दण्ड की व्यवस्था हो। फेयोल ने दंड के सम्बन्ध में यह विचार प्रकट किया है कि दंड देते समय उन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाए जिनके कारण कर्मचारियों में अनुशासनहीनता का व्यवहार उत्पन्न हुआ जिससे कर्मचारी अपने आपको प्रताड़ित महसूस न करें।

4. आदेश की एकता– इसका आशय यह है कि एक कर्मचारी को आदेश केवल एक ही उच्चाधिकारी से प्राप्त हो, अनेक उच्चाधिकारियों से नहीं। अनेक अधिकारियों से आदेश प्राप्त होने पर और विशेष रूप से उन आदेशों में भिन्नता होने के कारण न केवल कर्मचारी भ्रमित हो जाता है बल्कि वह अपने दायित्वों से विमुख हो जाता है। फेयोल के अनुसार, यदि आदेश की एकता के सिद्धान्त को भंग किया जाता है तो संगठन में अधिकारी की अवहेलना, परस्पर संघर्ष में वृद्धि, व्यवस्था में विघ्न एवं अनुशासन में कमी हो जाती है।

5. निर्देशन की एकता– निर्देशन की एकता का आशय यह है कि संगठन की वह सभी क्रियाएँ जिनका उद्देश्य समान हो, एक ही अधिकारी एवं एक ही योजना के अंतर्गत रखना चाहिए। निर्देशन की एकता, आदेश की एकता से भिन्न है। निर्देशन की एकता, क्रियाओं के विभाजन एवं समूहीकरण से सम्बन्धित है, जब कि आदेश की एकता, व्यक्तियों के संगठनात्मक संबंधों को परिलक्षित करती है। निर्देशन की एकता का मुख्य उद्देश्य एक ही क्रिया के विभिन्न पक्षों में सामन्जस्य स्थापित करना है। निर्देशन के सिद्धान्त के महत्व के विषय में फेयोल ने हास्यास्पद ढंग से कहा है 'दो सिर वाला शरीर सामाजिक तथा पशु जगत में राक्षस माना जाता है तथा जीवित रहने में कठिनाई अनुभव करता है।'

6. सामूहिक हितों के लिए व्यक्तिगत हितों का समर्पण– किसी संगठन में यदि संगठन के हितों एवं व्यक्तिगत हितों में परस्पर संघर्ष हो तो संगठन का हित सर्वोपरि होना चाहिए और इसके लिए व्यक्तिगत हितों का त्याग होना चाहिए। संगठन एवं व्यक्तिगत हितों में संघर्ष कई कारणों से हो सकते हैं।

अतः प्रबन्धकों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न न होने पाएँ जिससे संगठन एवं व्यक्तिगत हितों में संघर्ष हो। संगठन की उन्नति के लिए यह आवश्यक है।

7. कर्मचारियों का पारिश्रमिक– कर्मचारियों को उनके कार्य में निष्पादन के लिए प्रतिफल दिया जाता है। यह प्रतिफल मजदूरी तथा वेतन, विभिन्न प्रकार की वित्तीय प्रेरणाओं एवं अवित्तीय प्रेरणाओं के रूप में होता है। प्रतिफल निर्धारित करते समय यह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सुनिश्चित करना आवश्यक है कि यह न्यायपूर्ण एवं तर्कसंगत हो।

8. केन्द्रीयकरण– फेयोल के अनुसार किसी संगठन में अधिकारों के केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के बीच आवश्यक सामन्जस्य होना चाहिए। यह सामन्जस्य संगठन के आकार एवं प्रबन्ध प्रणाली पर निर्भर करता है, जैसे बड़े संगठन में अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण अधिक उपयुक्त होता है जबकि छोटे संगठन में अधिकारों का केन्द्रीयकरण अधिक उपयुक्त होता है। बड़े संगठन में अधिकारों का केन्द्रीयकरण का निर्णय लेते समय संगठन के व्यापक हितों, कर्मचारियों की भावनाओं तथा कार्य की प्रकृति आदि बातों का विचार किया जाना चाहिए जिससे प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर उचित अधिकारों का भारार्पण हो सके।

9. पदाधिकारियों में सम्पर्क की कड़ी– उच्चतम अधिकारियों से लेकर नीचे के अधिकारियों के बीच सम्पर्क रूपी एक कड़ी रहनी चाहिए और संदेशवाहन इस कड़ी के द्वारा होना चाहिए। इस कड़ी को चित्र में दर्शाया गया है :

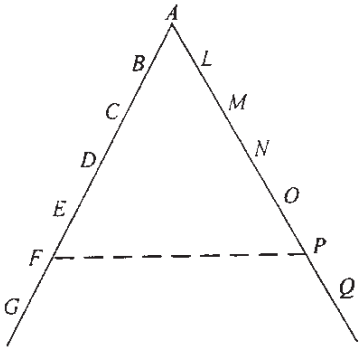

चित्र : पदाधिकारियों में सम्पर्क की कड़ी

चित्र के अनसार A संगठन के सर्वोत्तम स्तर पर है और उसके दो प्रत्यक्ष अधीनस्थ B और L के रूप में है। इसी प्रकार B और L के अधीनस्थ तथा उन अधीनस्थों के अधीनस्थों की कड़ी जाती है जो G और Q पर समाप्त होती है। A से प्रेषित संदेशवाहन B,C,D,E,F द्वारा होता हुआ G के पास पहुँचेगा।

इसी प्रकार यदि G को कोई संदेश ऊपर भेजना हो तो वह F, E, D, C, B के माध्यम से होता हुआ A तक पहुँचेगा। फेयोल के अनुसार इस प्रणाली से संगठन में व्यवस्था बनी रहती है, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में इस प्रणाली के द्वारा सम्प्रेषण में देरी होती है। इन विशेष परिस्थितियों में समान स्तर के अधिकारी, जो अलग–अलग कड़ी में है, आपस में संदेशवाहन कर सकते है। जैसा चित्र में F, P के सम्बन्ध में दर्शाया गया है। ऐसी परिस्थिति में सम्बंधित अधिकारी को अपने प्रत्यक्ष उच्च अधिकारी को यह सूचित कर देना चाहिए कि, इस तरह के संवाद का क्या उद्देश्य था और उसकी विषय–सामग्री क्या थी?

10. व्यवस्था– व्यवस्था का तात्पर्य यह है कि 'प्रत्येक वस्तु के लिए निश्चित स्थान हो तथा प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो तथा सही व्यक्ति सही स्थान पर होना चाहिए।' इस सिद्धान्त का उद्देश्य यह है कि उचित कार्य, उचित व्यक्तियों को सौंपा जाए, कार्य का उचित ढंग से निष्पादन हो और निष्पादन उचित नियंत्रण में हो, जिससे संगठन के कार्य क्षमता में वृद्धि हो।

11. समता– समता न्याय एवं दयालुता का मिश्रण है। समता का तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों को समभाव से देखा जाए एवं उनके पारिश्रमिक तथा दंड व्यवस्था में भेदभाव न हो। इससे कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा उत्पन्न होती है।

12. कर्मचारियों के कार्यकाल की स्थिरता– इस सिद्धान्त के अनुसार एक कार्य पर कर्मचारियों की नियुक्ति कम से कम एक निश्चित समय के लिए अवश्य की जाए। इसका एक लाभ यह होता है कि कर्मचारी अपने कार्य की प्रकृति, कार्य करने की परिस्थितियों आदि से भली–भाँति परिचित हो जाता है जिससे उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। कर्मचारियों के अधिक आवागमन (बदलाव) से कर्मचारी अपने और अपने कार्यों के बीच उचित सामन्जस्य पैदा नहीं कर पाते जिससे उनकी कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

13. प्रेरणा– अधिकारों एवं अनुशासन को ध्यान में रखते हुए प्रबंधकों को चाहिए कि वे अपने अधीनस्थों को किसी कार्य में पहल करने के लिए प्रेरित करें। इससे न केवल नए विचारों का सृजन होता है बल्कि अधीनस्थों में संतुष्टि की भावना पनपती है।

14. सहयोग की भावना– किसी संगठन की सफलता कर्मचारियों के परस्पर सहयोग की भावना पर निर्भर करती है। यह सिद्धान्त 'एकता' ही शक्ति है' पर आधारित है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रबन्धक ऐसे कदम उठायें जिससे कर्मचारियों में परस्पर विश्वास एवं सहयोग की भावना उत्पन्न हो सके।

प्रबन्ध के सिद्धान्तों की उपरोक्त सूची अन्तिम नहीं है, फेयोल ने इन चौदह सिद्धान्तों को उदाहरणीय बताया है। इसमें आवश्यकतानुसार संकुचन व विस्तार सम्भव है। प्रबन्ध के क्षेत्र में टेलर, कुण्टज, ओ डोनॅल, हैरी, उर्विक आदि प्रबन्ध विचारकों या चिन्तकों ने भी कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। जैसे – नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त, उद्देश्य का सिद्धान्त, अपवाद का सिद्धान्त, भारार्पण का सिद्धान्त, सामाजिक दायित्व का सिद्धान्त, सहभागिता का सिद्धान्त आदि।

प्रबन्ध विकास में हेनरी फेयोल का योगदान

सम्भवतः आधुनिक क्रियात्मक या प्रशासनिक प्रबंध सिद्धान्तों के जनक के रूप में फ्रांसीसी प्रबंधक हेनरी फेयोल का नाम लेना अधिक उपयुक्त है। फेयोल ने फ्रांस की कम्पनी Commentary -

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Four Chambault में अपना सम्पूर्ण कार्यकारी जीवन व्यतीत किया और अपने इस लम्बे अनुभव के आधार प प्रबंध एवं उससे संबंधित विषयों पर कई पुस्तकें लिखीं, जिनमें 1916 में फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित पुस्तक Administration Industrielle at Generale' प्रमुख है और इसमें प्रबंध के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया गया। पुस्तक फ्रांसीसी भाषा में होने के कारण फेयोल के विचारों का व्यापक विस्तार नहीं हो पाया। पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद 1929 में प्रकाशित हुआ, किन्तु इसका वितरण यूरोपीय देशों तक ही सीमित रहा। उसके पश्चात् पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद 1949 में अमेरिका में प्रकाशित हुआ और उसके बाद ही प्रबंध में फेयोल के योगदान को स्वीकारा गया।

फेयोल ने प्रबंध की समस्या का अध्ययन उच्चस्तरीय प्रबंध के दृष्टिकोण से किया। उन्होंने एक औद्योगिक संगठन की क्रियाओं को छः वर्गों में विभाजित किया:

1. तकनीकी क्रियाएँ –उत्पादन से सम्बंधित क्रियाएं।
2. वाणिज्यिक क्रियाएँ–क्रय–विक्रय एवं विनिमय से सम्बन्धित क्रियाएं
3. वित्तीय क्रियाएँ–पूँजी की प्राप्ति एवं उसके अधिकतम उपयोग से सम्बन्धित क्रियाएँ।
4. सुरक्षात्मक क्रियाएँ–सम्पत्ति तथा माल की सुरक्षा से सम्बन्धित क्रियाएँ।
5. लेखांकन क्रियाएँ–स्टॉक मूल्यांकन, आर्थिक चिट्ठा तैयार करना, सांख्यिकी इत्यादि से सम्बन्धित क्रियाएँ।
6. प्रबंधकीय क्रियाएँ–नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण क्रियाएँ।

फेयोल के अनुसार किसी संगठन के विभिन्न स्तरों पर क्रियाओं का निष्पादन अलग–अलग होता है जिसे सारणी में प्रदर्शित किया गया है।

कर्मचारियों के वर्ग

	तकनीकी	वाणिज्यिक	वित्तीय	सुरक्षात्मक	लेखांकन	प्रबंधकीय	कुल योग
1. श्रमिक	85	–	–	5	5	5	100
2. फोरमैन	50	5	–	10	10	15	100
3. अधीक्षक	45	5	–	10	15	25	100
4. विभागाध्यक्ष	30	15	5	10	10	30	100
5. तकनीकी विभागाध्यक्ष	30	10	5	10	10	35	100
6. प्रबन्धंक	15	15	10	10	10	40	100
7. जन. मैनेजर	10	10	10	10	10	50	100

फेयोल के अनुसार उपरोक्त सभी क्रियाएं किसी भी औद्योगिक संगठन में निष्पादित की जाती है। उन्होंने पाया कि प्रथम पाँच क्रियाओं के सम्बन्ध में उचित ज्ञान विद्यमान है। इसलिए उन्होंने अपना सारा ध्यान प्रबंधकीय क्रियाओं के ऊपर केन्द्रित किया। प्रबन्धकीय क्रियाओं के सम्बन्ध में फेयोल ने अपने विचारों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया है :

1. प्रबंधकीय योग्यता एवं प्रशिक्षण
2. प्रबंध के तत्त्व एवं
3. प्रबंध के सिद्धान्त

प्रबंधकीय योग्यताएँ एवं प्रशिक्षण

प्रंबध विकास के क्रम में फेयोल ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने प्रबंधकों की योग्यता और उनके प्रशिक्षण को प्रभावित किया। उनके अनुसार एक प्रबंधक में निम्नलिखित छः विशेषतओं का होना आवश्यक है :–

1. शारीरिक–स्वास्थ्य, सुशील स्वभाव एवं स्फूर्ति
2. मानसिक–समझने एवं सीखने की योग्यता, विवेकशीलता, सतर्कता और निर्णय लेने की क्षमता।
3. सदाचार–उत्तरदायित्व स्वीकार कने की क्षमता, पहल करने की क्षमता, निष्ठा, गौरवमयिता
4. शैक्षणिक–कार्य विशेष से सम्बन्धित क्रियाओं एवं उनके प्रतिपादन का ज्ञान।
5. प्राविधिक–कार्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाली बातों का ज्ञान।
6. अनुभव–कार्य करने से दक्षता प्राप्त होना।

प्रबन्ध के तत्त्व

फेयोल के अनुसार प्रबंध को एक प्रक्रिया के रूप में लेना चाहिए जिसमें पाँच तत्व आवश्यक है– नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय और नियन्त्रण। उनके अनुसार नियोजन प्रबन्ध की सबसे प्रमुख क्रिया है क्योंकि इसी के आधार पर सभी कार्यों की रूपरेखा तैयार की जाती है। उचित नियोजन के अभाव में किसी उपक्रम में कार्यों के निष्पादन में संशय बना रहता है। नियोजन द्वारा निर्धारित कार्यों के निष्पादन के लिए संगठन संरचना की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा कार्य को विभिन्न व्यक्तियों में वितरित किया जाता है। कार्य वितरण के बाद अधीनस्थों को उचित निर्देश की व्यवस्था की जाती है। चूंकि एक क्रिया कई व्यक्तियों द्वारा सम्पादित की जाती है अतः उनके कार्यों में समन्वय की आवश्यकता होती है। नियन्त्रण की आवश्यकता यह सुनिश्चित करने के लिए होती है कि कार्य सम्पादन नियोजन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

के अनुसार ही हो। फेयाल का मत है कि ये सभी कार्य प्रबंध के सभी स्तरों पर निष्पादित किए जाते हैं, यद्यपि प्रबंध के स्तरों के अनुसार इन कार्यों का महत्व अलग–अलग होता है।

21वीं सदी के प्रबन्ध गुरु–पीटर ड्रकर

(1909–2005;आस्ट्रिया में जन्मे, 2002–अमेरिकन राष्ट्रपति पुरुस्कार)

प्रबन्ध विषय में सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला, सबसे ज्यादा सुना जानेवाला, सबसे ज्यादा सम्मानित गुरु के रूप में अमेरिकन पत्रिका Business Week एवं **मैकेन्से** ने 'पीटर ड्रकर' को **प्रबन्ध गुरु** अलंकृत किया हैं।

ड्रकर ने प्रबन्धकीय व्यवहार एवं विचारधारा को नई दिशा प्रदान की। साम्यवादी जगत का ध्यान आकर्षित करने वाले वे पाश्चात्य जगत (अमेरिका) के संभवतः अकेले प्रबन्धक विचारक रहे। ड्रकर शुरू से नौकरशाही प्रबन्ध के विरोधी रहे, वे प्रबन्ध को सृजनात्मक क्रिया मानते हुए कहते थे कि – **प्रबन्धक का मुख्य कार्य सृजन एवं नवप्रवर्तन होता है।** उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति ही प्रबन्ध करते हैं 'शक्तियां' अथवा 'तथ्य' नहीं। ड्रकर लिखते हैं – प्रबन्ध एक मूल्य–मुक्त (Value - Free) विज्ञान नहीं है। प्रबन्ध संस्कृति में बन्धा हुआ है और होना चाहिए। प्रबन्ध ही समस्त समाज एवं संस्कृति को एक दिशा एवं ढाँचा प्रदान करता है।

पीटर एफ ड्रकर की 1980 में लिखी पुस्तक 'Manageing in Trubulent Times में प्रबन्ध की वर्तमान चुनोतियों का वर्णन किया। प्रबन्ध के बढ़ते महत्व को इंगित किया उन्होंने लिखा कि – 'प्रबन्ध विभिन्न संस्थाओं का अंग है– एक ऐसा अंग जो भीड़ को एक संगठन में बदल देता है तथा मानवीय प्रयासों को परिणामों में परिवर्तित कर देता है।

ड्रकर के मतानुसार प्रबन्ध के प्रमुख कार्य है– ध्येय एवं लक्ष्य ; उत्पादक कार्य एवं श्रमिक उपलब्धि; सामाजिक प्रभाव एवं

सामाजिक उत्तरदायित्व, समय आयाम, प्रशासन एवं उद्यमिता। 1954 में ड्रकर द्वारा प्रतिपादित **उद्देश्यानुसार प्रबन्ध** की विचारधारा या प्रबन्ध तकनीक को महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

वर्तमान में बदलते परिवेशन के कारण उत्पन्न हो रहे संगठन संकट को ध्यान में रखते हुए उन्होंने संगठनात्मक वास्तविकता का वर्णन किया तथा संगठन संरचना के नए सिद्धान्तों को जन्म दिया।

प्रबन्ध : तकनीकें (नवीन प्रवृत्तियाँ)

Management : Techniques (Modern Trends)

व्यक्तिगत जीवन एवं संगठन के संचालन तथा अस्तित्व पर वातावरण में हो रहे परिवर्तनों का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ता है। वर्तमान में बाह्य वातावरण के सभी घटक (भौगोलिक, वैधानिक, प्रौद्योगिकी, राजनैतिक, सामाजिक– सांस्कृतिक, आर्थिक) तीव्र गति से बदल रहे है। जिसका प्रभाव मनुष्य के जीवन दर्शन व योग्यताओं पर तथा संगठन के आन्तरिक वातावरण पर भी पड़ रहा है। भौगोलिक दुरियाँ कम हो रही है, भौगोलिक वातावरण अनिश्चित हो गया है, प्रौद्योगिकी प्रतिपल नया अविष्कार कर रही है। समाज की मान्यताएँ बदल रही है, फलस्वरूप राजनैतिक नेतृत्व व संविधान बदल रहे है, पादर्शिता एवं जवाबदेहिता पर ध्यान दिया जा रहा है। वैश्विक सन्धियों (SAARC, BRIC, WTO, G-20) से व्यापार व उद्योग में तीव्र प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो रही है। इन परिवर्तनों का प्रभाव संगठन के लक्ष्य एवं उनकी प्राप्ति हेतु किए जा रहे प्रबन्धकीय प्रयासों पर भी पड़ता है। परिणामस्वरूप प्रबन्धकीय कार्यों को सफलता एवं सुगमता से सम्पन्न करने के लिए प्रतिदिन नयी जुगत या तकनीक अपनानी पड़ती है। अब प्रबन्धकीय क्षेत्र में आवश्यकतानुसार निम्न नई प्रबन्ध तकनीकें या प्रबन्धकीय कार्य के नए आयाम उभरे है–

1. उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध
2. अपवाद द्वारा प्रबन्ध
3. व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध
4. उत्पादकता प्रबन्ध
5. प्रौद्योगिकी प्रबन्ध
6. प्रबन्ध सूचना प्रणाली
7. परिवर्तन का प्रबन्ध
8. संघर्ष का प्रबन्ध
9. परिचालनात्मक प्रबन्ध
10. ज्ञान का प्रबन्ध
11. तन्त्र दृष्टिकोण
12. आकस्मिकता या सांयोगिक दृष्टिकोण

अध्ययन की दृष्टि से आपके लिए कुछ प्रारम्भिक तकनीकों का परिचयात्मक वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध

(Management By Objectives : MBO)

20वीं शताब्दी में प्रबन्ध जगत् में अनेक नई अवधारणाओं एवं तकनीकों का विकास हुआ है। 'उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध' इनमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध तकनीक एवं विचार है। 1954 में ड्रकर ने इस विचार का प्रतिपादन किया था जिसे बाद में प्रो. स्लेह ने 'परिणामों द्वारा प्रबन्ध' नाम से प्रस्तुत किया। प्रत्येक संगठन का निर्माण कुछ परिणाम प्राप्त करने के लिए किया जाता है। टैरी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(Terry) के अनुसार '' प्रबन्ध उद्देश्यपूर्ण है, यह कुछ उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।'' प्रबन्ध की सफलता बहुत कुछ सीमा तक उद्देश्यों के निर्धारण तथा उनके अनुरूप परिणाम प्राप्त करने पर निर्भर करती है। लक्ष्य केन्द्रित प्रबन्ध ही वास्तविक प्रबन्ध है। कूण्टज एवं डोनेल के अनुसार,'' स्पष्ट उद्देश्यों के बिना प्रबन्ध करना एक अव्यवस्थित एवं अलटप्पू कार्य होता है।''

साधारण शब्दों में, समस्त प्रबन्धकीय कार्यों का उद्धेश्य अभिमुखी होना ही उद्धेश्यों द्धारा प्रबन्ध है। दूसरे शब्दों में, उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध का निर्धारण करके उनके आधार पर प्रबन्ध प्रक्रिया करने से है।

उद्धेश्यानुसार प्रबन्ध संगठन के प्रत्येक स्तर पर संयुक्त रूप से उद्धेश्यों,लक्ष्यों व दायित्वों का निर्धारण करने, प्रभावी कार्य नियोजन करने तथा लक्ष्य प्राप्ति के संदर्भ में कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने का एक व्यवस्थित दर्शन एवं तकनीक है। अन्य शब्दों में, उद्धेश्यानुसार प्रबन्ध प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों द्वारा संयुक्त रूप से मिलकर सामान्य लक्ष्यों को निर्धारित करने, प्रत्येक व्यक्ति के उत्तरदायित्व का क्षेत्र अपेक्षित परिणामों (लक्ष्य) के संदर्भ में परिभाषित करने तथा इनके आधार पर अधीनस्थों द्वारा अपने कार्य की योजना बनाने तथा अधिकारियों द्वारा उनके कार्य की प्रगति एवं परिणामों का मूल्यांकन करने की एक समयबद्ध व्यवस्थित प्रणाली है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा 'उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध' को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है–

एनीनी राया के अनुसार '' यह प्रबन्ध का परिणाम अभिमुखी दर्शन है जो उपलब्धि तथा परिणामों पर बल देता है।

सामान्यतः इसका ध्येय वैयक्तिक एवं संगठनात्मक प्रभावशीलता में वृद्धि करना होता हैं।''

आरेन उरिस के अनुसार, '' मूलतः उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध एक सरल अवधारणा है। यह वांछित परिणामों से निर्देशित अथवा पथ–प्रदर्शित कार्य निष्पादन एवं उपलब्धि है।''

कास्ट एवं रोजेन्जगेव के अनुसार '' वैयक्तिक एवं समूह लक्ष्यों को व्यापक संगठनात्मक लक्ष्यों के साथ एकीकृत करने के अनेक दृष्टिकोणों में से उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध एक सर्वाधिक विस्तृत दृष्टिकोण है। उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध लक्ष्य निर्धारण प्रक्रिया में प्रबन्ध के सभी स्तरों को सम्मिलित करके इस प्रकार की संरचना का प्रयास करता है। इन कार्यक्रमों में प्रत्येक प्रबन्धक लक्ष्य स्थापित करने तथा प्राप्ति हेतु विशिष्ट कार्य योजनाएं तैयार करने में अपने अधीनस्थों के साथ कार्य करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि 'उद्धेश्यों द्वारा प्रबन्ध' एक ऐसी प्रक्रिया एवं प्रणाली है जिसमें सभी श्रेणी के प्रबन्धक तथा अधीनस्थ मिलकर संयुक्त रूप से संस्थागत, विभागीय एवं वैयक्तिक उद्धेश्यों का निर्धारण करते हैं और फिर उनकी प्राप्ति हेतु प्रबन्धकीय क्रियाओं का संचालन करते हैं जिससे संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जा सके और व्यक्ति, संगठन एवं पर्यावरण में एकीकरण स्थापित किया जा सके।

'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध : प्रकृति (Nature of MBO)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की प्रकृति को उसकी निम्न विशेषताओं द्वारा समझा जा सकता है–

1. यह एक कार्यात्मक अवधारणा है जो कि उद्देश्य निर्धारण की प्रक्रिया को अत्यन्त महत्व देती है।
2. यह अवधारणा उद्देश्यों के निर्धारण की प्रक्रिया पर जोर देती है, न कि उनके क्रियान्वयन के साधनों पर।
3. यह परिणामोन्मुखी विचारधारा है।
4. यह विचारधारा सहभागिता के विचार पर आधारित है जो यह मानती है कि लोग स्वयं के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होते है।

'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध' : लाभ या गुण (Merits of MBO)

उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध प्रणाली के अनेक लाभ हैं। इसमें सम्पूर्ण संस्था, उच्च प्रबन्धक तथा अधीनस्थ कर्मचारी लाभान्वित होते हैं। इन्हे प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन निम्न प्रकार है–

(अ) संस्था को लाभ – उद्देश्यानुसार प्रबन्ध को अपनाने से संस्था को अग्रलिखित लाभ हो सकते है–

1. श्रेष्ठ प्रबन्धन – उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की प्रणाली से प्रबन्धकीय कौशल एवं निष्पादन में सुधार होता हे। इस प्रणाली को अपनाने से प्रबन्धक अपने संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त कर लेते है।
2. श्रेष्ठ नियोजन– उद्देश्यों के स्पष्ट निर्धारण, कार्य योजनाओं के निर्माण तथा उत्तरदायित्वों के निर्धारण से प्रभावी नियोजन सम्भव हो जाता है।
3. संगठन की स्पष्टता – इस प्रणाली से संगठनात्मक भूमिकाओं, संरचनाओं, सत्ता, दायित्व, कार्य, भारार्पण आदि की स्थिति भी बहुत स्पष्ट हो जाती है।
4. वचनबद्ध निष्पादन– उद्देश्यानुसार प्रबन्ध कर्मचारियों में अपने कार्य व उद्देश्यों के प्रति एक प्रतिबद्धता उत्पन्न कर देता है। प्रत्येक कर्मचारी के समक्ष अपने लक्ष्य स्पष्ट होते है तथा वह कुछ प्राप्त करने के लिए कार्य कर रहा होता है।
5. प्रभावी नियन्त्रण – उद्देश्यानुसार प्रबन्ध के कारण कर्मचारियों, लक्ष्यों, योजनाओं, कार्य–कलापों, कार्य–प्रगति आदि पर प्रभावी नियत्रण बना रहता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ब) उच्च प्रबन्धकों के लाभ– उद्देश्यानुसार प्रबन्ध में उच्च प्रबन्धकों को भी लाभ प्राप्त होता हैं। ये लाभ अग्र प्रकार हैं–

1. अधीनस्थों का मार्गदर्शन करने में आसानी होती है।
2. अधीनस्थों के कार्यों के मूल्यांकन का उचित आधार मिल जाता है।
3. अधीनस्थों को आसानी से अभिप्रेरित किया जा सकता है।
4. विभागों एवं कर्मचारियों के मध्य समन्वय सरल हो जाता है।

(स) अधीनस्थों के लाभ – उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध से अधीनस्थों के निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है–

1. कर्मचारी को अपने लक्ष्य का ज्ञान हो जाता है। अतः उसकी प्राप्ति सरल हो जाती है।
2. कार्य सन्तुष्टि में वृद्धि होती है तथा निराशा समाप्त हो जाती है।
3. अधीनस्थ अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होते है।
4. वे अपने अधिकारियों की अपेक्षाओं को भली प्रकार समझ सकते है।
5. वरिष्ठ प्रबन्धकों से निरन्तर सम्पर्क बना रहने के कारण भ्रान्तियॉ उत्पन्न नहीं होती है।
6. वैयक्तिक पहलपन एवं क्षमता में वृद्धि होती है।

'उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध : सीमाएँ (Limitation of MBO)

अन्य प्रबन्ध तकनीकों की भाँति उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की प्रणाली भी दोषमुक्त नहीं है। कई विद्वानों ने इसकी आलोचना की है तथा कमियाँ बताई है। इसकी कुछ प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित है–

1. उद्देश्य निर्धारण में कठिनाई– उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध का आधार तत्त्व 'उद्देश्य' होते है। किन्तु यथार्थपूर्ण एवं सत्यापनीय उद्देश्यों के निर्धारण में बहुत कठिनाइयाँ आती है। भावी अनिश्चितता, पूर्वानुमानों की कठिनाई, गतिशील वातावरण, सरकारी नीतियॉ, उद्देश्यों का अन्तर्गठबन्धन आदि घटकों के कारण उद्देश्य निर्धारण का कार्य सरल नहीं है।
2. सन्तुलन की समस्या– अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों में सामंजस्य एवं सन्तुलन स्थापित करना भी उद्देश्यानुसार प्रबन्ध की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है।
3. बेलोचता की कठिनाई– कई बार नीतियों, प्राथमिकता एवं दशाओं में तेजी से परिवर्तन होने के बाद भी उनके अनुरूप उद्देश्यों में कोई परिवर्तन करना सम्भव नहीं हो पाता है। फलतः कर्मचारी अवास्तविक उद्देश्यों का ही अनुसरण करते रहते हैं, किन्तु ऐसे उद्देश्य अर्थहीन होते है।
4. अन्य दोष :–

1. उच्च प्रबन्धकों की सहभागिता एवं सहयोग का अभाव।
2. अधीनस्थों पर अत्यधिक समय का दबाव बढ़ जाना। प्राथमिकतायें तय न होना।
3. अधीनस्थों को उचित रूप से अभिप्रेरित न किया जाना। उचित पुरस्कार एवं मान्यता का अभाव होना।
4. वरिष्ठ प्रबन्धकों तथा अधीनस्थों में व्यक्तित्व संघर्ष का पाया जाना।
5. प्रबन्धकों में कार्यक्रम के प्रति सच्ची निष्ठा का अभाव पाया जाता हैं।
6. कुछ विद्वानों के अनुसार उद्देश्यानुसार प्रबन्ध में अत्यधिक समय खर्च होता है।
7. उद्देश्यानुसार प्रबन्ध का मुख्य जोर 'परिणामों' पर है। अतः इसके सम्बन्ध में ''लक्ष्य साधनों का औचित्य सिद्ध कर सकते है'' वाली कहावत लागू हो जाती है। फलतः परिणाम प्राप्ति के लिए कर्मचारी गलत साधनों को भी अपनाने लगते है।
8. यह दीर्घकालीन नियोजन की उपेक्षा कर अल्पकालीन लक्ष्यों पर अधिक बल देता है।

अपवाद द्धारा प्रबन्ध (Management by Exception - MBE)

अपवाद द्धारा प्रबन्ध– आधुनिक समय में व्यवसाय प्रबन्धन अत्यधिक जटिल कार्य बन चुका है। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा प्रबन्धकों को विवश कर रही है कि वे व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में लागतों एवं लाभों के योगदानों पर ध्यान केन्द्रित करें। प्रबन्धक की संगठित एवं व्यवस्थित योजना के अभाव में आज प्रबन्धक सूचनाओं के ढ़ेर में दब सकता है और प्रबन्ध कार्य उसकी क्षमता से परे हो सकता है, भले ही वह कई घण्टों तक कार्य क्यों नहीं करें। इन परिस्थितियों में 'अपवाद द्धारा प्रबन्ध' की तकनीक महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। क्योंकि प्रबन्ध की यह तकनीक उच्च प्रबन्धकों के समक्ष केवल वही जानकारी प्रस्तुत करने पर बल देती है जिसकी उन्हें जरूरत होती है तथा उनका ध्यान भी विशिष्ट समस्याओं एवं परिस्थितियों के पैदा होने पर ही आकृष्ट करने की व्यवस्था करती है। यह तकनीक व्यवसाय प्रबन्ध के सभी क्षेत्रों में समान रूप से अपनाई जाती है। नियन्त्रण जैसे महत्त्वपूर्ण प्रबन्धकीय कार्य को अपवाद सिद्धान्त पर आधारित करने से अधीनस्थों के कार्यक्षेत्र में अनावश्यक प्रबन्धकीय हस्तक्षेप भी समाप्त होता है और नियन्त्रण के उद्देश्य भी पूरे हो जाते है। यह प्रणाली अनावश्यक एवं गौण महत्व की बातों से ध्यान हटाकर जटिल, महत्त्वपूर्ण, आवश्यक एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सृजनात्मक मामलों पर ध्यान केन्द्रित करने पर बल देती हैं।

'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' वह तकनीक है जो बतलाती है कि उन समस्त कार्यों तथा मामलों में, उच्च प्रबन्धकों का ध्यान आकृष्ट नहीं किया जाना चाहिए, जो कि नियमित रूप से निर्धारित परिणामों की उपलब्धि दे रहे है। वे कार्य तो अधीनस्थ प्रबन्धकों द्वारा ही कर दिये जाने चाहिए। उच्चाधिकारियों का ध्यान केवल उन परिस्थितियों एवं मामलों की और आकृष्ट किया जाना चाहिए जो कि अपवाद स्वरूप उत्पन्न हो रहे हों। लेस्टर आर.बिटेल के अनुसार MBE "पहचान व संचार की वह प्रणाली है जो प्रबन्धक को उस समय संकेत देती है, जबकि उसका ध्यानाकर्षण जरूरी होता है। इसके विपरीत यह प्रणाली उस समय तक शान्त रहती है जब तक कि प्रबन्धक का ध्यानाकार्षण जरूरी नहीं हों।" ऐसी प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य प्रबन्ध प्रक्रिया को सरल बनाना होता है ताकि समस्या क्षेत्र पर यथाशीघ्र ध्यान दिया जा सके और उन व्यक्तियों एवं मामलों पर उच्चाधिकारियों को समय व्यय नही करना पड़े जिन पर उनके अधीनस्थ भली प्रकार ध्यान दे रहे है।

रेमण्ड मैकलियोड़ के अनुसार– "अधिकाशं प्रबन्धकों के पास इतने ज्यादा उत्तरदायित्व होते है कि वे सभी मामलों पर उचित ध्यान देना अव्यावहारिक या कठिन पाते है। प्रबन्धकों को

चाहिए कि वे अपना ध्यान अत्यन्त अच्छे तथा अत्यन्त बुरे निष्पादन पर ही केन्द्रित करें।"

प्रबन्ध विद्वान स्टार के अनुसार–" जब कार्यक्रम सही चल रहा होता है तो वहॉ प्रबन्धक कार्य नहीं करता हैं। जब अपवाद (समस्या, अवरोध, महत्वपूर्णता) उत्पन्न होता है, तब प्रबन्धक की आवश्यकता होती है और वह अपने विवेक का प्रयोग करता है। इस कार्य या प्रक्रिया को 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' कहा जाता है।"

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि 'अद्धाप' अपवाद द्वारा प्रबन्ध वह प्रणाली है जो प्रबन्धकों को उन अपवादों की सक्रिय खोज के लिए प्रोत्साहित करती है जो कि उन्हें उनकी सृजनात्मक योग्यताओं की प्रयुक्ति की अनुमति देते हैं। इस प्रकार "यह केवल नियन्त्रण की तकनीक ही नहीं है अपितु अवसरों की खोज की विधि भी है।"

अपवाद द्धारा प्रबन्ध : महत्त्व–

इस तकनीक की प्रयुक्ति का इतिहास काफी पुराना है, किन्तु व्यवसाय के क्षेत्र में इसकी प्रयुक्ति की पहचान 19 वीं शताब्दी के अन्त में की गई थी। प्रयुक्ति की पहचान का श्रेय वैज्ञानिक प्रबन्ध के पिता टेलर को दिया जाता है। टेलर एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध के अग्रणी अन्य व्यक्तियों ने इस तकनीक को प्रभावपूर्ण प्रबन्धन के लिए तथा अति प्रबन्धन की रोकथाम के लिए महत्त्वपूर्ण माना है।

संक्षेप में इस प्रणाली के महत्त्व को उससे प्राप्त होने वाले निम्नलिखित लाभों के सन्दर्भ में भली प्रकार से समझा जा सकता है–

1. प्रबन्धकों के व्यक्तिगत समय की बचत होती है।
2. अधिशासी प्रयत्नों को वांछित समय एवं स्थान पर सकेन्द्रित किया जा सकता है।
3. जटिल समस्याएँ एवं मामले उच्चाधिकारियों के ध्यान से नहीं बच पाते ।
4. प्रबन्धकीय क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करना आसान हो जाता है।
5. निर्णयन की बारम्बारता में कमी लाई जा सकती है।
6. उपलब्ध समंक, इतिहास एवं प्रवृतियों की जानकारी का पूर्णतम उपयोग संभव होता है।
7. अधिक योग्य एवं उच्च वेतन वाले व्यक्तियों को उच्च प्रत्याय वाले कार्यों पर लगाया जा सकता है।
8. संकटों एवं कठिन समस्याओं को शीघ्र जाना जा सकता है। अवसरों एवं कठिनाइओं के प्रति प्रबन्ध को सावधान किया जा सकता है।
9. परिस्थितियों एवं व्यक्तियों के मूल्यांकन के लिए गुणात्मक तथा परिमाणात्मक मापदण्ड होते है।
10. अनुभव रहित अथवा कम अनुभवी प्रबन्धकों के लिए बिना प्रशिक्षण के भी नव कार्यों को सम्पन्न करना आसान हो जाता है।
11. व्यवसाय क्रियाओं के समस्त पहलुओं की व्यापक जानकारी तथा संस्था के विभिन्न अंगों के बीच प्रभावी संचार को प्रोत्साहित करती है।

अपवाद द्धारा प्रबन्ध : सीमाएँ–

प्रमुख सीमाएँ निम्नानुसार है–

1. यह संगठन व्यक्ति के व्यक्तिगत विचार को बढ़ाती है।
2. यह प्रायः अविश्वसनीय संमकों पर आधारित रहती है।
3. यह व्यापक अवलोकन एवं रिपोर्टिंग की आवश्यकता रखती है जो कि संभव नहीं है।
4. यह कागजी कार्यवाही को बढ़ाती है।
5. यह व्यावसायिक मामलों में अक्सर एक अस्वाभाविक स्थिरता को मानकर चलती है जबकि ऐसी स्थिरता देखने में नहीं आती।
6. यह प्रणाली अपवादों की प्रस्तुति कि अभाव में सब कार्य ठीक प्रकार से हो रहा है, मानकर चलती है। इससे प्रबन्ध को झूठी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सुरक्षा प्राप्त होती है।

7. यह प्रणाली अनेक घटकों जैसे मानवीय व्यवहार आदि की माप ठीक तरह से नहीं करती।

व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध
(strategic Management)

संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आन्तरिक व बाहरी घटकों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न क्रियाओं के स्वरूप का निर्धारण करना **व्यूहरचना** हैं। अमेरिका के स्टेनफोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्युट के अनुसार–'' व्यूहरचना एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसमें संगठन वातावरण को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपने मुख्य संसाधनों एवं प्रयत्नों का उपयोग करता है। ''व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का आशय संगठन के लिए पूर्व–निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु भावी दिशा के बारे में निर्णय लेने एवं उन निर्णयों को लागू करने से सम्बन्धित है।''

1. **स्टोनर एवं फ्रीमैन** के मतानुसार– '' व्यूहरचना प्रबन्ध की एक ऐसी प्रक्रिया है जो एक संगठन को व्यूहरचना नियोजन एवं उन योजनाओं पर कार्यवाही करने हेतु बाध्य करती है।
2. **जॉच एवं गुलिक** के अनुसार, '' व्यूहरचना प्रबन्ध निर्णय एवं कार्यवाही का एक प्रवाह है जो निगमीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता हेतु प्रभावी व्यूहरचना के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध प्रक्रिया का वह पथ है जिसके अन्तर्गत व्यूहरचनाकर्त्ता उद्देश्यों का निर्धारण करता है एवं व्यूहरचनात्मक निर्णय लेता है।

इस प्रकार व्यूहरचात्मक प्रबन्ध का अर्थ संगठन के उद्देश्यों का निर्धारण, व्यूहरचना का निर्माण, उसके लागू करने एवं क्रियान्वित करने की प्रबन्धकीय प्रक्रिया से है और समयान्तराल से उनसे सम्बन्धित उपयुक्त सुधारात्मक कदमों को उठाया जाता है।

व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध : विशेषताएँ–

व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध की विशेषताएं निम्नलिखित है :–

1. औपचारिक प्रबन्धकीय प्रक्रिया– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध औपचारिक प्रबन्धकीय प्रक्रिया है क्योंकि इसके अन्तर्गत संगठन के उद्देश्य, व्यूहरचना का निर्माण, क्रियान्वयन, अनुवर्तन एवं उसके क्रियान्वयन से सम्बद्ध सुधारात्मक कदम उठाये जाते है।
2. प्रबन्धकों की प्रतिबद्धता–यह प्रबन्धकों की प्रतिबद्धता को इस रूप में प्रकट करता है कि वे कुछ निश्चित व्यूहरचनाओं को अपनायेंगे और ऐसे संसाधन उपलब्ध करेंगे ताकि संगठन के उद्देश्य की पूर्ति हो सके।
3. व्यवस्थित प्रक्रिया– यह एक व्यवस्थित प्रक्रिया है क्योंकि संगठन के पूर्व निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तर्कसंगत एवं क्रमबद्ध कदमों का उपयोग किया जाता है, जैसे –वातावरण का विश्लेषण करना, उद्देश्यों का निर्धारण करना,व्यूहरचना का निर्माण करना, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं अनुवर्तन आदि।
4. उच्च–स्तरीय प्रबन्ध– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का कार्य संगठन में उच्चस्तरीय प्रबन्ध द्वारा ही किया ही जाता है। इसके लिए वे समग्र संगठन के उद्देश्यों एवं व्यूहरचनाओं का विकास करते हैं, परिचालन प्रबन्ध करते हैं एवं प्रशासनिक प्रबन्ध का विकास करते हैं।
5. साध्य एवं साधन– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का सम्बन्ध साध्य एवं साधन दोनों से है। इसका कारण यह है कि यह एक संगठन का उसके लक्ष्य की उपलब्धि के साधन के रूप में उसके वातावरण के साथ सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए प्रबन्ध करने पर बल देता है।
6. निर्देशात्मक नियोजन– चूँकि व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध दीर्घकालीन ध्येय को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

इसलिए यह संगठन के प्रयासों को एक निश्चित दिशा में प्रेरित करने वाला निर्देशात्मक नियोजन है। अतः इसमें संगठन के मार्गदर्शन हेतु नीतियों का निर्माण किया जाता है, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों की स्थापना की जाती है और व्यूहरचना का निर्धारण किया जाता है ताकि संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

7. गतिशील प्रक्रिया–व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध एक गतिशील प्रक्रिया है क्योंकि संगठन, संगठन के बाहर विभिन्न क्षेत्रों में बदली परिस्थितियों के अनुसार व्यावसायिक उद्देश्यों, नीतियों, निर्णयनों एवं मूल्यांकन में परिवर्तन किया जाता है। यही नहीं, इसकी आवश्यकता संगठन के साथ विभिन्न हित समूहों तथा संगठनों के हित के कारण भी होती हैं।
8. भविष्योन्मुखी प्रक्रिया– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध भविष्योन्मुखी प्रक्रिया है क्योंकि इसके अन्तर्गत भावी घटनाओं, अवसरों, चुनौतियों एवं खतरों आदि का अनुमान लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनके अनुसार व्यूहरचनाओं का निर्माण तथा क्रियान्वयन द्वारा किया जाता है। इस सम्बन्ध में पीयर्स एवं रॉबिन्सन ने कहा कि, ''यह प्रबन्धकों द्वारा अपने प्रतिस्पर्द्धी वातावरण के लिए अन्तर्क्रिया हेतु अपनायी गयी वृहत् भविष्योन्मुखी योजना है।''

व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध : महत्त्व (Importance)

आधुनिक व्यवसाय की सफलता कड़ी प्रतिस्पर्द्धा को जीतने पर निर्भर करती है। आज इस गलाघोट प्रतिस्पर्द्धा एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वैश्वीकरण के वातावरण में अन्य कम्पनी को हराकर अपना अस्तित्त्व बनाने के लिए व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का महत्त्व बढ़ गया हैं। इसके अलावा प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण में लाभ कमा लेना भी कोई सहज कार्य नहीं है। इसके लिए भी संस्था को व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का सहारा लेना पड़ता है। व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध का महत्व निम्नलिखित है–

1. व्यवसाय का कुशल संचालन– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध द्वारा किसी भी व्यवसाय का कुशल संचालन सम्भव है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के प्रबन्ध से परिवर्तनों का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है, नये अवसरों का लाभ उठाने के लिए नवाचार किया जा सकता है और भविष्य का अनुमान लगाते हुए व्यावसायिक जोखिम को कम किया जा सकता हैं इसके अतिरिक्त व्यावसायिक अवसरों का लाभ भी उठाया जा सकता है।
2. उद्देश्यों की स्पष्टता एवं प्रेरणा – व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध के माध्यम से संस्था के कर्मचारियों को संगठन के उद्देश्यों की जानकारी हो जाती हैं ताकि वे उनका अनुसरण कर उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित हो सके। इस प्रकार कर्मचारियों को यह

   ज्ञात हो जाता है कि संस्था उनसे क्या आशा कर रही है और संगठन कहाँ जा रहा है?
3. वातावरणीय चुनौतियों का सामना एवं अवसरों का लाभ – व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध से प्रबन्धक वातावरणीय चुनौतियों का न केवल सामना करने में सक्षम हो जाते हैं, अपितु विशेष अवसरों का लाभ उठाने के योग्य भी हो जाते हैं। इसी प्रकार यह कार्य प्रबन्धकों को बेहतर प्रबन्ध करने तथा वातावरण के साथ निरन्तर समायोजन करने में सहायता भी प्रदान करते है।
4. सर्वश्रेष्ठ निर्णयन में सहायता– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध सर्वश्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता करता है, क्योंकि–

   1. वह उन्हें आवश्यक तत्त्व, समंक एवं सूचनाएं उपलब्ध कराता है।

   2. संस्था की मुख्य समस्या की जॉच में सहायता करता है।

   3. यह महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने का व्यवस्थित तरीका है।

   4. वह सर्वोत्तम विकल्प दर्शाता है।

   5. प्रबन्धकों को भविष्य की सोचने हेतु बाध्य करना।
5. संगठन की योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि – व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध द्वारा संगठन की योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि होती है इसका कारण यह है कि यह वातावरण के साथ अनुकूलतम तालमेल स्थापित करता है, कार्य निष्पादन में संघर्ष को कम करने में सहायता करता है, और निम्न रेखा स्तर पर सफलता को सुनिश्चित करता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यक्तियों तथा समूह के मध्य क्रियाओं में अन्तराल एवं दोहराव को भी कम करता है क्योंकि इसमें सहभागिता के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका का स्पष्टीकरण होता है।
6. कर्मचारी–अभिप्रेरणा में सुधार– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध द्वारा व्यूहरचनात्मक नियोजन में निहित आवश्यक कदमों में उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण होता है, निहित उत्पादकता –पुरस्कार सम्बन्धों की कर्मचारियों द्वारा प्रशंसा की जाती हैं। इन सब के परिणामस्वरूप कर्मचारी –अभिप्रेरणा में सुधार होता है।
7. परिवर्तनों के प्रतिरोध में कमी– व्यूहरचनात्मक प्रबन्ध परिवर्तनों के प्रतिरोध में कमी लाता है क्योंकि वह कर्मचारियों को सहभागिता प्रदान कर उनकी भ्रान्तियों, अफवाहों, मिथ्या धारणाओं को दूर करता है उनसे विचार विमर्श करता है, आर्थिक प्रेरणा देता है,उचित परिवर्तन के लाभ बताता है और प्रतिस्पर्द्धी भावना का विकास कर परिवर्तनों को आसानी से लागू भी कर लेता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. प्रबन्ध के सिद्धान्तों की प्रकृति किस प्रकार की है?
2. 'सिद्धान्त' से क्या अभिप्राय है?
3. 'उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध' विचार के जनक कौन है?
4. अपवाद द्वारा प्रबन्ध का मूल मन्त्र क्या है?
5. प्रबन्ध के कौनसे सिद्धान्त सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किये गए है।
6. 'व्यवस्था के सिद्धान्त' का क्या तात्पर्य है?
7. बाजार की कौनसी दशा या स्थिति ने व्यूहरचना प्रबन्ध तकनीक को अपनाने पर बल दिया?
8. 'उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध' क्या है?
9. व्यूहरचना प्रबन्ध किसे कहते है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. "परस्पर हित संघर्ष" की दशा में फेयोल ने किस हित को सर्वोपरि रखने का सुझाव दिया?
2. अधिकारों के भारर्पाण सम्बन्धी निर्देशात्मक सुझाव हेनरी फेयोल के कौनसे सिद्धान्त में निहित है?
3. हेनरी फेयोल की प्रसिद्ध पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण का प्रकाशन अमेरिका में कब हुआ ?
4. फेयोल ने प्रबन्ध समस्या के शोध कार्य हेतु औद्योगिक संगठन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की समस्त क्रियाओं को कौन–कौनसे 6 वर्ग में विभाजित किया ?

5. 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' तकनीकी के प्रणेता कौन है ?
6. प्रबन्धकों का ध्यान जटिल व आवश्यक मामलों पर केन्द्रित हो, इसके लिए कौनसी प्रबन्ध तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए?
7. संस्था, विभाग व व्यक्ति के उद्देश्यों का संयुक्त रूप से निर्धारण कौनसी प्रबन्ध तकनीकी में होता है ?
8. उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध तकनीकी के कोई दो लाभ बताइये।
9. वातावरण में उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाने एवं चुनौतियों का ठीक से सामना करने के लिए कौनसी प्रबन्धकीय तकनीकी का प्रयोग किया जाना चाहिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है ? फेयोल के प्रबन्ध सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. प्रबन्ध के क्षेत्र में हेनरी फेयोल के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' विचार की विवेचना कीजिए।
4. उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध–तकनीक से क्या तात्पर्य है, इसके लाभ–दोष का वर्णन कीजिए।
5. व्यूरचनात्मक प्रबन्ध पर टिप्पणी लिखिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभिप्रेरणा–अर्थ, परिभाषा, आवश्यकता एवं महत्व, तकनीक एवं विचारधाराएँ
Motivation - Meaning, Definition, Needs & Importance, Techniques & Theories

वर्तमान समय में प्रत्येक संस्था का मुख्य उद्देश्य मानवीय संसाधनों का कुशलतम एवं श्रेष्ठ उपयोग करना है। मानवीय संसाधनों का बेहतर उपयोग एक चुनौतीपूर्ण एवं जटिल कार्य है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का कार्य करने या न करने के प्रति चिंतन एवं दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न होता है। उत्पादन के विभिन्न साधनों में केवल मनुष्य ही सजीव व गतिशील होता है। संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मनुष्य की कार्य करने की इच्छा को प्रभावित करने के लिए अभिप्रेरणा नितांत आवश्यक है। अभिप्रेरणा व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता (Capacity) एवं उसके द्वारा किये गये कार्य निष्पादन (Performance) में जो अंतर होता है उसको न्यूनतम (Minimize) करने का कार्य करती है। यह एक मनोवैज्ञानिक ऊर्जा है जो व्यक्तियों को संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु प्रेरित करती है।

अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of Motivation) :–

प्रबंध एक नवोदित विषय है एवं अभिप्रेरणा प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य। अभिप्रेरणा संबंधी नित्य नवीन विचारधाराओं की उत्पति एवं इसके कार्य विस्तार को दृष्टिगत रखते हुये विचारकों ने इसे विविध प्रकार से परिभाषित किया है। लुथांस (Luthans) के शब्दों में "आज प्रत्येक व्यक्ति, जन सामान्य एवं विद्धानों की अभिप्रेरणा के संबंध में अपनी–अपनी परिभाषाएँ है।"

सामान्य अर्थों में अभिप्रेरणा एक आंतरिक इच्छा या भावना है जो किसी कर्मचारी को पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करने के लिये उत्प्रेरित करती है। अभिप्रेरणा की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न प्रकार से है :–

1. स्टेनले वेन्स (Stanley Vance) के अनुसार :–

"कोई भी ऐसी भावना या इच्छा जो किसी व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार परिवर्तित कर दें कि वह व्यक्ति कार्य करने को प्रेरित हो जाए, उसे अभिप्रेरणा कहते है।"

2. कून्ट्ज तथा ओडोनेल (Koontz & O'Donnell) के शब्दों में :–

"लोगों को इच्छित तरीके से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना अभिप्रेरणा है।"

3. मेक्फारलैण्ड (Mcfarland) के मतानुसार :–

"अभिप्रेरण मूलतः मनोवैज्ञानिक धारणा है। इसका संबंध किसी कर्मचारी अथवा अधीनस्थ में कार्य कर रही उन शक्तियों से है जो उसे किसी कार्य को विधिवत तरीके से करने या न करने हेतु प्रेरित करती है।"

4. विलियम जी. स्कॉट (William G. Scott) के मतानुसार :–

"अभिप्रेरणा का तात्पर्य लोगों को इच्छित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित करने की प्रक्रिया से है।"

5. विलियम ग्लूक (William Glueck) के अनुसार :–

"अभिप्रेरण वह आंतरिक स्थिति है जो मानवीय व्यवहार को अर्जित, प्रवाहित एवं क्रियाशील रखती है।"

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अभिप्रेरणा प्रबंध का वह महत्वपूर्ण कार्य है जो व्यक्तियों की भावनाओं, इच्छाओं, आवश्यकताओं आदि का अध्ययन कर उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता है, जिससे व्यक्ति कार्य करने को तत्पर होकर संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अपना अधिकतम् योगदान

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रदान करता है।

अभिप्रेरणा की विशेषताएँ (Characterstics of Motivation):–

विभिन्न परिभाषाओं को ध्यान में रखते हए अभिप्रेरणा की निम्नांकित प्रमुख विशेषताएँ परिलक्षित होती है :–

1. यह एक सतत् प्रक्रिया है।
2. यह एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है।
3. यह मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि है।
4. अभिप्रेरण केवल मानवीय संसाधनों का ही किया जा सकता है।
5. अभिप्रेरणा की विभिन्न विधियां होती है।
6. अभिप्रेरण संतुष्टि का कारण नहीं अपितु परिणाम है।
7. यह व्यक्तियों की कार्य क्षमता, कार्य कुशलता में वृद्धि करती है।
8. अभिप्रेरणा मनोबल से भिन्न होती है।
9. अभिप्रेरण में सम्पूर्ण व्यक्ति अभिप्रेरित होता है उसका कोई एक भाग नहीं।
10. यह प्रबंधकीय सफलता का कारण एवं परिणाम दोनों है।

अभिप्रेरण – आवश्यकता एवं महत्व (Motivation - Needs & Importance)

उत्पादन के विभिन्न साधनों में मानव ही सजीव एवं सक्रिय साधन है। अभिप्रेरणा के माध्यम से मनुष्य को सक्रिय एवं गतिशील बनाया रखा जा सकता है। यदि मानवीय संसाधन अभिप्रेरित होकर कार्य करने हेतु तत्पर हो जायें तो उत्पादन के अन्य साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग एवं संगठन के लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से संभव हो जाती है। इसीलिए उपक्रम के प्रत्येक कर्मचारी को अभिप्रेरित करना नितान्त आवश्यक है। अभिप्रेरणा के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए ही रेन्सिस लिकर्ट (Rensis Likert) ने इसे 'प्रबंध का हृदय' (The Core of Managment) माना है।

अभिप्रेरणा का संबंध मानवीय पहलू से है। अभिप्रेरण से व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि की जाती है एवं उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास किया जाता है। यदि किसी उपक्रम के कर्मचारियों को अभिप्रेरित नहीं किया जायेगा तो उनकी योग्यता एवं कार्यक्षमता में निरन्तर ह्रास होता जायेगा, इसीलिए एलेन (Allen) ने लिखा है कि, "अपर्याप्त अभिप्रेरित व्यक्ति एक सुदृढ़ संगठन का प्रभाव समाप्त कर देते है।" (Poorly motivated people can nullify the soundest organization.)

अभिप्रेरणा के महत्व का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने से पूर्व हमें यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि मानवीय व्यवहार का अध्ययन सदैव से ही जटिल चुनौतीपूर्ण एवं रहस्यमय रहा है। अभिप्रेरण के माध्यम से कर्मचारियों के इस चुनौतीपूर्ण व्यवहार तथा उनकी इच्छाओं, भावनाओं, संवेगों उद्वेगों, आवश्यकताओं, महत्वकांक्षाओं, प्रेरणाओं आदि को समझकर उनके व्यवहार को संस्था के अनुकूल बनाया जाता है। कर्मचारियों में संस्था के प्रति अपनत्व, निष्ठा, वफादारी की भावना पैदा की जाती है। अभिप्रेरणा के महत्व एवं आवश्यकता के संबंध में जनरल फूड कॉरपोरेशन के भूतपूर्व अध्ययन क्लेरेंस फ्रांसिस (Clarence Fransis) का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है – "आप किसी व्यक्ति का समय खरीद सकते है, आप किसी व्यक्ति की विशिष्ट स्थान पर शारीरिक उपस्थिति खरीद सकते है, किन्तु आप किसी का उत्साह, पहलपन या वफादारी नहीं खरीद सकते हो।" अभिप्रेरणा के महत्व को अग्रांकित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक (Helps in achieving determined goals)

किसी भी संस्था के निर्धारित लक्ष्यों एवं उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरणा अत्यंत आवश्यक है। अभिप्रेरण से कर्मचारियों को उन कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया जाता है जिनको करने से संस्था के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। संस्था के पास प्रचुर मात्रा में वित्तीय संसाधन, उच्च व गुणवत्ता किस्म का माल, श्रेष्ठ व आधुनिक तकनीक तथा अन्य संसाधनों की उपलब्धता होने के बावजूद भी अभिप्रेरण के अभाव में संगठन का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए एलेन ने ठीक ही लिखा है कि 'अपर्याप्त अभिप्रेरित कर्मचारी सुदृढ़ संगठन का प्रभाव भी समाप्त कर देते है।'

किसी भी संस्था के निर्धारित लक्ष्यों एवं उदेश्यों को प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरणा अत्यंत आवश्यक है। अभिप्रेरण से कर्मचारियों को उन कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया जाता है जिनको करने से संस्था के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते है। संस्था के पास प्रचुर मात्रा में वित्तीय संसाधन, उच्च व गुणवत्ता किस्म का माल, श्रेष्ठ व आधुनिक तकनीक तथा अन्य संसाधनों की उपलब्धता होने के बावजूद भी अभिप्रेरण के अभाव में संगठन का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए एलेन ने ठीक ही लिखा है कि 'अपर्याप्त अभिप्रेरित कर्मचारी सुदृढ़ संगठन का प्रभाव भी समाप्त कर देते है।'

2. कार्य संतुष्टि में अभिवृद्धि (Increase in job satisfaction)

अभिप्रेरणा के द्वारा कर्मचारी द्वारा किये जाने वाले कार्य के प्रति उसकी रूचि पैदा करके, उसके कार्य की महत्ता एवं उपादेयता का विश्लेषण करके, कर्मचारी की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कार्य संतुष्टि बढाई जा सकती है। यदि कर्मचारी की कार्य के प्रति रुचि जागृत नहीं की जायेगी तो वह कार्य के प्रति उत्साहित नहीं रहेगा। यही नहीं, एक कर्मचारी अपने लाभों की तुलना अन्य व्यक्तियों को प्राप्त लाभों से करता है एवं तुलनात्मक दृष्टि से उसे ज्यादा लाभ मिलते है तो वह कार्य के प्रति संतुष्टि महसूस करता है, अभिप्रेरण के द्वारा कर्मचारी की इस आवश्यकता को पूरा किया जाता है। अभिप्रेरणा आवश्यकता पूर्ति के माध्यम से कर्मचारी को संतुष्ट करने का प्रयास करती है तथा विभिन्न वित्तीय एवं अवित्तीय घटको द्वारा कार्य संतुष्टि स्तर में अभिवृद्धि करती है।

3. संसाधनों का सदुपयोग (Proper utilisation of resources)

संस्था के मानवीय संसाधनों के कुशलतम उपयोग हेतु कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जाना आवश्यक है। एक कुशल कर्मचारी को यदि अभिप्रेरित नहीं किया जाता है तो उसकी कार्यक्षमता एक अकुशल कर्मचारी के समान होती है। अभिप्रेरणा से कर्मचारी की योग्यताओं का विकास करके संस्था हित में उनका सदुपयोग किया जा सकता है। एक अभिप्रेरित कर्मचारी व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा संस्था के हितों को प्राथमिकता प्रदान करता है।

4. मनोबल में वृद्धि (Improves morale)

मनोबल कार्य करने की इच्छा का नाम है। अभिप्रेरणा से कर्मचारी की आवश्यकता की पूर्ति होती है एवं उसे मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है। मानसिक संतुष्टि के परिणाम स्वरूप कर्मचारी का व्यवहार एवं प्रवृतियां संस्था के अनुकूल बनती है, जिससे कर्मचारी में अधिकाधिक कार्य करने की इच्छा जागृत होती है एवं उसका मनोबल बढ़ता है।

5. अच्छे श्रम सम्बन्धों का निर्माण (Build good labour relations)

अभिप्रेरणा इस बात पर बल देती है कि श्रमिक मूलतः एक मनुष्य है। अतः उसके साथ सम्मानजनक मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिये। अभिप्रेरणा से प्रबंधकों एवं कर्मचारियों के मध्य पारस्परिक सहयोग एवं विश्वास पनपता है, जिससे कर्मचारियों की शिकायतों, नैराश्य, हताशा, हड़ताल, तालाबंदी आदि में कमी आती है एवं अच्छे श्रम संबंधों की स्थापना होती है।

6. कर्मचारी अनुपस्थिति एवं आवर्तन में कमी (Reduced employee absenteeism & turnover)

अभिप्रेरित कर्मचारी अपने कार्य एवं वातावरण से संतुष्ट होते है। कार्य एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने में वे अपना सकारात्मक सहयोग देते है, जिससे कर्मचारी अनुपस्थिति में कमी आती है। अभिप्रेरित कर्मचारी स्थायी रुप से संस्था में बने रहते है जिससे श्रम आवर्तन दर में भी कमी आती है। इस प्रकार एक अच्छी एवं सुदृढ़ अभिप्रेरण व्यवस्था से कर्मचारी अनुपस्थिति एवं आवर्तन में कमी लायी जा सकती है।

7. प्रबंधकीय कार्यों का आधार (Basis of managerial functions)

प्रबंध के विभिन्न कार्य यथा नियोजन, संगठन, समन्वय, निर्देशन, नियंत्रण आदि को सम्पन्न करने के लिये अभिप्रेरणा आवश्यक है। यदि कर्मचारियों को अभिप्रेरित नहीं किया गया तो वे प्रबंध के इन आधारभूत कार्यो का निष्पादन उचित ढंग से नहीं करेगें। ब्रीच के शब्दों में "अभिप्रेरण की समस्या प्रबंध कार्यवाही की कुंजी है।"

8. परिवर्तनों में सुविधा (Facilitates changes)

सामान्यतः कर्मचारियों का परिवर्तनों के प्रति नकारात्मक सोच रहता है, वे अपने इस नकारात्मक रवैये के कारण परिवर्तनों का विरोध करते है। अभिप्रेरणा के द्वारा कर्मचारियों के इस नकारात्मक चिन्तन को सकारात्मक चिन्तन में परिवर्तित करने में सरलता एवं सुगमता रहती है। परिणामतः वर्तमान समय में त्वरित गति से होने वाले तकनीकी परिवर्तन, विषयवस्तु परिवर्तन आदि को कर्मचारी सहजता से स्वीकार कर लेता है।

9. समूह भावना का विकास (Development of team spirit)

अभिप्रेरण की क्रियान्विति से कर्मचारी संतुष्ट एवं लाभान्वित होते हैं तथा उनके मध्य स्नेह, सहयोग एवं सामंजस्य की भावना का विकास होता है। इन भावनाओं के उत्पन्न होने से संगठन में समूह भावना पनपती है, जिससे संस्था के उद्देश्य प्राप्ति में सहायता मिलती है।

10. संस्था ख्याति में वृद्धि (Enhance corporate image)

जो संस्था अपने कर्मचारियों को संतुष्ट एवं प्रसन्न रखती है, व्यावसायिक जगत में उस संस्था की ख्याति में चार चांद लग जाते है। कर्मचारी ऐसी संस्था में कार्य करना पंसद करते है जहॉ उनकी आवश्यकताओं व इच्छाओं को पूरा कर उनको खुश रखने का प्रयास किया जाता है। ऐसे संगठनों में अन्य संस्थानों के कर्मचारी भी कार्य करने के लिए लालायित रहते है।

11. व्यावहारिक प्रबंध की कुंजी (Key to behavioural management action)

ई.एफ.एल. ब्रीच के शब्दों में "अभिप्रेरणा व्यावहारिक प्रबंध की एक कुंजी है तथा निष्पादित रुप में प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। सभी प्रबंधकीय कार्यों में अभिप्रेरणा की क्रियान्विति आवश्यक है। अभिप्रेरणा के क्रियान्वयन से ही प्रबंधकीय कार्यों में गति लाई जा सकती है।"

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभिप्रेरणा की तकनीकें (Techniques of Motivation)

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिये विभिन्न साधनों एवं विविध तकनीकों को काम में लिया जाता है। अध्ययन के दृष्टिकोण से इन तकनीकों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :–

A. वित्तीय तकनीके (Financial techniques)

कर्मचारी अभिप्रेरण में वित्तीय तकनीकों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रबंध विचारको ने सर्वसम्मति से वित्तीय तकनीकों के महत्व को स्वीकार किया है। वित्तीय तकनीकों का संबंध मुद्रा या आर्थिक अभिप्रेरण से है। यह सर्वविदित तथ्य है कि वित्त से व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ सामाजिक एवं विलासिता की आवश्यकताओं की पूर्ति भी संभव है। अतः वित्तीय तकनीकें अभिप्रेरणा के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

वित्तीय तकनीक में उच्च वेतन, वेतन वृद्धि, बोनस, लाभों में हिस्सेदारी, पेंशन, ग्रेच्यूटी, बीमा, भविष्य निधि अंशदान, विशेष वेतन वृद्धि आदि शामिल किये जाते है।

B. अवित्तीय तकनीकें (Non financial techniques)

अभिप्रेरण की अवित्तीय तकनीकों का धन या मुद्रा से कोई संबंध नहीं होता है। ये तकनीकें मनोवैज्ञानिक होती है। जो व्यक्ति की भावनाओं एवं इच्छाओं को पूरा करने में सहायक होती है। अवित्तीय तकनीक वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों प्रकार की हो सकती है। वैयक्तिक अवित्तीय तकनीक में व्यक्तिगत सम्पर्क, पदोन्नति, विकास के अवसर, कार्य विस्तार आदि शामिल किये जा सकते हैं। सामूहिक अवित्तीय तकनीक में समूह चर्चा, सहभागिता, सम्मेलन एवं सभाएँ, सामूहिक प्रशिक्षण आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। कुछ प्रमुख अवित्तीय तकनीकों का सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार से है :–

1. पद एवं सेवा सुरक्षा (Status & Job security)

कर्मचारियों को निरन्तर स्थायी रुप से कार्य उपलब्ध करवाकर उन्हें सेवा सुरक्षा प्रदान की जाती है। सेवा सुरक्षा प्रदान करने से कर्मचारी छंटनी, सेवामुक्ति आदि की जोखिम से मुक्त हो जाता है एवं उसे अभिप्रेरित किया जाना सरल हो जाता है। इसी प्रकार कर्मचारी उच्च पदों को प्राप्त करना चाहता है तथा वर्तमान पद को बनाये रखना चाहता है। यह सुविधा प्रदान करके भी अभिप्रेरण किया जा सकता है।

2. प्रशंसा एवं सम्मान (Praise & Honour)

कर्मचारियों द्वारा अपने उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निश्चित समय में पूर्ण करने पर उनकी सार्वजनिक रुप से प्रशंसा की जानी चाहिये एवं उपयुक्त अवसरों पर उनका सम्मान किया जाना चाहिये। कर्मचारियों की प्रशंसा एवं सम्मान करने से उनके आत्म–सम्मान, आत्मविश्वास एवं मनोबल में बढ़ोतरी होती है। कर्मचारियों को शाबाश, धन्यवाद, पदोन्नति तथा प्रमाण पत्र आदि देकर प्रशंसा एवं सम्मान व्यक्त किया जा सकता है।

3. प्रबंध में सहभागिता (Partcipation in Management)

कर्मचारियों को संस्था के महत्वपूर्ण कार्यो, लक्ष्यों, व्यूह रचनाओं, नीति निर्धारण एवं निर्णयों में भागीदारी देकर अभिप्रेरित किया जा सकता है। सहभागिता से कर्मचारी अधिक उत्तरदायी एवं सृजनशील हो जाता है तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना बढ़ जाती है। निर्णयों में सहभागिता होने से कर्मचारी निर्णयों से बद्ध हो जाते हैं, जिससे संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति सरलता से होती है एवं कर्मचारी भी अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है।

4. प्रभावी नेतृत्व एवं पर्यवेक्षण (Effective leadership & Supervision)

अच्छा नेतृत्व संस्था में मानव के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण, उनकी समस्याओं के समाधान में रूचि तथा निरीक्षण कार्य में उनके साथ सद्व्यवहार करता है, जिससे श्रम संबंधों में मधुरता आती है। अच्छा नेतृत्व कर्मचारियों में कार्य के प्रति रूचि जागृत करता है। कर्मचारी अभिप्रेरण हेतु पर्यवेक्षण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक अच्छा पर्यवेक्षक अपने मानवीय व्यवहार से तथा व्यवहारिक एवं सहयोगात्मक पर्यवेक्षण करके कर्मचारियों के साथ अनौपचारिक संबंधों का निर्माण करता है, जिससे कर्मचारियों की कार्य के प्रति रूचि व लक्ष्य प्राप्ति के प्रति उत्साह बढ़ता है।

5. अधिकार प्रत्यायोजन (Delegation of authority)

किसी कर्मचारी को केवल उत्तरदायित्व सौंपना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिये। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों को अधिकार प्रत्यायोजित कर उन्हें अभिप्रेरित कर सकते है। अधिकार प्रत्यायोजन से कर्मचारियों में विश्वास जागृत होता है, उनमें कार्य करने की भावना प्रोत्साहित होती है एवं अधीनस्थों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

6. कार्य विस्तार एवं कार्य परिवर्तन (Job expansion & alteration)

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिये कार्य विस्तार एवं कार्य परिवर्तन एक उपयोगी उपाय है। इसमें एक व्यक्ति को एक कार्य सौंपने की बजाय समूह को कई कार्य सौंप दिये जाते है, जिससे कर्मचारी कार्य संपादन के दौरान सामाजिक संबंधों की स्थापना भी कर लेते है। कार्य परिवर्तन में कर्मचारियों का एक निश्चित समयान्तराल में कार्य परिवर्तित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किया जाता है ताकि उनकी कार्य के प्रति रूचि बढ़ें एवं निरसता में कमी आये। कार्य परिवर्तन से कर्मचारियों के अनुभव एवं मनौवैज्ञानिक विकास में बढ़ोतरी होती है।

7. समूह चर्चा (Group discussion)

समूह चर्चा के तहत कर्मचारियों के एक विशेष वर्ग या समूह के साथ सामयिक विषय पर विचार मंथन किया जाता है। इसमें सभी कर्मचारियों को अपने विचार रखने का अवसर मिलता है एवं अन्य व्यक्तियों के विचारों को जानने का मौका मिलता है। इस विधि से कर्मचारियों के आत्मविश्वास, मनोबल एवं उनके ज्ञानार्जन में वृद्धि होती है।

8. विकास के अवसर (Opportunity for development)

कर्मचारियों की योग्यता एवं कौशल विकास हेतु उन्हें पर्याप्त अवसर प्रदान करके अभिप्रेरित किया जा सकता है। इस हेतु संस्थान द्वारा कर्मचारियों के शिक्षण–प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिये।

9. प्रतिस्पर्द्धा एवं चुनौतियां (Competition & challenges)

संस्थान के बहुत से कर्मचारी योग्य व दक्ष होने के बावजूद भी पूर्ण मनोयोग से कार्य नहीं करते है, ऐसे कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा का आयोजन किया जाना चाहिये। कर्मचारी संस्था के पूर्व रिकार्डस को तोड़कर नया रिकार्ड बनाने हेतु जी–जान लगा देते है एवं प्रतियोगिता में विजयश्री का वरण करना चाहते है। इसी प्रकार कुछ कर्मचारी चुनौतियों को स्वीकार करने में गर्वित महसूस करते है। उनको अभिप्रेरित करने के लिए संस्था के लक्ष्यों एवं उनको सौंपे जाने वाले कार्यो को चुनौती के रुप में प्रस्तुत किया जाता है।

10. स्वस्थ वातावरण (Healthy Environment)

कार्य स्थल पर स्वस्थ वातावरण रहने से कर्मचारी संतुष्ट रहता है तथा संतुष्ट कर्मचारी उपक्रम के लिए अधिक मेहनत एवं मनोयोग से कार्य करने में रूचि लेता है। अतः संगठन में कार्य स्थल की दशाएँ अच्छी होनी चाहिये। यही नहीं, एक कर्मचारी अपने कार्य के दौरान या कार्य के पश्चात जहाँ आराम करता है उस स्थान का वातावरण भी अच्छा होना चाहिये।

अभिप्रेरणा की विचारधाराएँ (Theoris/Concepts of Motivation)

विभिन्न प्रबंध विचारको, मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों ने अभिप्रेरण से संबंधित विभिन्न विचारधाराएँ प्रतिपादित की है। इन विचारकों में अब्राहम एच.मास्लो, हजबर्ग, मेक्ग्रेगर, ओची, उर्विक, मेरी पार्कर फॉलेट,रेन्सिस लिकर्ट, व्रूम, हेराल्ड जे. लेविट आदि का नाम प्रमुख रुप से शामिल किया जा सकता है। अभिप्रेरणा की कुछ प्रमुख विचारधाराएँ निम्न प्रकार है

I. मास्लो की आवश्यकता क्रम पर आधारित विचारधाराएँ (Maslow's hierarchy of needs theory)

अभिप्रेरण की इस विचारधारा का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक अब्राहम.एच.मास्लो द्वारा सन् 1943 में किया गया। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि मनुष्य की आवश्यकताऐं अनन्त है एवं वह उन आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु प्रयत्न करने को तत्पर रहता है। मास्लो के मतानुसार यदि यह ज्ञात कर लिया जावे कि किस कर्मचारी की कौनसी आवश्यकता अधूरी है तो उस अधूरी आवश्यकता को पूर्ण करके व्यक्ति को अभिप्रेरित किया जा सकता है। यह विचारधारा अभिप्रेरणा की सर्वश्रेष्ठ विचारधाराओं में से एक है। मास्लो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में पांच आवश्यकताओं की क्रमबद्धता विद्यमान होती है, जो निम्न प्रकार से है :–

1. शारीरिक आवश्यकताएँ (Physiological needs)

शारीरिक आवश्यकताएँ मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ होती है। मनुष्य के जीवन–अस्तित्व को बनाये रखने हेतु शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक होती है। ये आवश्यकताएँ सर्वाधिक आवश्यक, प्रभावशाली एवं शक्तिशाली मानी जाती है जिनकी पूर्ति मनुष्य हर स्थिति में करना चाहता है। इन आवश्यकताओं में भोजन, कपड़ा, मकान, यौन–सम्पर्क, स्वच्छ हवा, धूप आदि की आवश्यकताएँ शामिल की जाती है। मनुष्य की ये आवश्यकताएँ ज्यों ही संतुष्ट हो जाती है, फिर ये आवश्यकताएँ उसे अभिप्रेरित नहीं करती है।

2. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ (Safety needs)

सुरक्षात्मक आवश्यकताओं की उत्पति शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात होती है। जब किसी व्यक्ति को भावी शारीरिक या मानसिक संकट का भय उत्पन्न होता है तो वह अपने भविष्य को सुरक्षित करना चाहता है। भविष्य में आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक संकटों के प्रति सुरक्षा के लिए आश्वस्त होना ही इन आवश्यकताओं की उत्पति का मुख्य कारण है। इनमें आजीवन आय का साधन, बीमा, पेन्शन, भविष्य निधि आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

3. स्नेह या अपनत्व की आवश्यकताएँ (Love or Belonging Needs)

मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक होने के कारण वह समाज में अपना मान–सम्मान, पद, प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। वह अपने जीवन में पारस्परिक स्नेह, प्यार, अपनत्व, मित्रता आदि की आकांक्षा रखता है। जब किसी व्यक्ति में इस प्रकार की आकांक्षा उत्पन्न होती है तो यह उसकी सामाजिक या स्नेह की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की उत्पति शारीरिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकता की उचित स्तर तक संतुष्टि होने के बाद होती है। यदि व्यक्ति की अपनत्व या सामाजिक आवश्यकताओं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की संतुष्टि नहीं होती है तो वह असहयोग, विरोध करने को तत्पर हो जाता है।

4. स्वाभिमान या अहंकारी आवश्यकताएँ (Esteem or Ego needs)

सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के पश्चात व्यक्ति की अहम् (Ego) एवं स्वाभिमान (Esteem) की आवश्यकताएँ उत्पन्न होती है। इस आवश्यकता में व्यक्ति कार्यरत संस्थान में पद, मान, स्थिति, मान्यता, प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता, निर्णयन अधिकार आदि की इच्छा करने लगता है। इन आवश्यकताओं में व्यक्ति स्वयं को महत्वपूर्ण सिद्ध करना चाहता है। व्यक्ति की इनमें से कुछ आवश्यकताएँ संतुष्ट हो जाती है एवं संभव है कि कुछ आवश्यकताएँ जीवन पर्यन्त भी संतुष्ट नहीं हो। इस आवश्यकता की पूर्ति विशेष योग्यता एवं क्षमता रखने वाले व्यक्ति ही कर पाते है। सामान्य व्यक्तियों की यह आवश्यकता सामान्यतः असंतुष्ट ही रहती है।

5. आत्म विकास की आवश्यकताएँ (Self actualisation needs)

मास्लो के मतानुसार आवश्यकताओं की क्रमबद्धता में यह अंतिम आवश्यकता है। आत्म विकास की आवश्यकता का तात्पर्य व्यक्ति की उस आवश्यकता से है, जिसमें एक व्यक्ति वह बनना चाहता है जो वह बन सकता है, अर्थात उसके लिए उसमें क्षमता एवं योग्यता है। मानव में आत्म विकास की आवश्यकता उसके भीतर की सृजनशीलता, क्षमता एवं योग्यताओं के कारण पैदा होती है। जब व्यक्ति अपनी भीतर छिपी हुई शक्तियों को जागृत कर वह 'सब कुछ बनना चाहता है जो वह बन सकता है' की भावना से उत्प्रेरित हो जाता है तो यह आवश्यकता मनुष्य को कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करती है। यह आवश्यकता किसी अभाव या कमी अथवा असंतुष्टि का परिणाम नहीं है अपितु यह दबी हुई क्षमताओं को उभारने हेतु स्वतः उत्पन्न होती है। मास्लो ने इस आवश्यकता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "एक संगीतकार को संगीत बनाना चाहिये, एक पेन्टर को पेन्ट करना चाहिये, एक कवि को कविता लिखनी चाहिये, यदि वह अन्ततोगत्वा प्रसन्न होना चाहता है। जो भी एक मनुष्य बन सकता है उसे बनना चाहिये।"

मास्लों का आवश्यकता अनुक्रम (MASLOW'S HIERARCHY OF NEEDS)

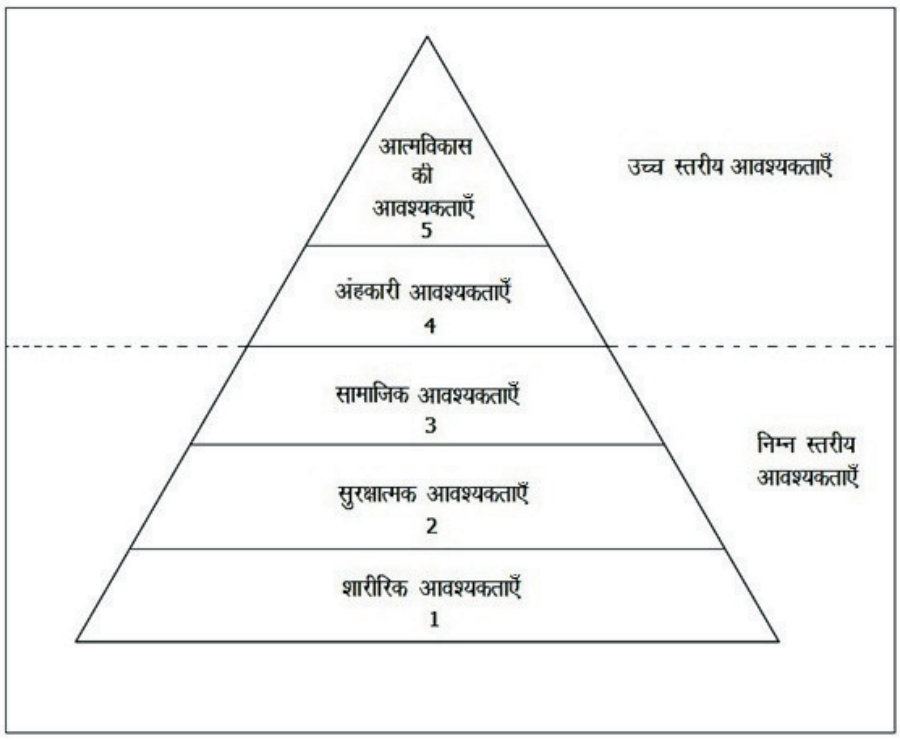

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

II. हर्जबर्ग की द्विघटक विचारधारा (Herzberg's Two Factor Theory)

द्विघटक विचारधारा के प्रतिपादक मनोवैज्ञानिक फेडरिक हर्जबर्ग माने जाते है। उन्होनें एवं इनके साथियों ने Psychological Service Pittsburgh में करीब 200 इंजीनियर्स पर शोध किया एवं उनसे कार्य के बारे में विचार जानकार इस विचारधारा का प्रतिपादन किया। हर्जबर्ग के मतानुसार जब व्यक्ति कार्य स्थल पर अपने कार्य से असंतुष्टि प्राप्त करता है तो उस असंतुष्टि का कारण वह वातावरण है जहॉ वह काम करता है। इस वातावरण को जो घटक प्रभावित करते हैं हजबर्ग ने उन्हें स्वास्थ्य या आरोग्य घटक के नाम से संबोधित किया।

ये घटक व्यक्ति को अभिप्रेरित नहीं करते है किन्तु उसे असंतुष्ट होने से रोकते है अर्थात ये कर्मचारियों की संतुष्टि को बनाये रखने हेतु आवश्यक होते है। अभिप्रेरक घटक की आवश्यकता आरोग्य घटक के पश्चात होती है। अभिप्रेरक घटक कर्मचारियों को संतुष्टि व अभिप्रेरणा प्रदान करने का कार्य करते है। इन घटकों में 6 घटकों की पहचान की गई है।

1. स्वास्थ्य/आरोग्य घटक (Hygiene factor):–

हर्जबर्ग ने स्वास्थ्य घटकों के नाम से जिन घटकों की पहचान की उनमें निम्नलिखित प्रमुख है :–

1) संस्था की नीतियाँ (Company Policies)
2) संस्था का प्रशासन (Administration)
3) कार्य दशाऐं (Working Conditions)
4) पर्यवेक्षण (Supervision)
5) पारस्परिक वैयक्तिक संबंध (Inter personal Relations)
6) वेतन या मजदूरी (Salary or Wages)
7) अनुषंगी लाभ (Fringe Benefit)
8) कार्य सुरक्षा (Job Security)

2. अभिप्रेरक घटक (Motivating factor):–

ये घटक कार्य से संबंधित घटक होते है। इन्हें संतुष्टि प्रदान करने वाले घटक भी कहा जाता है। हर्जबर्ग एवं उनके साथियों द्वारा प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार अभिप्रेरक घटक में निम्न बिन्दुओं को शामिल किया जा सकता है :–

1. उपलब्धियाँ (Achievement)
2. मान्यता एवं सम्मान (Recognition & Honour)
3. विकास (Development or Advancement)
4. उत्तरदायित्व (Responsibility)
5. व्यक्तिगत उन्नति (Personal Development)
6. कार्य की प्रकृति (Nature of Job)

हर्जबर्ग की विचारधारा के अनुसार आरोग्य घटकों से संस्थान अधिक प्रभावित होता है। इनसे संगठन में अच्छा वातावरण निर्माण किया जा सकता है एवं व्यक्ति की योग्यता को प्रभावित किया जा सकता है। ये घटक कर्मचारी की कार्यक्षमता को बनाये रखते है। अतः इन्हें अनुरक्षण तत्व (Maintenance Factor) भी कहा जाता है। हर्जबर्ग ने बताया कि अभिप्रेरक तत्वों से ही व्यक्ति को अभिप्रेरित किया जा सकता है, स्वास्थ्य तत्वों से नहीं।

3. मेक्ग्रेगर की 'एक्स' एवं 'वाई' विचारधारा ('X' and 'Y' Theory of McGregor)

अभिप्रेरण की 'एक्स' एवं 'वाई' विचारधारा का प्रतिपादन लेखक एवं मनोवैज्ञानिक डगलस मेक्ग्रेगर ने अपनी पुस्तक Human Side of Enterprises में किया। मेक्ग्रेगर ने इस विचारधारा में मानव अभिवृत्तियों एवं व्यवहार के संबंध में परस्पर दो विरोधी विचारधाराएँ प्रस्तुत की है। उन्होनें कार्यशील व्यक्तियों की कार्य के प्रति उनकी धारणा के आधार पर 'एक्स' एवं 'वाई' समूह के रुप में उनका वर्गीकरण किया। इनमें ऋणात्मक मान्यताओं वाली विचारधारा को उन्होनें 'एक्स' नाम दिया एवं सकारात्मक मान्यताओं वाली विचारधारा को 'वाई' नाम से सम्बोधित किया। मेक्ग्रेगर के अनुसार इन मान्यताओं के आधार पर कर्मचारियों की प्रवृत्ति का अध्ययन कर उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(1) 'एक्स' विचारधारा ('X' theory) :–

'एक्स' विचारधारा कर्मचारियों के प्रति नकारात्मक एवं निराशाजनक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह विचारधारा परम्परागत अवधारणा पर आधारित होने के कारण मनुष्य को नियंत्रित रखने पर बल देती है। इस विचारधारा की प्रमुख मान्यताएँ कर्मचारी समूह के संबंध में निम्न प्रकार से है :–

1. एक औसत कर्मचारी स्वभावतः आलसी होता है एवं वह कम से कम काम करना चाहता है अर्थात ये कार्य को बोझ समझते है एवं उससे बचना चाहते है।
2. ये लोग उत्तरदायित्वों से दूर रहना पसंद करते है।
3. ये परिवर्तनों का विरोध करते है एवं परम्परागत विधियों से ही कार्य करना पसंद करते है।
4. ये सामान्यतः महत्वाकांक्षी नहीं होते है, इनमें सृजनशीलता का अभाव पाया जाता है।
5. कर्मचारी आत्मकेन्द्रित या स्वार्थी होता है एवं संस्था से इनका बहुत कम लगाव होता है।
6. इनसे कार्य करवाने के लिए दण्ड, भय, प्रताड़ना का सहारा लिया जाता है।
7. ये कर्मचारी आर्थिक एवं वित्तिय लाभों के लिए कार्य करते है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) 'वाई' विचारधारा ('Y' theory) :–

'वाई' विचारधारा 'एक्स' विचारधारा के बिल्कुल विपरीत है। यह मानवीय संसाधनों के प्रति सकारात्मक रवैया प्रस्तुत करती है। यह कार्य वातावरण में सकारात्मक एवं उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिकाओं को प्रमुख आधार मानती है। इस विचारधारा की कर्मचारियों के संबंध में प्रमुख मान्यताऐं निम्न प्रकार से है :–

1. कर्मचारी कार्य को स्वाभाविक एवं सहज क्रिया मानते है।
2. ये नवीन विधियों एवं परिवर्तनों का स्वागत करते है एवं उनको अपनाना चाहते है।
3. ये महत्वाकांक्षी होते है तथा उत्तरदायित्व को स्वीकार करते है।
4. ये कर्मचारी कल्पनाशील एवं सृजनशील होते है।
5. ये स्वप्रेरित एवं स्वनियंत्रित होते है।
6. ये कर्मचारी अपनी क्षमता एवं योग्यता का अधिकतम सदुपयोग करना चाहते है।
7. ये केवल आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु काम नहीं करते है, अपितु स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास हेतु काम करते है।

III. विलियम औची की 'जेड' विचारधारा (William Ouchi's Z theory) :–

अभिप्रेरण की इस विचारधारा को प्रतिपादित करने का श्रेय अमेरिकन प्रबंधशास्त्री प्रो. विलियम जी. औची को जाता है। इन्होनें अपनी 'Theory Z : How American Business can meet the Japanese Challenge' नामक पुस्तक, जो कि सन् 1981 में प्रकाशित हुई थी, में इस विचारधारा का वर्णन किया है। प्रो. औची ने अमेरिका एवं जापान की कई बड़ी–बड़ी कम्पनियों की प्रबंध व्यवस्था का अध्ययन करने के पश्चात यह पुस्तक लिखी एवं इस अध्ययन एवं शोध से प्राप्त निष्कर्षों को उन्होनें 'जेड' विचारधारा नाम से प्रस्तुत किया।

जेड विचारधारा जापानी एवं अमेरिकी प्रबंध की तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। इसमें जापानी तथा अमेरिकी कम्पनियों की अच्छाइयों को शामिल किया गया है। प्रो. औची ने मूलरूप से इस विचारधारा में जापानी प्रबंध की उन विशेषताओं को उजागर किया है, जिसकी वजह से यह अमेरिकी प्रबंध से श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रो. औची के अनुसार जापानी प्रबंध का मूल आधार विश्वास (Trust) मर्मज्ञता (Subtlety) तथा आत्मीयता (Intimacy) है। इनके अनुसार ये तीनों तत्त्व अभिप्रेरक घटक

1. आजीवन रोजगार योजना (Life time employment):–

प्रो. औची के मुताबिक कर्मचारियों को जीवन पर्यन्त रोजगार दिया जाना चाहिये। जापानी संस्थान में एक बार चयन के पश्चात मंदीकाल में भी कम्पनियां किसी कार्मिक की छंटनी या जबरन छुट्टी नहीं करती है। संस्थाएँ घाटा उठाकर भी अपने कार्मिकों को बनाये रखती है। इससे कर्मचारी संगठन के प्रति वफादार एवं निष्ठावान बनतें हैं।

2. मंदगति से मूल्यांकन एवं पदोन्नति (Slow evaluation & Promotion) :–

औची ने अपने निष्कर्षों में बताया कि जापानी प्रबंधक यह मानते है कि उत्पादकता किसी एक व्यक्ति की देन नहीं होकर सामूहिक प्रयासों का परिणाम होती है। अतः किसी भी व्यक्ति को व्यक्तिगत उपलब्धि के आधार पर पदोन्नत न करके इस आधार पर पदोन्नत किया जाना चाहिये कि वह कार्य समूह को किस प्रकार अभिप्रेरित करता है। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रो. औची के अनुसार लम्बवत पदोन्नति के स्थान पर समानान्तर पदोन्नति की जानी चाहिये। जापानी प्रबंधक सामान्यतया किसी व्यक्ति को रोजगार से हटाते नहीं है एवं उनकी मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति के गुण/अवगुण का मूल्यांकन करने के लिए 1–2 वर्ष की अवधि अत्यंत अल्प है। अतः वे दीर्घकाल करीब 10 वर्षो की सेवा के पश्चात् अपने कर्मचारियों का प्रथम कार्य मूल्यांकन करते है।

3. जीवन वृत्ति पथ (Career path) :–

जापान में प्रबंधकों की विशेषज्ञता पर अधिक बल नहीं दिया जाता है। यह विचारधारा मानती है कि कर्मचारियों की जीवन वृत्ति पथ का निर्धारण गैर विशिष्टिकृत (Non specialised) आधार पर होना चाहिये। जापान में यह प्रयास रहता है कि प्रबंधक समस्त विभागों के कार्यो को समझे। इस हेतु कार्य परिवर्तन की नीति होती है।

4. मानवीयता पर बल (Emphasis on humanity)

यह विचारधारा स्पष्ट करती है कि प्रबंधकों को कर्मचारियों पर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। उन्हें अपने कर्मचारियों का ध्यान केवल कार्यस्थल तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये। प्रबंधको को कर्मचारी के साथ–साथ उसके परिवार, उसकी रूचियों, महत्त्वकांक्षाओं आदि का ध्यान रखना चाहिये एवं कर्मचारी के साथ सदैव मानवीयता पूर्ण व्यवहार करना चाहिये।

5. सामूहिक निर्णयन (Collective desion making)

यह विचारधारा इस तथ्य पर जोर देती है कि संस्था के कर्मचारियों को निर्णयन में भागीदार बनाया जाना चाहिये। इसके लिए निर्णय लेते समय संस्था के कर्मचारियों से परामर्श किया जाना चाहिये, उनसे सलाह एवं सुझाव मांगे जाने चाहिये। जो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निर्णय कर्मचारियों से जुड़े हुये हो एवं प्रत्यक्ष रुप से उनको प्रभावित करते हो ऐसे निर्णयों के लिए सामूहिक निर्णयन प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिये।

6. मानव संसाधन विकास (Human resource development)

इस विचारधारा के अनुसार कर्मचारियों में कार्य के प्रति लगन एवं उत्साह पैदा करने के लिए मानव संसाधन विकास की योजना बनानी चाहिये। कर्मचारियों की छिपी हुई क्षमता को पहचानकर इन क्षमताओं के विकास हेतु उचित शिक्षण–प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये एवं कर्मचारियों को इस हेतु प्रेरित किया जाना चाहिये। कार्य संवर्द्धन तथा कार्य समृद्धि के द्वारा भी अधीनस्थों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

7. अनौपचारिक नियंत्रण (Informal control)

जेड विचारधारा में संस्था के कर्मचारियों के साथ अनौपचारिक संबंधों का निर्माण करके उन पर अनौपचारिक नियंत्रण के तरीको से नियंत्रण करने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु प्रबंधको को अपने अधीनस्थों में विश्वास तथा सहयोग की भावना पर बल देना चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जेड विचारधारा अभिप्रेरण के एक नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। इस विचारधारा का मूल तत्व पारस्परिक विश्वास, स्नेह एवं सहयोग है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. अभिप्रेरणा क्या है?
   What is Motivation?
2. मास्लो के आवश्यकता क्रम के नाम बताइये।
   Write the name of Maslow's need hierarchy.
3. मास्लो की शारीरिक आवश्यकता में मुख्यतः कौन–कौन सी आवश्यकता शामिल होती है?
   Narrate the main needs of Maslow's physiological needs?
4. अभिप्रेरणा की दो तकनीक के नाम बताइये।
   Write names of two techniques of motivation.
5. हजबर्ग के आरोग्य तत्वों को बताइये।
   State the 'Hygiene factors' of Herzberg.
6. अवित्तिय अभिप्रेरणा के कुछ रुप बताइये।
   Explain some forms of non financial motivation.
7. हजबर्ग के अभिप्रेरक तत्त्वों को लिखिये।
   Write the motivating factors of Herzberg.
8. अभिप्रेरण की जेड विचारधारा के प्रतिपादक कौन है।
   Who invented 'Z' theory of motivation.

लघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. अभिप्रेरणा की कोई चार विशेषताएँ लिखिये।
   Narrate any four charecteristics of motivation.
2. मास्लो की स्नेह अपनत्व की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
   Explain the Maslow's love or belongings need.
3. मेक्ग्रेगर की 'वाई' विचारधारा की प्रमुख मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।
   State the main assumptions of McGregor's Y' theory.
4. मेक्ग्रेगर की 'एक्स' विचारधारा की प्रमुख मान्यताओं का वर्णन कीजिए।
   Describe the main assumptions of Mc Gregors's 'X' theory.
5. वित्तीय अभिप्रेरणा का उल्लेख कीजिए।
   Explain the financial motivation.
6. आरोग्य एंव अभिप्रेरक घटकों के प्रमुख बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए।
   Narrate the main points of Hygiene & Motivating factors.

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते है, इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
   What do you mean by motivation? Explain its main characteristics.
2. अभिप्रेरणा को परिभाषित करते हुये इसके महत्व पर प्रकाश डालिये।
   Define the motivation and enlighten its importance.
3. अभिप्रेरण की विभिन्न विचारधाराओं को समझाइये।
   Explain the various theories of motivation.
4. मास्लो की अभिप्रेरणा विचारधारा को सविस्तार समझाइये।
   Explain in detail the Maslow's theory of motivation.
5. हजबर्ग की अभिप्रेरणा विचारधारा की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
   Discuss critically the Herzberg's theory of motivation.
6. विलियम औची की 'जेड' विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।
   Explain the theory 'Z' of William Ouchi.

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नेतृत्व
Leadership

प्रबंध जगत में नेतृत्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। एक संस्था की सफलता या असफलता हेतु काफी हद तक नेतृत्व जिम्मेदार होता है। कुशल नेतृत्व के अभाव में कोई भी संस्था सफलता के सोपानों को पार नहीं कर सकती है। प्रत्येक संस्था में समूह द्वारा की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं का श्रेष्ठ निष्पादन कुशल नेतृत्व से ही संभव है। यहाँ तक भी माना जाता है कि कोई भी संस्था तभी सफल हो सकती है जब उसका प्रबंधक अपनी नेतृत्व भूमिका का सही निर्वहन करता है। पीटर एफ. ट्रकर के शब्दों में, "प्रबंधक किसी व्यावसायिक उपक्रम का प्रमुख एवं दुर्लभ प्रसाधन है। अधिकांश व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के असफल होने का प्रमुख कारण अकुशल नेतृत्व ही है।"

अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definitions)

नेतृत्व को अलग–अलग दृष्टिकोणों से परिभाषित किया गया है। व्यवहारवादी प्रबंधशास्त्रियों ने इसे दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रक्रिया के रुप में परिभाषित किया है वहीं अन्य प्रबंधशास्त्रियों ने इसे उद्देश्य प्राप्ति के लिए दिशा निर्देशन देने के रुप में परिभाषित किया है। सामान्य शब्दों में नेतृत्व का आशय किसी व्यक्ति के उस गुण से है, जिसके माध्यम से वह अन्य व्यक्तियों का मार्गदर्शन करता है। नेतृत्व की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार है :–

1. चेस्टर आई बर्नाड (Chester I. Barnad)

"नेतृत्व से तात्पर्य किन्ही व्यक्तियों के व्यवहार के उस गुण से है जिसके द्वारा वे सामूहिक प्रयास में लोगों की क्रियाओं का मार्गदर्शन करते है।"

2. व्हिरिच एवं कून्ट्ज (Weihrich & Koontz)

"नेतृत्व व्यक्त्यों को प्रभावित करने की कला अथवा प्रक्रिया है, जिससे वे समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति में स्वेच्छा से एवं उत्साहपूर्वक प्रयास कर सके।"

3. जार्ज आर. टैरी (George R. Terry) :–

"नेतृत्व व्यक्तियों को पारस्परिक उद्देश्यों के लिये स्वैच्छिक प्रयत्न करने हेतु प्रभावित करने की योग्यता है।"

4. फ्रेंकलिन जी मूरे (Franklin G. Moore)

नेतृत्व व्यक्तियों को नेता की इच्छानुसार क्रिया करने के लिए तैयार करने की योग्यता है।

5. कीथ डेविस (Keith Davis) :–

नेतृत्व दूसरे व्यक्तियों को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को उत्साहपूर्वक प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने की योग्यता है। यह वह मानवीय तत्व है जो एक समूह को एक सूत्र में बांधे रखता है और इसे अपने लक्ष्य की ओर अभिप्रेरित करता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेतृत्व वह व्यक्तिगत गुण है, जिससे एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार प्रभावित करता है कि वह संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये स्वैच्छिक रूप से उत्साहपूर्वक तैयार हो जावे। यह दूसरों को प्रभावित करने तथा उनके साथ पूर्ण सहयोग व्यवहार करने का कार्य है तथा इसमें अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं का मार्गदर्शन किया जाता है।

नेतृत्व की विशेषताएँ
(Characteristics of Leadership)

नेतृत्व की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात नेतृत्व की कुछ प्रमुख विशेषताएँ अग्र प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है :–

1. व्यक्तिगत गुण (Personal ability or quality)

नेतृत्व नेता का व्यक्तिगत गुण है। यह नेता का भौतिक गुण नहीं है अपितु उसका व्यावहारिक गुण है। नेता अपने व्यवहार से अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करता है एंव उन्हें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है। बनार्ड ने भी लिखा है कि, "नेतृत्व किसी व्यक्ति के व्यवहार का वह गुण है जिसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों का मार्गदर्शन करता है।"

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. अनुयायी (Followers)

नेता की एक प्रमुख विशेषता होती है कि उसके अनुयायी होना। बिना अनुयायियों के नेता की कल्पना भी संभव नहीं है। अनुयायियों के बिना नेतृत्व नहीं किया जा सकता है। अधीनस्थों का अथवा अनुयायियों का समूह होने पर ही नेतृत्व किया जा सकता है, इनके अभाव में यह अपूर्ण ही रहता है।

3. प्रभावित करने की कला (Art of influencing)

नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों को इस प्रकार से प्रभावित करता है कि वे नेता की इच्छानुरूप स्वेच्छा से कार्य करने को तत्पर हो जाते हैं। नेता अपनी इच्छा अधीनस्थों पर थोपता नहीं है अपितु वह हमेशा कर्मचारियों को स्वेच्छा से संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपने व्यवहार या मार्गदर्शन से प्रभावित करता है।

4. हितों की एकता (Community of interests)

नेतृत्व एवं उसके अनुयायियों के हित एक समान होने चाहिये। किसी संगठन में यदि नेता एवं उसके अनुयायियों के हित अलग–अलग है तो वहाँ नेतृत्व का कोई भी प्रभाव नहीं रहेगा। जार्ज आर. टैरी ने ठीक ही लिखा है कि, " नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु व्यक्तियों को स्वैच्छिक प्रयास करने की प्रेरणा देता है।"

5. नेतृत्व क्षमता विकसित एवं प्राप्त की जा सकती है (Leadership ability can be developed & achieved)

परम्परागत अवधारणा यह रही है कि नेता पैदा होते है, बनाये नहीं जाते, किन्तु आधुनिक परिवेश में यह धारणा बदल गई है। अब नेतृत्व का शिक्षण–प्रशिक्षण के द्वारा व्यवस्थित विकास किया जा सकता है। इस क्षमता की प्राप्ति के लिए नेतृत्व कार्य वातावरण, अधिकार, पहलपन, आत्मविश्वास आदि तत्वों को काम में ले सकता है। प्रो. रॉस एवं हैन्ड्री (Ross & Hendry) का मत है, "नेतृत्व क्षमता जन्म लेती है, विकसित होती है तथा इसे प्राप्त किया जा सकता है।"

6. परस्पर संबंधों पर आधारित (Based on interpersonal relations)

नेतृत्व परस्पर तथा आपसी संबंधों पर निर्भर है। ये आपसी संबंध अनुयायियों तथा नेता के मध्य, नेता एवं नेता के मध्य, अनुयायियों एवं अनुयायियों के मध्य अथवा अनुयायियों के एक विशेष समूह एवं नेता के मध्य आदि में पाये जा सकते हैं।

7. अनुकरणीय आचरण (Exemplary conduct)

नेता के अनुयायी सर्वाधिक उसके आचरण से प्रभावित होते है। अतः नेता का आचरण इस प्रकार का होना चाहिये जो उसके अनुयायियों के समक्ष एक आदर्श हो। नेता की कथनी एवं करनी समान होनी चाहिये। उसे अपना आचरण सदैव एक आदर्श आचरण के रुप में प्रस्तुत करना चाहिये, जिससे अधीनस्थ उसका अनुसरण कर सके। एल.एफ. उर्विक के अनुसार, "अनुयायियों को केवल यह प्रभावित नहीं करता है कि उसका नेता क्या करता है, वह क्या लिखता हे, बल्कि वह क्या है, वह कौन से कार्य करता है, वह किस प्रकार का व्यवहार करता है, आदि तथ्य प्रभावित करते हैं।"

8. गतिशील प्रक्रिया (Dynamic process)

नेतृत्व एक गतिशील एवं सतत् प्रक्रिया है। नेतृत्व का कार्य संगठन की स्थापना से लेकर उसकी विद्यमानता तक सदैव चलता ही रहता है। नेतृत्व की सभी शैलियों एंव तकनीकों को समान रुप से लागू नहीं किया जा सकता है, इसे समय–परिस्थिति के अनुरूप लागू किया जाता है।

9. औपचारिक एवं अनौपचारिक (Formal & Informal)

नेतृत्व औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रुपों में पाया जाता है। संस्था के प्रबंधक की स्थिति औपचारिक होते हुये भी कभी–कभी उसे अनौपचारिक रुप से नेतृत्व प्रदान करना होता है।

10. सभी प्रबंधक नेता नहीं होते है (All managers are not leaders)

नेतृत्व की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सभी प्रबंधक नेता नहीं होते है। प्रबंधक के पास अन्य व्यक्तियों से कार्य करवाने हेतु अधिकार प्राप्त होते है लेकिन नेतृत्व व्यक्तियों को स्वेच्छा से कार्य करने के लिए तत्पर करता है। अन्य शब्दों में कहें तो नेतृत्व एवं प्रबंध में अन्तर होता है।

नेतृत्व के गुण (Characteristics of leadership)

किसी व्यावसायिक संगठन की सफलता या असफलता नेतृत्व के गुणों पर निर्भर करती है। अतः सफलता की प्राप्ति हेतु नेतृत्व में अनेक विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है। विभिन्न विद्वानों ने नेतृत्व के अनेक गुणों का वर्णन किया है। कुछ प्रमुख विद्वानों के अनुसार नेता में निम्न गुण होने चाहिये :–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. हेनरी फेयोल (Henri Fayol) के अनुसार नेता में निम्न गुण होने चाहिये :–
   1. स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्षमता
   2. योग्यता एवं मानसिक संतुलन
   3. नैतिक गुण
   4. ज्ञान एवं
   5. प्रबंधकीय योग्यता
2. ओर्डवे टीड(Ordway Tead) के मतानुसार एक नेता में निम्न गुण होने चाहिये :–
   1. उद्देश्य एवं दिशा की चेतनता
   2. शारीरिक व स्नायुशक्ति
   3. मैत्रीभाव व स्नेह
   4. उत्साह
   5. शिक्षण क्षमता
   6. निर्णयन क्षमता
   7. बौद्धिक चार्तुय
   8. चरित्रवान
   9. विश्वसनीयता
   10. परिपक्वता
   11. तकनीकी क्षमता
3. चेस्टर आई. बर्नाड के अनुसार नेता में निम्न गुण होने चाहिये
   1. निर्णयन क्षमता
   2. उत्तरदायित्व
   3. विनम्रता
   4. बौद्धिक क्षमता
   5. स्फूर्ति एंव सहनशीलता
   6. सामाजिक चेतना
   7. सुन्दर व्यक्तित्व
4. स्टोगडिल (Stogdill) के अनुसार नेता में निम्न गुण होना चाहिये :–
   1. शारीरिक एवं सरंचनात्मक गुण
   2. बौद्धिक क्षमता
   3. आत्मविश्वास
   4. इच्छाशक्ति
   5. पहलपन
   6. प्रभुत्व क्षमता
   7. उमंग व उत्साह
   8. मौलिकता एवं सतर्कता
   9. सामाजिकता
5. सी.एल.उर्विक (C.L. Urwick) ने एक नेता में निम्न गुणों का वर्णन किया है :–
   1. साहस
   2. इच्छाशक्ति
   3. मस्तिष्क की लोचशीलता
   4. ज्ञान एवां के निम्न गुणों का वर्णन किया है :–
   5. चारित्रिक बल
6. जार्ज आर. टैरी (George R. Terry) ने नेता में निम्न गुणों की आवश्यकता बताई है :–
   1. शक्ति
   2. भावनात्मक स्थिरता
   3. मानवीय संबंधों का ज्ञान
   4. व्यक्तिगत अभिप्रेरणा
   5. सम्प्रेषण योग्यता
   6. शिक्षण योग्यता
   7. सामाजिक योग्यता
   8. तकनीकी क्षमता

इन विभिन्न विद्वानों के विचारों को दृष्टिगत रखते हुए हम यह कह सकते है कि एक नेता में निम्न गुणों का होना आवश्यक है :–

1. उत्तम स्वास्थ्य (Sound health)

एक नेता का स्वास्थ्य उत्तम व शरीर सुगठित होना चाहिये । कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। वह शारीरिक रुप से अपने कार्यो के निष्पादन हेतु सक्षम तथा स्फूर्तिवान होना चाहिये। यदि नेता का स्वास्थ्य उत्तम नहीं होगा तो वह अपने कार्यों को पूर्ण करने में कठिनाई अनुभव करेगा।

2. कुशाग्र बुद्धि (Sharp intelligent)

नेता की सफलता के लिये उसका बुद्धिमान होना नितान्त आवश्यक है। नेता कुशाग्र बुद्धिवाला होने पर ही विषम परिस्थितियों में भी धैर्य व गंभीरता से समस्याओं का समाधान कर पाता है। अनेक अध्ययनों से यह निष्कर्ष आया है कि नेता ही अनुयायियों की तुलना में अधिक बुद्धिमान होता है।

3. आत्म विश्वास एवं इच्छा शक्ति (Self confidence & willpower)

एक कुशल नेता में आत्म विश्वास एवं इच्छा शक्ति होनी चाहिये। एक नेता जिसमें आत्मविश्वास होता है वह दूसरों को विश्वास जीतने में भी सफल होता है। एल.एफ. उर्विक ने ठीक ही लिखा है कि, "अनुयायियों का पूर्ण विश्वास प्राप्त करने के लिए नेता में आत्म विश्वास होना चाहिये।" किसी ने सही ही लिखा है कि सफलता की पहली सीढ़ी आत्मविश्वास होता है। इच्छा शक्ति के अभाव में कोई भी नेता अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता है। सुदृढ़ इच्छाशक्ति के कारण कठिन व दुर्गम कार्यों को भी आसान बनाया जा सकता है।

4. स्फूर्ति एवं सहिष्णुता (Vitality & Tolerance)

एक कुशल नेता में आत्म विश्वास एवं इच्छा शक्ति होनी चाहिये। एक नेता जिसमें आत्मविश्वास होता है वह दूसरों को विश्वास जीतने में भी सफल होता है। एल.एफ.

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उर्विक ने ठीक ही लिखा है कि, "अनुयायियों का पूर्ण विश्वास प्राप्त करने के लिए नेता में आत्म विश्वास होना चाहिये।" किसी ने सही ही लिखा है कि सफलता की पहली सीढ़ी आत्मविश्वास होता है। इच्छा शक्ति के अभाव में कोई भी नेता अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता है। सुदृढ़ इच्छाशक्ति के कारण कठिन व दुर्गम कार्यों को भी आसान बनाया जा सकता है। तथा सहिष्णुता का तात्पर्य विषम परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक काम करने एवं निर्णय लेने से है। एक नेता को सदैव सजग रहना चाहिये एवं आपत्तियों तथा कठिनाइयों में भी अपना धैर्य बनाये रखना चाहिये तभी वह अपने अनुयायियों का उचित मार्गदर्शन कर सकता है।

5. चरित्रवान (Sound character)

एक नेता का चरित्र सदैव प्रेरणादायी होना चाहिये। यदि नेता का चरित्र दुर्बल होगा तो उसके द्वारा अनुयायियों को प्रभावित करना असंभव होगा। कहा भी जाता है कि यदि चरित्र खो दिया तो सब कुछ खो दिया। अतः नेता को हमेशा उच्च चरित्र वाला होना चाहिये।

6. निर्णयन क्षमता (Capacity to take decision)

एक प्रभावकारी नेतृत्व के लिए नेता में असाधारण निर्णयन क्षमता होनी चाहिये। एक नेता को किसी समस्या के समाधान के लिए वर्तमान व भावी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये उपलब्ध विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना होता है। यह चयन नेता अपनी दूरदर्शिता एवं निर्णय लेने की योग्यता के आधार पर ही करता है। नेता में परिस्थितियों को समझने तथा उसके अनुरूप यथासमय निर्णय लेने की क्षमता के अभाव में उपक्रम के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

7. शिक्षण व तकनीकी योग्यता (Teaching & technical ability)

एक नेता में अपने अनुयायियों के कार्यो का अवलोकन करने, उनकी त्रुटियों का पता लगाने एवं इनमें आवश्यक सुधार करने की योग्यता होनी चाहिये। नेता में अपने अनुयायियों की जिज्ञासा को शांत करने एवं अच्छा मार्गदर्शन करने की क्षमता होनी चाहिये। नेता को अपने कार्य से संबंधित कार्य–विधियों, तकनीकी ज्ञान, नियम एवं कानून आदि की जानकारी भी होनी चाहिये अन्यथा वह तकनीकीरुप से अपने अनुयायियों का सही मार्गदर्शन नहीं कर पायेगा।

8. अभिप्रेरण योग्यता (Motivating Ability)

एक नेता में अपने अनुयायियों को निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप कार्य करने हेतु प्रेरित करने की योग्यता होनी चाहिये। उसे अपने अनुयायियों की रुचियों, विचारों, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि को समझने एंव उन्हें संतुष्ट करने की योग्यता होनी चाहिये जिससे वह अपने अनुयायियों को प्रेरित कर सके।

9. दूरदर्शिता (Foresightedness)

एक अच्छा नेता दूरदर्शी होना चाहिये। उसे भविष्य का पूर्वानुमान लगाकर उसके अनुसार योजना एवं उसका क्रियान्वयन करना चाहिये। वर्तमान समय में परिवर्तन इतने तीव्रगामी है कि जो नेता इन परिवर्तनों का अनुमान लगाकर कार्य करता है वह सफलता को आसानी से प्राप्त कर लेता है।

10. मानवीय दृष्टिकोण एवं मानवीय संबंधों के निर्माण की क्षमता (Human approach and capacity to build human relation) –

एक सफल नेता द्वारा अपने अनुयायियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिये। नेता का प्रमुख कार्य अपने अनुयायियों का मार्गदर्शन कर उनसे इच्छित कार्य लेना है। अतः उसे अपने अनुयायियों की रूचियॉ, भावनाएँ, क्षमता, कमियाँ आदि का पूरा ज्ञान होना चाहिये। यही नहीं, उसे यह भली भांति ज्ञात होना चाहिये कि उसके अनुयायियों की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक आवश्यकताओं को कैसे पूरा किया जा सकता है। उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर ही एक नेता श्रेष्ठ मानवीय संबंधों की स्थापना कर पाता है।

11. उत्तरदायित्व की भावना (Sense of responsibility)

एक नेता में उत्तरदायित्व को स्वीकार करने एवं उनकी पूर्ति करने की भावना होनी चाहिए। जो नेता उत्तरदायित्वों से दूर रहना चाहता है, वह कभी एक कुशल नेता नहीं बन सकता है। नेता अपनी स्थिति के कारण अधिकार सम्पन्न होता है किन्तु अधिकारों के साथ ही उत्तरदायित्व भी बढ़ते जाते हैं।

12. समूह भावना (Team spirit)

एक नेता का व्यक्तिगत हितों की बजाय सामूहिक हितों को प्राथमिकता देनी चाहिये। उसे सदैव इस बात पर बल देना चाहिये कि संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति में ही व्यक्तिगत हित निहित हो। यदि नेता अपने हितों के लिए समूह के हितों को त्याग देता है तो वह कभी अच्छा नेता नही बन सकता है।

13. मिलनसारिता एवं व्यवहार कुशलता (Sociable and tactful)

एक नेता मिलनसार एवं व्यवहार कुशल होना चाहिये। उसमें व्यक्तियों के साथ मिलजुल कर रहने एवं प्रेमपूर्वक व्यवहार करने की भावना होनी चाहिये। उसे अपने अनुयायियों का सहयोग जहॉ तक संभव हो उनका मन प्रसन्न करके ही लेना चाहिये। इसके लिए नेता को अपनी जीवन शैली एवं आचरण व्यवहार में परिवर्तन करना होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व का अर्थ बताइये।
2. किसी एक प्रबंधशास्त्री द्वारा दी गई नेतृत्व की परिभाषा लिखिये।
3. नेतृत्व की कोई दो विशेषताए बताइये।
4. नेता के कोई दो गुण बताइये।
5. नेता में उत्तम स्वास्थ्य गुण की आवश्यकता बताइये

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. नेतृत्व का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. नेतृत्व की विशेषताए बताइये।
3. हेनरी फेयोल के द्वारा नेता में होने वाले गुणों की विवेचना कीजिये।
4. नेतृत्व के किन्ही पाँच गुणों की विवेचना कीजिये।
5. जार्ज आर. टैरी के अनुसार नेता में किन गुणों को होना आवश्यक है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रबंध में नेतृत्व से आप क्या समझते है ? इसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
2. प्रबंध में एक कुशल नेता के गुणों की विवेचना कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विपणन
Marketing

आम भाषा में 'विपणन' शब्द का आशय उन व्यवसायिक क्रियाओं से लगाया जाता है जो वस्तुओं एवं सेवाओं में उपयोगिता उत्पन्न कर उन्हें उत्पादन केन्द्र (उत्पादक) से उपभोक्ता केन्द्र (उपभोक्ता) तक पहुँचाने में सहायक होती है। वास्तव में विपणन के अन्तर्गत उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार वस्तुऐं बनाकर अथवा सेवायें प्रदान कर विनिमय द्वारा उन्हें उपयोग के लिये समर्पित किया जाता है। विपणन से आशय ऐसे व्यापक विचार एवं क्रिया क्षेत्र से है जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से पूर्व की जाने वाली, क्रियाओं से लेकर उनके वितरण और आवश्यक विक्रयोपरान्त सेवाओं तक को सम्मिलित किया जाता है। इसका उद्देश्य उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हुये लाभ कमाना व उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाना है।

विपणन प्रबन्ध सम्पूर्ण प्रबन्ध का ही एक भाग है। विपणन प्रबन्ध से अभिप्राय उन क्रियाओं के नियोजन, संगठन, निदेशन एवं नियन्त्रण से है जो उत्पादक एवं उपभोक्ता अथवा उत्पाद एवं सेवा के उपयोगकर्ता के बीच वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय को सरल बनाते है। विपणन प्रबन्ध बाजार, में विपणन से इच्छित परिणाम प्राप्त करने पर केन्द्रित रहता है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नानुसार है– फिलिपकोटलर के अनुसार, ''विपणन प्रबन्ध उन कार्यक्रमों का विश्लेषण, नियोजन, क्रियान्वयन तथा नियन्त्रण करना है जो संगठन के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पारस्परिक हितकारी विनिमय एवं सम्बन्धों का सृजन करने, निर्माण करने तथा उन्हें बनाये रखने के लिये बनाये गये हैं।''

स्टिफ एवं कण्डिफ के अनुसार '' विपणन प्रबन्ध सम्पूर्ण प्रबन्ध का वह कार्यकारी क्षेत्र है, जो उपक्रम के विपणन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं के संचालन से सम्बन्धित है।

प्रो. जॉनसन के अनुसार '' विपणन प्रबन्ध व्यवसायिक क्रिया का वह क्षेत्र है जिसमें सम्पूर्ण विक्रय अभियान के सभी चरणों के सम्बन्ध में योजनाओं का निर्माण एंव क्रियान्वयन सम्मिलित है।

विलियम जे. स्टेन्टन के अनुसार 'विपणन विचार का क्रियात्मक रूप ही विपणन प्रबन्ध होता है।''

इन सभी परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विपणन प्रबन्ध समग्र प्रबन्ध की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत ग्राहकों की आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनकी सन्तुष्टि के लिये प्रभावी विपणन कार्यक्रमों का विश्लेषण, नियोजन, क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण किया जाता है। विपणन प्रबन्ध विपणन विचारों, क्रियाओं तथा प्रयासों का वास्तविक रूप में क्रियान्वयन है।

विपणन की प्रबन्ध के कार्य के रूप में अनेक क्रियायें निम्नानुसार है–

1. बाजार विश्लेषण के कार्य –

एक विपणन कर्त्ता के महत्वपूर्ण कार्यो में से एक कार्य बाजार सम्बन्धी सूचना एकत्रित करना तथा उसका विश्लेषण करना है। विपणन कार्यों का प्रारम्भ बाजार विश्लेषण के साथ ही होता है। इसके द्वारा विपणन प्रबन्धक अपने ग्राहकों की आवश्यकता, इच्छा, रुचि आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बाजार में वस्तु की माँग एवं पूर्ति का अनुमान भी बाजार विश्लेषण के द्वारा ही संभव है। इसी के द्वारा प्रबन्धक यह भी ज्ञात कर सकता है कि उसके भावी ग्राहक कौन–कौन हो सकते है। इसके अतिरिक्त बाजार की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति का अध्ययन करने, बाजार वातावरण का अध्ययन करने, बाजार वातावरण का अध्ययन करने, ग्राहकों की क्रय शक्ति, आय, क्रय उद्देश्य की जानकारी प्राप्त करने के लिये भी बाजार विश्लेषण करना परमावश्यक हे। इसके माध्यम से प्रबन्धक बाजार की विद्यमान स्थिति, ग्राहकों की स्थिति का पूर्ण अध्ययन कर लेते हैं।

2. विपणन नियोजन –

संगठन के विपणन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये विपणन प्रबन्धक का एक और महत्वपूर्ण कार्य उचित विपणन योजना का विकास करना है। इसके लिये विपणन के लिये निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप एक पूरी विपणन योजना तैयार करनी होगी जिसमें उत्पादन के स्तर में वृद्धि, वस्तुओं का प्रवर्तन, आदि जैसे महत्वूपर्ण पक्ष सम्मिलित किये जायेंगे तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये क्रियान्वयन कार्यक्रम का निर्धारण भी होगा।

3. विपणन संचार कार्य –

संचार कार्य विपणन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक विपणन प्रबन्धक को अपनी संस्था में कुशल विपणन संचार व्यवस्था करनी होती है। विपणन संचार के लिये विज्ञापन, विक्रय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संवर्द्धन, विपणन अनुसन्धान, विक्रयकला, प्रचार, सुझाव आदि महत्वूपर्ण साधन है। विक्रय कला, प्रचार विज्ञान आदि से संस्था अपने विद्यमान एवं भावी ग्राहकों को आवश्यक सन्देश पहुँचाती है जबकि विपणन अनुसन्धान द्वारा ग्राहक वस्तुओं के बारे में अपने सुझाव तथा शिकायतें संस्था तक पहुँचाते है। अतः एक विपणन प्रबन्धक द्विमार्गीय संचार की व्यवस्था करता है।

4. उत्पाद का रूपांकन एवं विकास –

विपणन प्रबन्धक का एक और महत्वपूर्ण कार्य है उत्पाद का रूपांकन एंव विकास। उत्पाद का रूपांकन लक्षित उपभोक्ताओं के लिये उत्पाद को और अधिक आकर्षित बनाने में सहायक होता है। एक अच्छा स्वरूप उत्पाद की उपयोगिता को बढा सकता है तथा बाजार में इसे और अधिक प्रतियोगी बना सकता है

5. बाजार वर्गीकरण –

कोई भी संस्था अपनी किसी वस्तु से सभी ग्राहकों को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। अतः प्रत्येक संस्था को सम्पूर्ण बाजार में से कुछ विशेष प्रकार के ग्राहकों का ही चुनाव करना चाहिये तथा उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयास भी करना चाहिये। उनकी समान प्रकार की विशेषताओं, आवश्यकताओं, इच्छाओं, रूचियों के अनुसार समूहों का उप बाजारों के अनुसार वर्गीकरण करना ही बाजार वर्गीकरण है।

प्रत्येक संस्था बाजार वर्गीकरण करके किसी एक या अधिक बाजारों का चुनाव कर सकती है व उन्हीं बाजारों की आवश्यकता के अनुरूप अपना विपणन कार्यक्रम निर्धारित कर सकती है।

6. प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन –

प्रमापीकरण का अर्थ है पूर्व निर्धारित विशिष्टताओं के अनुरूप वस्तुओं का उत्पादन करना जिससे उत्पाद में एकरूपता तथा अनुकूलता आती है। प्रमापीकरण क्रेताओं को यह सुनिश्चित करता है कि वस्तुएँ पूर्व निर्धारित गुणवत्ता, मूल्य एवं पैकेजिंग के अनुसार है। श्रेणीयन के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं को उनकी किस्म तथा उनके गुणों के अनुसार विभिन्न वर्गो में बांट दिया जाता है। दोनों कार्यों को करने से वस्तु को पहचानने तथा उसका मूल्य निर्धारण में सुविधा होती है।

7. पैकेजिंग एवं लेबलिंग –

जब कोई विपणन विभाग अपनी संस्था द्वारा निर्मित/संयोजित वस्तुओं का विक्रय करता है तो उस विभाग को उन वस्तुओं का नामकरण एवं पेकेजिंग भी करनी पड़ती है। पैकेजिंग का अर्थ है उत्पाद के पैकेज का रूपांकन करना। लेबलिंग में पैकेज पर जो लेबल लगाये जाते हैं उनका रूपांकन किया जाता है।

पैकेजिंग के द्वारा वस्तुओं के रूप रंग एवं किस्म की सुरक्षा प्रदान की जाती है। इसके द्वारा वस्तु को आकर्षक स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है ताकि लोग उसको खरीदने के लिये प्रेरित हो सके। कभी–कभी क्रेता पैकेजिंग से ही उत्पाद की गुणवत्ता का आंकलन करते है। आज के समय में लेस अथवा अंकल चिप्स आल्ट के वैफर्स, विभिन्न प्रकार के शैम्पू व टुथपेस्ट आदि उपभोक्ता ब्रांड की सफलता में पैकेजिंग की महत्वपूर्ण भूमिका है।

8. ब्रान्डिंग –

किसी उत्पाद की सफलता में सही ब्रांड नाम का चयन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विपणन के लिए एक महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया जाता है कि क्या उत्पाद को इसका वर्ग विशेष के नाम (उत्पाद किस वर्ग का है जैसे पंखे पेन आदि) से बेचा जाये अथवा इनकी बिक्री ब्रांड के नाम (जैसे पोलर पंखे अथवा रोटोमेक पेन) से की जाए। ब्रांड का नाम उत्पाद को अन्य उत्पादों से भिन्न बनाता है। जिससे उत्पाद के लिये उपभोक्ता का लगाव पैदा होता है तथा इससे विक्रय संवर्द्धन में सहायता मिलती है।

9. ग्राहक समर्थन सेवाएँ –

ग्राहक समर्थन सेवायें ग्राहकों द्वारा बार–बार क्रय करने एवं उत्पाद के ब्रांड के प्रति स्वामी भक्ति विकसित करने में अत्यधिक प्रभावी सिद्ध होती है। विपणन प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य ग्राहक समर्थक सेवाओं का विकास करना है जैसे बिक्री के बाद की सेवा, ग्राहकों की शिकायत दूर करना एवं समायोजनों को देखना, साख सेवाएँ, रख–रखाव सेवायें, तकनीकी सेवायें प्रदान करना एवं उपभोक्ता सूचनाएं देना। ये सभी उपभोक्ताओं को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करती है जो आज के समय में विपणन की सफलता की कुंजी है।

10. उत्पाद का मूल्य निर्धारण –

किसी वस्तु की मांग का उसके मूल्य से सीधा सम्बन्ध है। सामान्यतः यदि मूल्य कम है तो उत्पाद की मांग अधिक होगी इसके विपरीत मूल्य के अधिक होने पर मांग कम हो जाती है। उत्पाद का मूल्य वह राशि है जिसका भुगतान उत्पाद को प्राप्त करने के लिये ग्राहक को करना होता है। मूल्य एक महत्वपूर्ण तत्व है जो बाजार में किसी उत्पाद की सफलता अथवा असफलता को प्रभावित करता है। विपणनकर्ताओं को मूल्य निर्धारक तत्त्वों का ठीक से विश्लेषण करना होता हैं।

11. विक्रय –

इस कार्य के अन्तर्गत विपणन विभाग माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है या करने का अनुबन्ध करता है। इस हेतु माल का मूल्य तथा विक्रय शर्तों को निर्धारित करना, मूल्य सूचियों का प्रकाशन करना, विक्रयकर्ताओं को नियुक्त करना आदि इसी विभाग के कार्य है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

12. परिवहन –

परिवहन का अर्थ है माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाना। विभिन्न उत्पादकों से माल एकत्र करने तथा अनेक ग्राहकों को यथासमय माल उपलब्ध कराने के लिये परिवहन की व्यवस्था करनी पड़ती है। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है जो वस्तुओं को स्थान उपयोगिता प्रदान करता है। विपणन विभाग जल, थल, नभ मार्गो से परिवहन की व्यवस्था कर इस कार्य को सम्पन्न करता है। माल के परिवहन के लिये बीमा करवाने का कार्य भी यही विभाग करता है।

13. संग्रहण –

सामान्यतः वस्तु का उत्पादन तथा उनकी बिक्री अथवा उपयोग के बीच समय का अन्तर होता है। विनिमय कार्य को पूरा करने के लिये विपणन विभाग को माल का संग्रहण भी करना पडता है। विपणन विभाग माल को उस समय संग्रह कर लेता है जबकि माल की पूर्ति उसकी मांग की तुलना में अधिक होती है। कुछ वस्तुऐं एक विशेष मौसम में ही पैदा होती है जैसे – आलू, सेब, गेहूँ आदि। इनका भी संग्रहण करना पडता है ताकि मौसम समाप्त होने के बाद भी इनकी आपूर्ति बनायी रखी जा सके। संग्रहण कार्य से माल की मांग एवं पूर्ति में सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है।

14. वित्त व्यवस्था –

वित्त की आवश्यकता माल खरीदने उसका संग्रहण करने तथा विपणन विभाग के खर्चों को पूरा करने के लिये करनी पडती है अतः विपणन विभाग वित्त की व्यवस्था भी करता है। यह विभाग संस्था के उच्च प्रबन्धकों को अपनी आवश्यकता से अवगत करवाकर उनसे वित्त प्राप्त करता है। कभी कभी यह विभाग स्वयं भी बैंको तथा वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर लेता है।

15. जोखिम उठाना –

विपणन कार्य में जोखिमें भी होती है। माल के नष्ट होने माल की मांग में परिवर्तन होने, उधार की वसूली न होने, आग लगने, बाढ आने आदि के कारण विपणन विभाग को जोखिम उठानी पडती है। कुछ जोखिमों का तो बीमा करवाया जा सकता है किन्तु सभी जोखिमों का बीमा करवाया जाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में स्वयं को ही जोखिम का भार उठाना पडता है अतः विपणन विभाग जोखिम उठाने तथा उसे कम करने का कार्य भी करता है।

विपणन प्रबन्ध का महत्व

आज एक तरफ माल की पूर्ति आवश्यकता से अधिक है दूसरी और उपभोक्ता व्यवहार एवं आवयश्कता क्रम में अन्तर होता जा रहा है, ग्राहको की रूचि एवं आवश्यकताएँ निरन्तर बदल रही है अतः आधुनिक समय में प्रभावकारी विपणन का महत्व बहुत अधिक बढ गया है। इसके द्वारा सीमित साधनों को आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये उपयोग किया जा सकता है और देश के तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

विपणन कार्य समाप्त होने से विपणन प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती है। यह तो निरन्तर रूप से चलने वाली प्रक्रिया है। इसके द्वारा विपणन कार्य की प्रभावशिलता को बढ़ाने के लिये पुनः विपणन, संचार वस्तु विविधीकरण बाजार विश्लेषण आदि के कार्य निरन्तर रूप से किये जाते हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विपणन प्रबन्ध के महत्व को निम्न प्रकार से वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है –

1. व्यवसायियों / उपक्रम के लिये महत्व
2. ग्राहको के लिये महत्व
3. समाज के लिये महत्व
4. राष्ट्र के लिये महत्व

1. व्यवसायियों / उपक्रम के लिये महत्व –

प्रभावकारी विपणन व्यवस्था के बिना कोई भी संख्या आधुनिक समय में विकसित नहीं हो सकती। आधुनिक भीषण प्रतिस्पर्द्धा के युग में व्यवसाय का अस्तित्व, विकास एवं सफलता कुशल विपणन व्यवस्था पर निर्भर करता है। फर्म में विपणन के महत्व को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

(1) प्रतिस्पर्द्धा में अस्तित्व बनाये रखने के लिये –

आधुनिक प्रतिस्पद्धत्यिक वातावरण में विपणन कार्यों के द्वारा ही संस्था अपने अस्तित्व को बनाये रख सकती है। कोई भी संस्था प्रभावकारी विपणन व्यूह रचना निर्धारित करके व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धा का आसानी में मुकाबला कर सकती है।

(2) नियोजन का आधार –

विपणन प्रबन्ध बाजार एवं उपभोक्ता से जुडी हुई प्रणाली है। परिणाम स्वरूप इससे ग्राहकों की आवश्यकताओं इच्छाओं, रूचियों आदि का समुचित ज्ञात हो जाता है। इसी कारण प्रत्येक संस्था उन वस्तुओं के उत्पादन पर ध्यान दे सकती है। जिन्हें ग्राहक पसन्द करते हैं। विभिन्न विपणन सूचनाओं बाजार मार्ग, प्रतिस्पर्द्धा, फैशन, ग्राहक रूचि, क्रय शक्ति आदि के आधार पर ही कम्पनी योजनाओं को तैयार करती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(3) अधिक विक्रय –

विपणन प्रबन्ध के द्वारा बाजार एंव उपभोक्ता का विश्लेषण किया जा सकता है। इससे ग्राहकों की बदलती हुई रूचियों, आवश्यकताओं व फैशन का ज्ञान प्रबन्धकों को हो जाता है व उन्हीं के अनुरूप वस्तुओं का निर्माण किया जाता है अतः माल का विक्रय आसानी से हो जाता है।

(4) अधिक उत्पादन –

अधिक विक्रय होने के फलस्वरूप अधिक उत्पादन करने की आवश्यकता पडती है। जिससे कोई भी संस्था पहले की अपेक्षा अधिक उत्पादन कर पाती है व दीर्घकालीन उत्पादन के लक्ष्यों को प्राप्त कर लेती है।

(5) न्यूनतम लागत पर वितरण –

प्रभावकारी विपणन के कारण जब दीर्घकालीन उत्पादन होने लगता है तो इससे अन्ततोगत्वा प्रति इकाई लागत में कमी आती है।

(6) लाभों में वृद्धि –

प्रभावशील विपणन व्यवस्था लाभों को बढाने में सहयोग प्रदान करती है। माल की मांग बढने पर क्रय लागत पर अधिक उत्पादन करके मांग की पूर्ति की जाती है तो लाभों में अवश्य ही वृद्धि होती है।

(7) मध्यस्थों की प्राप्ति में सहायक –

प्रभावशाली विपणन व्यवस्था के माध्यम से मध्यस्थों – एजेन्ट, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी आदि को प्राप्त करना सरल होता है क्योंकि मध्यस्थ उसी उत्पादक का माल बेचते है जिनकी विपणन व्यवस्था ग्राहक प्रधान होती है।

(8) ख्याति का निर्माण –

जब ग्राहक को उनकी आवश्यकता के अनुसार न्यूनतम लागत पर अच्छी वस्तुयें प्राप्त हो जाती है तो उनको सन्तुष्टि मिलती है। इससे बाजार में सन्तुष्ट ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है जसके परिणाम स्वरूप संस्था की ख्याति बढती है। विज्ञापन व विक्रय संवर्द्धन योजनाएँ भी संस्था की ख्याति में वृद्धि करती है।

(9) विकास एवं विस्तार –

विपणन प्रबन्ध उत्पाद विविधिकरण एवं नव प्रवर्तन कार्यों में सहायक होता है। संस्था अपने विद्यमान ढांचे के अन्तर्गत नई वस्तुओं को जोड सकती है तथा वर्तमान उत्पादन क्षमता का विस्तार कर सकती है। इस प्रकार संस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो जाने से विकास की संभावनायें बढ जाती है।

(10) सामाजिक दायित्वों की पूर्ति –

प्रभावकारी विपणन व्यवस्था में ग्राहकों की सन्तुष्टि को आधार मानकर समस्त क्रियायें उनकी सन्तुष्टि के लिये की जाती है अतः आधुनिक विपणन उपभोक्ता, केन्द्रित होने के कारण सामाजिक उद्देश्यों एवं दायित्वों की पूर्ति में भी सहायक होता हैं।

(11) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सफलता –

प्रभावकारी विपणन के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सफलता प्राप्त की जा सकती है। विदेशी ग्राहकों की इच्छा, आवश्यकता, रीति–रिवाज, प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति आदि के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्रित करके उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुओं को रंग, रूप, आकार देकर उचित किस्म की वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

2. ग्राहकों के लिये महत्व –

प्रभावकारी विपणन व्यवस्था से ग्राहकों को भी लाभ होता है। यह ग्राहकों के हितों की रक्षा करती है। ग्राहक निम्न प्रकार से लाभान्वित होते हैं।

(i) सस्ती एवं श्रेष्ठ वस्तुओं की उपलब्धि –

सुदृढ़ विपणन योजनाओं के फलस्वरूप उत्पादन लागत एवं विपणन लागतों में कमी हो जाती है। प्रतिस्पर्द्धात्मक परिस्थितियों व्यवसायियों को प्रतिस्पर्द्धा मूल्यों पर माल उपलब्ध कराने के लिये मजबूर कर रही है। इस प्रकार ग्राहकों को सस्ती व श्रेष्ठ वस्तुयें उपलब्ध कराना संभव हो जाता है।

(ii) आवश्यकताओं की पूर्ति –

प्रभावशाली विपणन व्यवस्था में ग्राहकों की आवश्यकताओं रुचियों, इच्छाओं आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विपणन अनुसन्धान द्वारा ग्राहक की बदलती हुई रुचियों, आवश्यकताओं व फैशन का ज्ञान हो जाने से नई–नई वस्तुओं का निर्माण संभव हो जाता है। इस प्रकार ग्राहक को नई–नई व स्थानापन्न वस्तुओं के उपयोग का अवसर मिलता है व आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

(iii) ज्ञान में वृद्धि –

विज्ञापन, विक्रय कला एवं विक्रय संवर्द्धन के माध्यम से ग्राहकों को वस्तु के अनेक पहलुओं की जानकारी प्रदान की जाती है। इस प्रकार विपणन उपभोक्ताओं की शिक्षित करने एवं जागरूक बनाने में सहायक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(iv) धन का उचित प्रयोग –

आज का ग्राहक विभिन्न वस्तुओं के रंग, रूप, गुण, मूल्य आदि का भी तुलनात्मक अध्ययन करके अपनी आवश्यकता तथा रूचि के अनुसार उचित क्रय निर्णय ले सकता है। वह विज्ञापनों द्वारा की गई सूचनाओं के आधार पर घर पर बैठे कर ही आसानी से वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है। इससे धन का सदुपयोग होता है व क्रय शक्ति में वृद्धि होती है।

(v) जीवन स्तर में वृद्धि –

विपणन प्रबन्ध द्वारा अनेक उपयोगी एवं सुख –सुविधा की वस्तुयें तथा मनोरंजन एवं विलासिता की सुविधा की वस्तुएं तथा मनोरंजन एवं विलासिता की सुविधायें ग्राहकों को उपलब्ध करवाकर समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करता है।

(vi) विक्रय उपरान्त सेवा का लाभ –

विपणन के द्वारा आज ग्राहकों को अनेक विक्रयोपरान्त सेवायें, जैसे मरम्मत, गृह सुपुर्दगी, वस्तु स्थानापत्र, माल परिवर्तन, उपभोग सम्बन्धी निर्देश आदि निःशुल्क प्रदान की जाती है। इससे ग्राहक लाभान्वित होते है।

(vii) बाजार सूचनाओं की जानकारी –

प्रभावी विपणन व्यवस्था सुदृढ़ संचार व्यवस्था पर आधारित होती है अतः ग्राहकों को बाजार सम्बन्धी सूचनाऐं प्राप्त होती रहती है। बाजार में उपलब्ध वस्तुओं के साथ–साथ वैकल्पिक वस्तुओं के सम्बन्ध में यथासमय जानकारी विज्ञापन, विक्रयकर्ता तथा विक्रय संवर्द्धन साधनों से प्राप्त होती है।

(viii) यथा समय वस्तुओं की उपलब्धि–

प्रभावी विपणन प्रबन्ध के कारण है। आज ग्राहकों को यथासमय सभी वस्तुऐं उपलब्ध हो रही है। दिन से लेकर रात तक (24 घंटे) सभी प्रकार की सेवायें एवं वस्तुऐं उसे प्राप्त हो सकती है।

(ix) यथास्थान वस्तुओं की उपलब्धि –

प्रभावी विपणन प्रबन्ध ने आज सभी वस्तुएं घर द्वार तक पहुँचाने में सहायता की है। शहरों में ही नहीं, अब तो ज्यादातर गांवों तथा कस्बों में भी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुए उपलब्ध होने लगी है। प्रत्येक उपभोक्ता अपने घर के आस–पास ही आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुयें प्राप्त कर सकता है।

(x) उपभोक्ता सन्तुष्टि –

विपणन प्रबन्ध का प्रमुख लक्ष्य उपभोक्ता सन्तुष्टि ही है। विपणन उपभोक्ता की इच्छित वस्तुयें सही समय पर सही कीमत पर तथा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाकर उपभोक्ताओं को सन्तुष्टि प्रदान करता है।

(xi) आराम एवं सुविधा–

कुशल विपणन के कारण ही आज उपभोक्ताओं को अधिकाधिक आराम, मनोरंजन एवं विलासिता के साधन उपलब्ध हो रहे है। इससे उपभोक्ताओं की कार्यक्षमता, जीवन स्तर व सन्तुष्टि में वृद्धि होती है।

3. समाज के लिये महत्व –

सम्पूर्ण समाज प्रभावी विपणन प्रबन्ध व्यवस्था से लाभान्वित होता है जिनको हम निम्नालिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते है–

(I) कम मूल्यों पर वस्तुओं की प्राप्ति–

प्रभावी विपणन प्रबन्ध द्वारा समज के लोगों को वस्तुयें एवं सेवायें अपेक्षाकृत कम मूल्य पर प्राप्त हाती है परिणामस्वरूप समाज के सभी सदस्यों को लाभ प्राप्त होता है।

(ii) रोजगार में वृद्धि –

विपणन की विस्तृत क्रियाओं जैसे–वितरण, विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, पैंकिग, बाजार अनुसन्धान आदि से रोजगार बढता है। इसके अतिरिक्त विपणन कई अप्रत्यक्ष कार्यों जैसे– यातायात सन्देशवाहन, बैंकिग बीमा, भण्डारण, पूंजी बाजार आदि को प्रोत्साहित करके भी रोजगार के अवसर पैदा करता है।

(iii) रूढियों एवं कुरीतियों से मुक्ति –

प्रभावकारी विपणन प्रबन्ध व्यवस्था के द्वार समज में मिलावट, जमाखोरी, भ्रमक विज्ञापन, काला बाजारी आदि बुराइयों का उन्मूलन होता है। साथ ही जीवन स्तर में परिवर्तन होने से सामाजिक कुरीतियाँ दुर होने लगती है। इससे सामाजिक परिवर्तन होने लगता है।

(iv) सामाजिक मूल्यों की स्थापना–

विपणन की नई विचारधारा ग्राहको की सन्तुष्टि पर आधारित है। व्यवसायी उपभोक्ताओं को अपनी सभी क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु समझने लगता है और उनकी सन्तुष्टि में ही वह लाभ

(5) राष्ट्र के लिये महत्व–

(i) राष्ट्रीय साधनों का सदुपयोग –

विपणन प्रबन्ध वस्तु की समय, स्थान, अधिकार, रूप एवं ज्ञान उपयोगिता का सृजन करता है। इससे देश के प्राकृतिक एवं पूँजीगत सभी साधनों का उचित वितरण एवं सुदपयोग संभव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ii) मंदी से रक्षा –

विपणन मांग एवं पूर्ति में संतुलन बनाये रखता है। यह मांग का सृजन करके राष्ट्र को आर्थिक मन्दी, बरोजगारी, गरीबी आदि बुराइयों से बचाता है।

(iii) राष्ट्रीय उत्पादक में वृद्धि –

विपणन प्रबन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि करता है।

(iv) निर्यात वृद्धि –

विपणन प्रबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय बाजार अनुसन्धान करके विदेशी बाजारों में फर्म को प्रवेश दिलाता है। साथ ही लागत एवं किस्म में सुधार करके निर्यात बाजार में वस्तु को जमाता है। इस प्रकार विदेशी मुद्रा के अर्जन में विपणन प्रबन्ध सहायक होता है।

(v) सरकारी आय –

प्रभावी विपणन व्यवस्था से माल के उत्पादन, विक्रय तथा आय सभी में वृद्धि होती है। अतः सरकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष करों से आय में भी वृद्धि होती है।

(vi) कृषि एवं सहायक उद्योगों का विकास –

प्रभावी विपणन प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा कृषि एवं अन्य सहायक उद्योगों के विकास को भी प्रोत्साहन मिलता है। इससे राष्ट्र का समन्वित विकास होता है।

इससे स्पष्ट है कि विपणन प्रबन्ध समाज के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। इससे व्यवसायी ही लाभान्वित नहीं होता बल्कि उपभोक्ता समाज एवं राष्ट्र भी लाभान्वित होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

विपणन प्रबन्ध सम्पूर्ण प्रबन्ध की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत ग्राहकों की आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनकी सन्तुष्टि के लिये प्रभावी विपणन कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जाता है।

विपणन के कार्य / प्रक्रिया

(1) बाजार विश्लेषण के कार्य (2) विपणन नियोजन (3) विपणन संचार कार्य (4) उत्पाद का रूपांकन एवं विकास (5) बाजार वर्गीकरण (6) प्रमापीकरण एवं श्रेणीयन (7) पैकेजिंग एवं लैबलिंग (8) ब्रान्डिंग (9) ग्राहक समर्थन सेवायें (10) उत्पाद का मूल्य निर्धारण (11) विक्रय (12) परिवहन (13) संग्रहण (14) वित्त व्यवस्था (15) जोखिम उठाना

A. विपणन प्रबन्ध का महत्व

(1) उपक्रम / व्यवसायियों के लिये महत्व (1) प्रतिस्पर्धा में अस्तित्व बनायें रखने के लिये (2) नियोजन का आधार (3) अधिक विक्रय (4)अधिक उत्पादन (5) न्यूनतम लागत पर वितरण (6) लाभों में वृद्धि (7) मध्यस्थों की प्राप्ति में सहायक

(8) ख्याति का निर्माण (9) विकास एवं विस्तार (10) सामाजिक दायित्वों की पूर्ति (11) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सफलता

B. ग्राहकों के लिये महत्व –

(1) सस्ती एवं श्रेष्ठ वस्तुओं की उपलब्धि (2) आवश्यकताओं की पूर्ति (3) ज्ञान में वृद्धि (4) धन का उचित प्रयोग (5) जीवन स्तर में वृद्धि (6)विक्रय उपरान्त सेवा का लाभ (7) बाजार सूचनाओं की जानकारी (8) यथासमय वस्तुओं की उपलब्धि (9) यथा स्थान वस्तुओं की उपलब्धि (10) उपभोक्ता सन्तुष्टि (11) आराम एवं सुविधा

C. समाज के लिये महत्व –

(1) कम मूल्यों पर वस्तुओं की प्राप्ति (2) रोजगार में वृद्धि (3) रूढियां एवं कुरीतियों से मुक्ति (4) सामाजिक मूल्यों की स्थापना (4) राष्ट्र के लिय महत्व – (1) राष्ट्रीय साधनों का सदुपयोग (2) मन्दी से रक्षा (3) राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि (4) निर्यात वृद्धि (5) सरकारी आय (6) कृषि एवं सहायके उद्योगों का विकास

D. राष्ट्र के लिये महत्त्व

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र. 1 विपणन प्रबन्ध से क्या आशय है?

प्र. 2 विपणन प्रबन्ध के दो कार्य बताइये।

प्र. 3 ग्राहक समर्थन सेवायें कौनसी है?

प्र. 4 विपणन प्रबन्ध का व्यवसायियों के लिये महत्व के दो बिन्दु बताइये।

प्र. 5 विपणन प्रबन्ध का ग्राहकों के लिये महत्व के दो बिन्दु बताइये।

प्र. 6 विपणन प्रबन्ध का समाज के लिये महत्व के दो बिन्दु बताइये।

प्र. 7 विपणन प्रबन्ध का राष्ट्र के लिये महत्व के दो बिन्दु बताइये।

प्र. 8 विपणन प्रबन्ध से ग्राहकों के ज्ञान में वृद्धि कैसे होती है?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र. 1 विपणन प्रबन्ध के चार कार्यों का वर्णन कीजिये?

प्र. 2 विपणन प्रबन्धके निम्न कार्यों को समझाइये।

(1) बाजार विश्लेषण कार्य

(2) विपणन, नियोजन कार्य

(3) विपणन संसार कार्य

प्र.3 विपणन प्रबन्ध के निम्न कार्यों को समझाइये?

(1) पैकेजिंग एवं लेबलिंग

(2) संग्रहण

(3) परिवहन

प्र.4 विपणन प्रबन्ध का व्यवसायियों के लिये महत्व के चार बिन्दुओंका वणर्न कीजिये।

प्र.5 विपणन प्रबन्ध का ग्राहकों के लिये महत्व के चार बिन्दुओं का वणर्न कीजिये।

प्र.6 विपणन प्रबन्ध का समाज के लिये महत्व का वर्णन कीजिए।

प्र. 7 विपणन प्रबन्ध का राष्ट्र के लिये महत्व के चार बिन्दुओं का वर्णन कीजिये

प्र. 8 विपणन की प्रक्रिया के चार बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिये?

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र. 1 विपणन प्रबन्ध के अर्थ तथा महत्व पर प्रकाश डालिये।

प्र. 2 विपणन प्रबन्ध के कार्यों को विस्तार पूर्वक समझाइये।

प्र. 3 विपणन प्रबन्ध की कार्य प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विक्रय संवर्द्धन
Sales Promotion

विक्रय संवर्द्धन का आशय विक्रय वृद्धि के लिये की जाने वाली अनियमित क्रियाओं से है। आज का बाजार क्रेता का बाजार है। बाजार में वस्तुएँ विभिन्न डिजाइनों, रंगों, किस्मों में उपलब्ध है। एक ही वस्तु की कई स्थानापन्न वस्तुयें भी बाजार में उपलब्ध है। बाजार में गला काट प्रतिस्पर्धा है व विक्रेताओं एवं वस्तुओं की बहुतायत है। इन परिस्थितियों में विक्रय वृद्धि हेतु विभिन्न साधनों यथा विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय एवं विक्रय संवर्द्धन का उपयोग किया जाता हे। इस प्रकार से विक्रय संवर्द्धन विक्रय वृद्धि का एक महत्वपूर्ण उपाय है।

विक्रय संवर्द्धन का अर्थ एवं परिभाषा –

विक्रय संवर्द्धन से अभिप्राय क्रेताओं को वस्तु अथवा सेवाओं को लघु अवधि में तुरन्त क्रय करने के लिये प्रेरित करने से है। विक्रय संवर्द्धन का शब्दिक अर्थ किसी वस्तु या सेवा की बिक्री में वृद्धि करने से है। संकुचित अर्थ मं विक्रय संवर्द्धन का आशय ऐसी क्रियाओं से है जो वैयक्तिक विक्रय में सहायक होती है। विस्तृत अर्थ में विक्रय संवर्द्धन का आशय उन समस्त क्रियाओं से है जो विक्रय वृद्धि के लिये की जाती है। इस दृष्टि से विक्रय संवर्द्धन में विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय, उत्पादों में नवीनता लाना, विपणन प्रणालियों में सुधार विभिन्न प्रतियोगिताऐं आदि सभी शामिल है। विशिष्ट अर्थ में विक्रय संवर्द्धन विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय तथा प्रचार को छोडकर विक्रय वृद्धि के लिये की जाने वाली अनियमित क्रियायें शामिल है।

कुछ विद्वानों ने विक्रय संवर्द्धन को इस प्रकार से परिभाषित किया है।

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, ''विक्रय संवर्द्धन में वैयक्तिक विक्रय, विज्ञापन एवं प्रकाशन के अलावा वे समस्त अनियमित क्रियायें, जैसे प्रदर्शन, दिखावा एवं प्रदर्शनी, क्रियात्मक प्रदर्शन आदि सम्मिलित की जाती है जो उपभोक्ता की क्रय शक्ति तथा विक्रेता की प्रभावशीलता को प्रोत्साहित करती है।''

विलियम जे स्टेन्टन के अनुसार '' विक्रय संवर्द्धन से आशय विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय एवं प्रचार के अतिरिक्त उन संवर्द्धनात्मक क्रियाओं से है जो ग्राहक की मांग को प्रोत्साहित करने तथा मध्यस्थों के विपणन निष्पादन में सुधार करने के उद्देश्य से की जाता है।

जार्ज डब्ल्यू हापकिन्स के अनुसार है ''विज्ञापन एवं विक्रय प्रक्रियाओं को प्रभावशाली बनाने के लिये जिन संगठित प्रयासों की सहायता ली जाती है उन्हें विक्रय संवर्द्धन कहते है।

विक्रय संवर्द्धन की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि विक्रय संवर्द्धन में केवल वे ही क्रियायें सम्मिलित है जो फर्म की बिक्री को बढावा देने के लिये कम अवधि के प्रोत्साहन के लिये की जाती है। ये विक्रय प्रयास अनियमित होते है जो उपभोक्ताओं को अधिक क्रय करने तथा व्यापारी को अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से वस्तुओं का विक्रय करने के लिये प्रेरित करती है। इसमें विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय तथा प्रकाशन सम्मिलित नहीं होते है।

विक्रय संवर्द्धन का महत्व –

विक्रय संवर्द्धन उपभोक्ताओं, निर्माताओं व्यापारियों एवं समाज के लिये लाभदायक है। यह विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय के बीच की दूरी को कम करके उन्हें प्रभावशाली बनाता है।

(1) विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय की प्रभावशीलता में वृद्धि –

विक्रय संवर्द्धन योजनाओं (मूल्यों में नकद छूट, बिक्री प्रतियोगितायें, मुफ्त तोहफे एवं मुफ्त नमूनों का वितरण, कूपन, स्क्रेच योजना) के कारण ग्राहक स्वयं व्यापारी के पास पहुँचकर वस्तु की मांग करता है फलस्वरूप विक्रेता को उपभोक्ता को समझाने, उनकी आपत्तियों का निवारण करने एवं उन्हें क्रय करने हेतु प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं पडती है।

विक्रय संवर्द्धन में उपभोक्ताओं तथा व्यापारियों को विभिन्न प्रोत्साहन एवं स्कीमे देकर विज्ञापन संदेश को विक्रय में बदला जा सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रय संवर्द्धन योजनाओं में ग्राहकों को विज्ञापित वस्तुओं को प्रयोग करने एवं जाँच करने का अवसर प्राप्त हो जाता है परिणाम स्वरूप उपभोक्ता के मन में विज्ञापन के प्रति सन्देह दूर हो जाता है अतः विक्रय में सहायक होता है व इन्हें प्रभावशाली बनाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) विक्रय में वृद्धि –

विक्रय संवर्द्धन के अन्तर्गत नमूनों / कूपनों का निःशुल्क वितरण किया जाता है, फैशन परेड का आयोजन, मूल्यों में छूट, विभिन्न प्रतियोगिता का आयोजन आदि किये जाते है। इन सभी प्रयासों को करने के परिणाम स्वरूप ग्राहकों का वस्तु की ब्राण्ड में विश्वास बढता है तथा वे अधिक वस्तुयें खरीदने के लिये प्रोत्साहित होते है जिससे विक्रय में वृद्धि होती है।

(3) प्रतिस्पर्धा पर विजय प्राप्त करना –

आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है। प्रतिस्पर्धा पर सफलता प्राप्त करने के लिये विक्रय संवर्धन की महत्वपूर्ण भूमिका है। विक्रय संवर्द्धन के नये–नये कार्यक्रमों के द्वारा संस्था अपनी प्रतिस्पर्धी कम्पनियों से आगे निकल जाती है।

(4) ख्याति में वृद्धि –

विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों के चलते रहने के कारण वस्तु के ब्राण्ड की लोकप्रियता बढती है और वह ब्राण्ड उपभोक्ताओं के मन में अपनी विशिष्ट पहचान बना लेता है जिससे संस्था की ख्याति में वृद्धि होती है।

(5) उपभोक्ताओं के ज्ञान एवं विश्वास में वृद्धि –

विक्रय संवर्द्धन क्रियाऐं प्रोत्साहन कार्यक्रमों का उपयोग कर उपभोक्ताओं को वस्तु के गुणों एवं उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त होती है साथ ही वस्तु के उपयोग के प्रति विश्वास पैदा होता है।

(6) नये बाजारों में प्रवेश –

विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों की सहायता से निर्माता अपनी वस्तु के लिये नये–नये बाजारों में आसानी से प्रवेश कर सकता है।

(7) लाभों में वृद्धि –

विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों की सहायता से ग्राहक अधिक माल खरीदने के लिये प्रेरित होते है फलस्वरूप विक्रय में वृद्धि होती है। विक्रय में वृद्धि होने से बढी हुई मांग को पूरा करने के लिये वृहद् स्तर पर उत्पादन करना पडता है। बडे पैमाने पर उत्पादन एवं बाह्य मितव्यतायें प्राप्त होती है जिससे प्रति इकाई लागत में कमी आती है तथा लाभों में वृद्धि होती है।

(8) मध्यस्थो को अधिक सुविधायें –

विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों में उत्पादक मध्यस्थो को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देते है, जैसे– फुटकारी व्यापारी के नाम से विज्ञापन देना, दुकान की सजावट करना, मुफ्त वस्तुएँ एवं भेट देना आदि।

(9) जीवन स्तर में सुधार –

विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों में उपभोक्ताओं को छूट प्राप्त होती है तथा उपभोक्ताओं को प्रति ईकाई लगात में कमी होने से वस्तु सस्ते मूल्य पर मिल जाती है परिणाम स्वरूप उपभोक्ता अधिक एवं विविध वस्तुएं खरीद पाते है और उनके जीवन स्तर में सुधार होता है।

विक्रय संवर्द्धन की विधियां

विक्रय संवर्द्धन का मुख्य उद्देश्य व्यापारियों को विक्रय के लिये व ग्राहकों को क्रय करने के लिये प्रेरित करना हैं विक्रय संवर्द्धन का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसलिये विक्रय संवर्द्धन के लिये विभिन्न प्रकार के तरीकों को अपनाया जाता है। मोटे तोर पर विक्रय संवर्द्धन की विधियों को तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम उद्देश्य के आधार पर, द्वितीय, वस्तु के आधार पर, तृतीय, क्षेत्र के आधार पर।

उद्देश्य के आधार पर विक्रय संवर्द्धन की दो विधियाँ इस प्रकार है।

(A) उपभोक्ता संवर्द्धन विधियाँ, (B) व्यापारी संवर्द्धन विधिया। इसी तरह वस्तु की प्रकृति के आधार पर भी विक्रय संवर्द्धन का दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है– उपभोक्ता वस्तु संवर्द्धन विधियाँ एवं औद्योगिक संवर्द्धन विधियाँ। विक्रय क्षेत्र के आधार पर निर्माता देशी व्यापार विक्रय संवर्द्धन एवं निर्यात व्यापार विक्रय संवर्द्धन विधियों का उपयोग करते है। विक्रय संवर्द्धन की उपर्युक्त वर्गीकृत विधियाँ के विस्तार में जाना हमारे लिये अपेक्षित नहीं है अतः हम विक्रय संवर्द्धन की उक्त दो विधियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे–

(A) उपभोक्ता संवर्द्धन विधियाँ –

उपभोक्ता संवर्द्धन विधियाँ प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं से सम्बन्धित होती है तथा उन्हें अधिकाधिक मात्रा में माल को क्रय करने के लिये प्रेरित करती है। इन संवर्द्धन विधियों को उपभोक्ता के निवास स्थान, कार्यालय अथवा मध्यस्थों की दुकानों पर क्रियान्वित किया जाता है। उपभोक्ता संवर्द्धन की प्रमुख विधिया इस प्रकार है–

1. मुफ्त नमूनों का वितरण–

किसी नये ब्रांड को बाजार में लाते समय संभावित ग्राहकों को वस्तु के मुफ्त नमूनों का वितरण किया जाता है। यह विक्रय संवर्द्धन का महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी उपाय है। नमूनों की सहायता से उपभोक्ता वस्तु के गुणों, प्रयोग, व उपयोगिता के सम्बन्ध में जांच परख कर सकता है तथा उसे खरीदने का निर्णय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ले सकता है। नमूनों का मुफ्त वितरण घर–घर जाकर अथवा कार्यालयों, दुकानों, चौराहों पर किया जा सकता है। डाक द्वारा भी संभावित ग्राहकों को नमूने भेजे जा सकते है।

आज के दवा विक्रेता डॉक्टरों को दवाइयाँ पुस्तक प्रकाशक शिक्षकों को पुस्तकें नमूने के रूप में देते है। डिटर्जेन्ट, सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री एवं नये उत्पाद इस विधि से बेचे जाते है। नमूने वितरण में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये– (1) नमूने वस्तु का सही प्रतिनिधित्व करते हो। नमूने के सम्पूर्ण माल से भिन्न होने पर संस्था की ख्याति को ठेस लगने का भय रहता है। (2) नमूने आकर्षक एवं जाँच करने योग्य हो (3) नमूने पर 'विक्रय' के लिये नहीं अथवा 'नमूने' की प्रति' शब्द के अंकित करने चाहिये ताकि उसका दुरुपयोग नहीं हो।

(2) प्रतियोगिताएँ–

निर्माता उपभोक्ताओं को आकर्षित करने, नई वस्तु को बाजार में प्रस्तुत करने, प्रतिस्पर्धियों से आगे निकलने अथवा विक्रय में वृद्धि करने के लिये उपभोक्ताओं के लिये विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करते है। प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिये उपभोक्ता को क्रय की गई वस्तु का केशमेमों अथवा वस्तु की पैकिंग का कोई हिस्सा संलग्न करना होता है। प्रतियोगिता में विजयी रहने वाले ग्राहकों को नकद राशि, कम्पनी का उत्पाद अथवा विदेश घूमने एवं पाँच सितारा होटल में रूकने की सुविधा प्रदान की जाती है। प्रतियोगिताएँ इस प्रकार हो सकती है–

(1) वस्तु से सम्बन्धित अधूरा वाक्य पूरा करना – जैसे मैं विडियोकॉन टी.वी. प्रयोग करता/करती हूँ क्योंकि...।

(2) ग्राहकों को वस्तु का चित्र देकर वस्तु का शीर्षक अथवा नाम पूछना। सर्वश्रेष्ठ शीर्षक/नाम देने वाले को पुरस्कार दिया जाता है।

(3) वस्तु के बारे में नारा पूछना जैसे– जो ओके साबुन से नहाये....।

(4) उपभोक्ताओं से पहेलियों को हल करवाना

(5) वस्तु के बारे में ग्राहकों से पत्र लिखवाना, एस.एम.एस. लेना।

(3) घटे मूल्य पर विक्रय –

विशेष अवसरो पर जैसे दीपावली, संस्था का स्थापना दिवस, नववर्ष, गांधी जयन्ती आदि अवसरों पर निर्माता द्वारा उत्पाद को सूची में दिये गये मूल्य से कम मूल्य पर बेचता है। उदाहरण– एक जूता बनाने वाली कम्पनी द्वारा 50: तक की छूट अथवा एक कमीज निर्माता द्वारा 50+40 प्रतिशत की छुट। प्रचलन एवं फैशन से बाहर हो गई वस्तुओं एवं पुराने स्टॉक को बेचने का यह सर्वाधिक प्रचलित तरीका है।

(4) कूपन –

कूपन में उपभोक्ता को वस्तु खरीदने पर कीमत में छुट दी जाती है अथवा कुछ मुफ्त वस्तु दी जाती है। कूपन वस्तु की पैकिंग में रखे जा सकते है। अथवा अखबार में प्रकाशित किये जा सकते है। वस्तु को खरीदने के पश्चात् जब ग्राहक पैकिंग खोलता है तो उसमें से कूपन निकलता है। कूपन में दी गई राशि की ग्राहक को छुट मिल जाती है अथवा कूपन में अंकित वस्तु उसे मुफ्त में दी जाती है। राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर कूपन पद्धति का अपने पाठकों को बनाये रखने एवं उनका विस्तार करने में बखूबी उपयोगा कर रहे है। अगरबत्ती, चाय व साबुन निर्माता भी कूपन पद्धति का प्रयोग करते है।

(5) मेले एवं प्रदर्शनीया –

मेले एवं प्रदर्शनीया विक्रय संवर्द्धन का महत्वपूर्ण साधन है। इनमें वस्तुओं को विशेषरूप से सजाकर रखा जाता है तथा वस्तु से सम्बन्धित हैण्ड बिल अथवा साहित्व का मुफ्त वितरण भी किया जाता है। राष्ट्रीय पुस्तक मेला शू फेयर, स्वदेशी मेला, सहकारी वस्तुओं एवं हस्तशिल्प का मेला इसके प्रत्यक्ष उदारहण है।

(6) प्रिमियम –

प्रिमियम का अभिप्राय ग्राहक द्वारा कोई वस्तु खरीदे जाने पर निर्माता द्वारा अतिरिक्त वस्तु प्रदान किये जाने से है। प्रिमियम के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है – टूथ पेस्ट के पैकेट के साथ टूथ ब्रुश देना, पेन्सिल के पैकेट के साथ रबर देना, अगरबत्ती के पैकेट के साथ अगबती स्टैण्ड देना, टी.वी. खरीदने पर वी.सी.डी./डी.वी.डी. देना, वस्तु के साथ कूपन देना, पुरानी या उपयोग में लाई गई वस्तु के बदले कुछ कीमत लेकर नई वस्तु देना। प्रिमियम के कारण ग्राहक वस्तु को खरीदने के लिये प्रेरित होते है।

(7) अतिरिक्त यात्रा उपहार स्वरूप –

उत्पाद की अतिरिक्त मात्रा उपहार में देना। यह सामान्यतः सौन्दर्य प्रसाधन निर्माता उपयोग करते है। उदाहरण के लिये एक फेयर एण्ड लवली क्रीम पर 40: अतिरिक्त देना।

(8) क्रियात्मक प्रदर्शन –

इसमें निर्माता अपने शोरूम पर अथवा मेले प्रदर्शनी में वस्तु को उपयोग में लेने का प्रदर्शन करता है। तकनीकी प्रकृति की वस्तुओं का जैसे– टी.वी., रेफ्रीजरेटर, डीवीडी, कम्प्यूटर, मिक्सी, वांशिंग मशीन आदि को बेचने में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से ग्राहकों के सन्देहों का निवारण हो जाता है तथा वह स्वयं भी वस्तु का प्रयोग करके देख सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(9) विक्रयोपरान्त सेवा–

इसमें विक्रेता उपभोक्ता को विक्रय के बाद निश्चित अवधि के लिये सेवा की गारन्टी देता है। इससे उस अवधि में ग्राहक वस्तु की देख–रेख, मरम्मत आदि के व्यय से बच जाता है। मशीन, पंखे, बाइक, स्कूटर, कार, फ्रिज आदि से विक्रयोपरान्त सेवा ग्राहकों को क्रय हेतु प्रेरित करने का महत्वपूर्ण तरीका है। ग्राहक उस कम्पनी के उत्पाद को खरीदना पसन्द करता है जिसकी विक्रयोपरान्त सेवा अच्छी है।

(10) पैकेजिंग –

आकर्षक एवं सुन्दर पैकेजिंग ग्राहकों को वस्तु क्रय करने के लिये प्रेरित करती है तथा वस्तु की कीमत, ब्राण्ड गुण आदि के बारे में सूचनाये प्रदान करती है।शीशे या प्लास्टिक के डिब्बे वाली चाय एवं खाद्य तेलों की अधिक बिक्री का कारण उनकी पैकेजिंग ही है।

B. व्यापारी संवर्द्धन विधियाँ –

व्यापारी संवर्द्धन विधियों से तात्पर्य उन विधियों से है जो मध्यस्थों (थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी आदि) को अधिकाधिक माल का क्रय करने एवं उसे विक्रय करने के लिये प्रोत्साहित करती है। विपणन की सफलता मध्यस्थों पर निर्भर करती है। अतः उत्पादक मध्यस्थों को प्रेरित करने के लिये

(1) विक्रय प्रतियोगितायें –

व्यापारियों की अधिक माल बेचने के लिये प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रतियोगितायें आयोजित की जाती है। इसमें सर्वाधिक विक्रय प्रतियोगिता सर्वश्रेष्ठ विक्रेता प्रतियोगिता, काउन्टर सजावट प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया जाता है। विजेता व्यापारियों एवं विक्रेताओं को निर्माता द्वारा पुरूस्कार दिये जाते है।

(2) भत्ते–

निर्माता मध्यस्थों का सहयोग प्राप्त करने केलिये उन्हें विभिन्न प्रकार के भत्ते देता है जिनमें से प्रमुख निम्न है–

(I) क्रय भत्ता–

यह भत्ता व्यापारी द्वारा एक निश्चित अवधि में निश्चित मात्रा का माल क्रय करने पर निर्माता द्वारा दिया जाता है। उदाहरण के लिये 150000 रूपये का माल एक साथ खरीदने पर

(ii) वस्तु भत्ता–

जब व्यापारी केवल एक ही निर्माता द्वारा वस्तु भत्ता दिया जाता है। उदाहरणार्थ, विभिन्न कम्पनियों के कपड़े रखने के स्थान पर केवल बाम्बे डाइंग का कपडा रखने पर माल भत्ता

(iii) विज्ञापन भत्ता –

विज्ञापन भत्ता से आशय व्यापारी द्वारा किये जा रहे विज्ञापन का कुछ खर्चा निर्माता द्वारा वहन किये जाने से है।

(iv) सजावट भत्ता–

इसमें व्यापारी द्वारा सजावट पर किये जा रहे व्यय का कुछ भाग निर्माता द्वारा वहन किया जाता है। वस्तुओं को सुन्दर तरीके से सजाकर रखने से ग्राहक दुकान की ओर आकर्षित होते है।

(3) सभायें एवं सम्मेलन –

निर्माता विक्रय संवर्द्धन हेतु व्यापारियों की सभाये एवं सम्मेलन समय–समय पर आयोजित करते है। सभा एवं सम्मेलन से मध्यस्थ अपनी समस्यायें निर्माता के सामने रखते है तथा आपसी विचार – विमर्श द्वारा इन समस्याओं का समाधान खोजा जाता है। सभा एवं सम्मेलन में निर्माता नवीन परिवर्तनों की जानकारी देता है तथा विक्रय नीति को स्पष्ट करता है। इस प्रकार के आयोजन से निर्माता एवं व्यापारियों में पारस्परिक सहयोग बढता है जो विक्रय संवर्द्धन में सहायक होता है।

(4) प्रशिक्षण–

मेडिकल रिप्रजेन्टेटिव (दवा निष्क्रियता) वित्तिय कम्पनियों एवं इलेक्ट्रोनिक उत्पाद कम्पनियों के विक्रयकर्ताओं की कार्यप्रणाली यह स्पष्ट करती है कि प्रशिक्षण विक्रय संवर्द्धन में बहुत उपयोगी होता है निर्माता अपने मध्यस्थोंए वं विक्रेताओं की वस्तु के सम्बन्ध में सामान्य तथा विशिष्ट प्रशिक्षण देते है। सामान्य प्रशिक्षण में विक्रय कला, व्यापार नीति एवं कार्य प्रणाली का ज्ञान कराया जाता है। विशिष्ट प्रशिक्षण तकनीकी वस्तुओं के सम्बन्ध में दिया जाता है जिसमें विक्रय कला एवं व्यापार नीति के साथ–साथ उत्पाद के तकनीकी एवं संचालन सम्बन्धी पहलुओं की जानकारी दी जाती है।

(5) फैशन शो–

निर्माता व्यापारियों द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तुओं का प्रचार करने के लिये फैशन शो आयोजित करते है। फैशन शो में वस्तुओं को नवीनतम एवं आकर्षक तरीकों के साथ प्रस्तुत किया जाता है ताकि ग्राहक इन वस्तुओं को क्रय करने के लिये प्रेरित हो सके। परिधान, आभूषण एवं वाहन निर्माताओं द्वारा समय–समय पर फैशन शो आयोजित किये जाते है।

(6) व्यापारी प्रीमियम –

निर्माता द्वारा व्यापारियों को एक निश्चित मात्रा में अथवा निश्चित मूल्य की वस्तुयें बेचने पर अथवा एक साथ बड़ी मात्रा में माल क्रय करने पर प्रिमियम के रूप में मूल्यवान वस्तु जैसे टी.वी. चांदी का सैट आदि निःशुल्क दिये जाते है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(7) विशिष्ट सेवायें –

निर्माता व्यापारियों को साख सुविधायें, वापस क्रय गारण्टी एवं मरम्मत सुविधायें प्रदान कर उन्हें अधिक माल विक्रय करने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है। निर्माता निश्चित अवधि केलिये व्यापारियों को उधार क्रय की सुविधा प्रदान करते है। इससे मध्यस्थों को पूंजी की व्यवस्था करने की चिन्ता नहीं रहती है। इसी तरह निर्माता वितरकों एवं व्यापारियों को विक्रय अथवा वापस की सुविधा प्रदान करते है। विक्रेता माल बेचने का प्रयास करते है। विशिष्ट सेवाओं में व्यापारी विक्रय संवर्द्धन का एक अन्य उपाय है– मरम्मत सुविधायें प्रदान करना। इसमें निर्माता वस्तु के खराब होने पर उसे व्यापारी के विक्रय स्थल पर ही ठीक मरम्मत करता है।

(8) प्रबन्धन सहायता –

निर्माता मध्यस्थों को नवीन प्रबन्ध तकनीकों, सरकारी–नीतियो, वित्तिय प्रबन्ध, विक्रय प्रबन्ध, संस्था की सजावट, ग्राहकों की आपत्तियों के निराकरण सम्बन्धी मामलों पर जानकारी एवं सलाह देता हे। इससे व्यापारियों की कार्यक्षमताओं में सुधार होता है, तथा वे धन का अनुकूलतम उपयोग कर पाते है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

विक्रय संवर्द्धन का आशय उन अनियमित विक्रय प्रयासों से है जो उपभोक्ताओं को अधिक क्रय करने तथा व्यापारी को अधिक प्रभावशाली ढंग से वस्तुओं का विक्रय करने के लिये प्रोत्साहित करती हे। यह विज्ञापन, वैयक्तिक विक्रय तथा

विक्रय संवर्द्धन का महत्व –

(1) विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय की प्रभावशीलता में वृद्धि (2) विक्रय में वृद्धि (3) प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करना (4) ख्याति में वृद्धि (5) उपभोक्ताओं के ज्ञान एवं विश्वास में वृद्धि (6) नये बाजारों में प्रवेश (7) लाभों में वृद्धि (8) मध्यस्थों को अधिक सुविधायें (9) जीवन स्तर में सुधार

विक्रय संवर्द्धन की विधियाँ के प्रकार

विक्रय संवर्द्धन की विभिन्न विधियां है जिन्हें हम मोटे रूप से उपभोक्ता सवंर्द्धन विधियां एवं व्यापारी संवर्द्धन विधियों के रूप में वर्गीकृत कर सकते है।

(अ) उपभोक्ता संवर्द्धन विधियां –

(1) मुफ्त नमूनों का वितरण (2) प्रतियोगिताएँ (3) मूल्य पर विक्रय (4) कूपन (5) मेले एवं प्रदर्शनियाँ (6) प्रिमियम (7) अतिरिक्त मात्रा उपहार स्वरूप (8) क्रियात्मक प्रदर्शन (9) विक्रयोपरान्त सेवा (10) पैकेजिंग

(ब) व्यापारी संवर्द्धन विधियां –

(1) विक्रय प्रतियोगिताएं (2) भत्ते– क्रय भत्ता, वस्तु भत्ता, विज्ञापन भत्ता, सजावट भत्ता (3) सभाये एवं सम्मेलन (4) प्रशिक्षण (5) फैशन शो (6) व्यापारी प्रिमियम (7) विशिष्ट सेवायें (8) प्रबन्धन सहायता

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 विक्रय संवर्द्धन से क्या आशय है?

प्र.2 उपभोक्ता संवर्द्धन विधियों में से किन्हीं चार का नामोल्लेख कीजिये?

प्र.3 व्यापारी संवर्द्धन विधियों में से किन्हीं चार का नामोल्लेख कीजिये?

प्र.4 उपभोक्ता संवर्द्धन विधि से क्या समझते है?

प्र.5 व्यापारी संवर्द्धन विधि से आप क्या समझते है?

प्र.6 विक्रय संवर्द्धन के महत्व के कोई दो बिन्दुओं का उल्लेख कीजिये?

प्र.7 उपभोक्ता संवर्द्धन की प्रतियोगिता विधि को स्पष्ट कीजिये?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 विक्रय संवर्द्धन से विक्रय में वृद्धि होती है। स्पष्ट कीजिय?

प्र.2 विक्रय संवर्द्धन के महत्व किन्हीं पांच बिन्दुओं का वर्णन कीजिये?

प्र.3 व्यापारी संवर्द्धन की विधियों के किन्हीं पांच बिन्दुओं का वर्णन कीजिये?

प्र.4 उपभोक्ता संवर्द्धन की विधियों के किन्हीं पांच बिन्दुओं का वर्णन कीजिये?

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 विक्रय संवर्द्धन से आप क्या समझते है? उपभोक्ता संवर्द्धन की विधियों का वर्णन कीजिये?

प्र.2 व्यापारी संवर्द्धन से क्या आशय है? व्यापारी संवर्द्धन विधियों का वर्णन कीजिये?

प्र.3 विक्रय संवर्द्धन क्या है? इसके महत्व को समझाइये?

प्र.4 विक्रय संवर्द्धन की विधियों का वर्णन कीजिये?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विज्ञापन
Advertisement

विज्ञापन का अर्थ–

सामान्य रूप में विज्ञापन का आशय किसी तथ्य विशेष जानकारी देने से है किन्तु व्यावसायिक जगत में विज्ञापन का अर्थ बहुत व्यापक है। हम प्रतिदिन असंख्य विज्ञापन संदेश देखते व सुनते है जो हम अनेक उत्पादों जैसे बीमा पॉलिसियाँ, डिटर्जेन्ट पाउडर, शीतल पेय, एक सेवाओं जैसे शिक्षा संस्थान, अस्पताल, होटल आदि के सम्बन्ध में बताते है। विज्ञापन में टेलीविजन रेडियों, समाचार पत्र, पत्रिका, परिवहन के साधनों, सिनेमा आदि के द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं की जानकारी जन–जन को दी जाती है। सामान्य जनता विज्ञापन के माध्यम से वस्तुओं को खरीदने के लिये प्रेरित होती है। यह व्यक्तिगत सम्प्रेषण होता है जिसका भुगतान विपणनकर्ता कुछ वस्तु एवं सेवाओं के प्रवर्तन के लिये करते हैं।

परिभाषाएँ –

डेविड ओगिल्वी के अनुसार '' यदि आप लोगों को कुछ करने या कुछ खरीदने के लिये प्रोत्साहित करते हैं तो आपको उनकी ही भाषा का प्रयोग करना चाहिये, जिसमें की वे सोचते है।''

शैल्डन के अनुसार –

'' विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिसमें मुद्रित शब्दों द्वारा विक्रय वृद्धि में सहायता मिलती है, ख्याति का निर्माण होता है तथा साख में वृद्धि होती है।''

व्हीलर के अनुसार –

''विज्ञापन लोगों को क्रय करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से विचारों, वस्तुओं अथवा सेवाओं का अवैयक्तिक प्रस्तुतीकरण है जिसके लिये भुगतान किया जाता है।''

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार –

'' विज्ञापन एक सुनिश्चित विज्ञापक द्वारा अवैयक्तिक रूप से विचारों, वस्तुओं या सेवाओं को प्रस्तुत करने तथा संवर्द्धन करने का एक प्रारूप है जिसके लिये विज्ञापक द्वारा भुगतान किया जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि विज्ञापन अवैयक्तिक सन्देश है जिसमें उन दृश्यों एवं मौखिक सन्देशों को शामिल है जो सिनेमा, टेलीविजन, यातायात के साधनों, पत्र–पत्रिकाओं, बाह्य साइन बोर्डों एवं अन्य साधनों द्वारा जन सामान्य को वस्तुओं एवं सेवाओं की जानकारी दी जाती है ताकि उपभोक्ताओं को वस्तु क्रय करने हेतु प्रेरित किया जा सके। विज्ञापन के लिये प्रायोजक/विज्ञापक द्वारा भुगतान किया जाता है।

विज्ञापन के उद्देश्य –

विज्ञापन के विरोधियों का कहना है कि विज्ञापन पर किया गया व्यय एक सामाजिक अपव्यय है क्योंकि इससे लागत में वृद्धि होती है लोगों की आवश्यकताओं में वृद्धि होती हैं व सामाजिक मूल्यों में गिरावट आती है। लेकिन दूसरी तरफ विज्ञापनों के समर्थकों द्वारा तर्क दिया गया कि विज्ञापन बहुत उपयोगी है क्योंकि इसके माध्यम से अधिक लोगों तक पहुंचा जा सकता है, प्रति इकाई उत्पादन लागत को कम करता है तथा अर्थ व्यवस्था के विकास में सहायक होता है। विज्ञापन के उद्देश्य निम्न प्रकार है –

(1) विक्रय वृद्धि –

विज्ञापन का प्रथम व अन्तिम उद्देश्य उत्पाद की बिक्री उपभोक्ताओं में वस्तु के प्रति इच्छा जाग्रत करना विज्ञापन का उद्देश्य होता है। विज्ञापन निरन्तर वस्तु की मांग को बढाता है जिससे विक्रय में वृद्धि होती है।

(2) नये ग्राहक बनाना –

विज्ञापन का उद्देश्य नये ग्राहक बनाना है। विज्ञापन के माध्यम से वस्तु की उपलब्धि, कीमत, उपयोग आदि के बारे से जानकारी मिल जाती है जिससे ग्राहक विभिन्न वस्तुओं की तुलना करके विवेकपूर्ण एवं सुविधापूर्ण क्रय कर सकता है।

(3) नये बाजारों में प्रवेश करना–

विज्ञापन का उद्देश्य मांग को बढाना है व उपभोक्ताओं की पुरानी उपभोग आदतों एवं रूचियों में परिवर्तन कर नये उत्पाद को उपयोग में लेने के लिये प्रेरित करना है। फलस्वरूप उपभोक्ताओं की संख्या बढती है व नये बाजारों में प्रवेश करना संभव होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(4) मध्यस्थों को आकर्षित करना–

प्रभावी एवं निरन्तर विज्ञापन करने से संस्था की ख्याति बढती है जिसके कारण सुदृढ़ एवं प्रतिष्ठित मध्यस्थ संस्था से जुड जाते है व अपनी सेवायें देने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार विज्ञापन का उद्देश्य मध्यस्थों को आकर्षित करना भी है।

(5) उपभोक्ता के खरीदने के उद्देश्य व किसी विशेष ब्राण्ड की वस्तु पर प्रभाव डालना–

उपभोक्ता वस्तु को खरीदने के लिये उसके आस–पास ही होता है इसलिये वह सम्भावित बिक्री के करीब ही होता है ओर वह विवेकपूर्ण व विश्वसनीयता से वस्तु के प्रति अपनी इच्छा को बताता है। वह उस वस्तु को खरीद भी सकता ओर नहीं भी खरीद सकता है। इस खरीद की असमन्जस वाली स्थिति से उपभोक्ता को प्रभावित करके उपभोक्ता द्वारा विज्ञापन उत्पाद को खरीद लेना ही विज्ञापन का उद्देश्य है।

(6) अपने उत्पाद या ब्राण्ड के प्रति उपभोक्ता की जागरूकता और जिज्ञासा को बढाना–

अपने ब्राण्ड के प्रति उपभोक्ताओं में जागरूकता एवं रूचि बनाये रखना एक लोकप्रिय विज्ञापन का उद्देश्य होता है। किसी भी ब्राण्ड के प्रति उपभोक्ता की जागरूकता ब्राण्ड के अस्तित्व और उसकी जानकारी को इंगित करती है। यदि उपभोक्ता की धारणा (विश्वास) वस्तु के प्रति बदलती है तो यह उसे किसी उत्पाद से जोडने के लिये राजी करने को बढावा देता है। जो सीधे–सीधे उपभोक्ता की पसन्द में बदलाव को प्रभावित करता है।

(7) वस्तु का प्रयोग एक बार करने के बाद बार–बार प्रयोग करने की आदत डालने के लिये उपभोक्ताओं को प्रोत्साहित करना।

(8) अन्य वस्तुओं (ब्राण्ड) से उपभोक्ता को अपनी वस्तु की तरफ परिवर्तित करना।

विज्ञापन के माध्यम –

विज्ञापन का माध्यम वह साधन है जिसके द्वारा विज्ञापन का सन्देश अथवा वस्तुओं या सेवाओं की जानकारी जनता तक पहुचायीं जाती है। उदाहरण के लिये विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों का विज्ञापन टी.वी., समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं, सौन्दर्य प्रसाधन निर्माता द्वारा चुने गये विज्ञापन माध्यम है। विज्ञापन के विभिन्न माध्यम होते है जिनमें से प्रमुख निम्न है–

(1) बाह्य विज्ञापन –

बाह्य विज्ञापन का आशय ऐसे विज्ञापन से है जो दीवारों, परिवहन के साधनों, पोस्टरों, विद्युत साइन बोर्ड, होर्डिग्स, स्टीकर द्वारा किये जाते है। इस विज्ञापन में आकर्षक चित्रों एवं रंगों का प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप राह चलते लोगों का ध्यान स्वतः ही इनकी और आकर्षित हो जाता है। उदाहरण के लिये राजस्थान की मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के चित्र वाले होंर्डिंगस जो राज्य के प्रमुख शहरों में लगे हैं, बरबस ही लोगों का ध्यान अपनी और खींच लेते हैं।

बाह्य विज्ञापन के प्रमुख साधन इस प्रकार है –

(1) दीवार लेखन–

इसमें विज्ञापन कर्ता अपने सन्देश को दुकान, मकान की दीवारों, पुलिया की दीवार पर बडे–बडे अक्षरों में लिखवा देता है।

(2) पोस्टर तथा होर्डिंग्स –

पोस्टर दीवारों, गली के कोनों, बसों के चारों और रेल्वे स्टेशन, टेलीफोन के खम्भों आदि पर लगाने या चिपकाये जाते है। इसमें विज्ञापन संदेश कागज, कार्ड बोर्ड, लोहे की चादरों या लकडी के चौखटों पर लगे कपडे पर लिखा होता है। होर्डिंग्स को चौराहे, बहुमंजिले मकान की छतों या सड़क के किनारों पर नियत स्थान पर लगाये जाते है।

(3) विद्युत साइन बोर्ड –

इसमें रंगीन बल्बों या गैस की टयूब लाईटों से विज्ञापन बोर्ड को सजाया जाता हैं। ये रात्रि के समय उपभोक्ताओं को आकर्षित करते हैं।

(4) परिवहन विज्ञापन –

यह परिवहन के साधनों (बस, ट्राम, रेल, कार, वायुयान) पर किये जाने वाला विज्ञापन है। परिवहन विज्ञापन में कार कार्उस का प्रयोग बहुतायत से होता है। कार कार्डस बसों टेक्सियों, रेल के डिब्बों, कार के शीशों आदि के अन्दर लगे होते है। यात्री को गन्तव्य स्थल तक पहुंचने में पर्याप्त समय लगता है अतः वह कार कार्डस को समय व्यतीत करने के लिये फुरसत से पढता है। कार कार्डस के अतिरिक्त परिवहन साधनों के बाहर भी पोस्टर लगाकर या विज्ञापन सन्देश लिखकर विज्ञापन किया जाता है।

(2)(1) समाचारपत्रीय विज्ञापन –

समाचार पत्र विज्ञापन का लोकप्रिय एवं बहु प्रचलित माध्यम है। सभी समाचार पत्रों में विज्ञापन बहुतायत से देखने को मिलते है। समचार –पत्र में विज्ञापन दो तरह के होते है– (1) वर्गीकृत विज्ञापन में विज्ञापन समाचार–पत्र में निर्धारित स्थान पर निश्चित शीर्षकों के अन्तर्गत छपते है, जैसे– टेण्डर, नीलामी, नौकरी, क्रय, विक्रय, शिक्षा, शादी–विवाह आदि। वर्गीकृत विज्ञापनों में सीमित शब्दों का प्रयोग किया जाता है–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वर्गीकृत विज्ञापन का नमूना :

मेडिसिन कम्पनी हेतु
एकाउन्टेन्ट की शीघ्र
आवश्यकता अच्छा वेतन
शीघ्र सम्पर्क करें – XYZ
मेडिसिन, जयपुर

(2) अवर्गीकृत विज्ञापन –

इस प्रकार के विज्ञापन के लिये समाचार पत्र में कोई स्थान निश्चित नहीं होता है। विज्ञापक की इच्छानुसार ये विज्ञापन समाचार–पत्र में किसी भी पृष्ठ पर दिये जा सकते है। इन विज्ञापनों में रंगों आकर्षक अक्षरों तथा चित्रों का प्रयोग किया जाता है तथा वस्तु की विशेषताएं एवं मिलने के स्थान के बारे में जानकारी दी जाती है।

समाचार पत्रों के माध्यम से विज्ञापन का क्षेत्र व्यापक होता है तथापि इनका जीवन अल्पकालीन होता है तथा केवल शिक्षित वर्ग के लिये उपयुक्त होते है।

(3) पत्रिका विज्ञापन –

विभिन्न साप्ताहिक, पाक्षिक मासिक त्रैमासिक पत्रिकाओं में जो विज्ञापन प्रकाशित होते है उन्हें पत्रिका विज्ञापन कहा जाता है। पत्रिकायें आर्थिक, धार्मिक, फिल्मी, राजनैतिक, साहित्यिक प्रकार की होती है। इण्डिया टुडे, गृहशोभा, वामा, सरिता, सहेली, योजना, खेल जगत, बिजनेस वर्ल्ड, आदि देश में छपने वाली प्रमुख पत्रिकायें है। पत्रिका विज्ञापन समाचार पत्रीय विज्ञापन की तुलना में अधिक सुसज्जित एवं आकर्षक तथा दीर्घ जीवी होते है।

(4) सैण्डविच मैन विज्ञापन –

सैण्डविच मैन विज्ञापन में कुछ लोगों को विचित्र वेशभूषा पहना दी जाती हैं एवं उनके चारों और विज्ञापित वस्तु के पोस्टर लगा दिये जाते है। सैण्डविच मैन के विचित्र पहनावे कारण जनसामान्य का ध्यान इनकी और खिंच जाता है और जन सामान्य इनके चारों ओर लगे पोस्टर को पढ सकते है। इस तरह से भी विज्ञापन हो जाता है। बीडी, सिगरेट के निर्माता सैण्डविच मैन विज्ञापन को काम में लेते है।

(5) डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन –

डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन में विज्ञापक संभावित ग्राहकों को विज्ञापन सामग्री डाक द्वारा भेजता है। इसमें ग्राहकों को विक्रय पत्र, गश्ती पत्र, केटलॉग, मूल्य सूची, फोल्डर, पुस्तिकाऐं आदि भेजे जाते है ताकि उन्हें क्रय करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके।

डाक द्वारा विज्ञापन में व्यवसायी और उपभोक्ता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क बना रहता है एवं उपभोक्ता को विस्तृत संदेश दिया जा सकता है।

(6) मनोरंजन विज्ञापन–

मनोरंजन विज्ञापन के साधनों में रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, रेडियो, केसेट, मेले, प्रदर्शनियों तथा ड्रामा व संगीत कार्यक्रम को सम्मिलित किया जाता है। रेडियो एवं टेलीविजन विज्ञापन के महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय साधन है। टी.वी. विज्ञापन की सुविधा राष्ट्रीय टेलीविजन, अन्तर्राष्ट्रीय टेलीविजन एवं स्थानीय केवल पर उपलब्ध है।

सिनेमा विज्ञापन में विज्ञापन कर्ता सिनेमा स्लाइड के माध्यम से या विज्ञापन के उद्देश्य से बनी फिल्म दिखाकर विज्ञापन करते है। विडियों कैसेट फिल्म, नाटक, शैक्षणिक, कार्यक्रम आदि से सम्बन्धित होती है। इसमें कार्यक्रमों या फिल्म के बीच–बीच में विज्ञापन दिये जाते है।

मेले एवं प्रदर्शनियों में संस्थाओं अपने–अपने मंडप लगाकर वस्तुओं का विज्ञापन एवं प्रदर्शन करती है। राजस्थान में पुष्कर का मेला आदि मे कम्पनियाँ अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करती है।

(7) क्रय बिन्दु विज्ञापन –

क्रय बिन्दु विज्ञापन से आशय दुकान की वातायन एवं काउन्टर की सजावट से है ताकि राह चलता ग्राहक वातावरण एवं काउन्टरों में सजी हुई वस्तुओं को देखकर दुकान में आने के लिये प्रेरित हो सके। वातायन सजावट में अलमारियों में वस्तुओं को आकर्षक ढंग से सजाया जाता है। वातायन में रखी वस्तुओं को समय–समय पर परिवर्तित करते रहना चाहिये। विभागीय भण्डारों, रेडिमेड गारमेन्ट्स, खिलौने, साडियों की दुकानों में वातायन संजावट को विशेष महत्व दिया जाता है।

काउन्टर को आकर्षक ढंग से सजाने से ग्राहक वस्तु क्रय करने के लिये प्रोत्साहित होते है। काउन्टर पर सभी प्रकार की वस्तुओं के नमूने सजावट रखे जाते है।

विज्ञापन के लाभ –

विज्ञापन संप्रेषण का माध्यम है। इसके लाभ निम्न लिखित है–

(1) मितव्ययता –

विज्ञापन के माध्यम से बडी संख्या में दूर–दूर तक फैले लोगों तक पहुंचने का कम खर्चीला संप्रेषण का साधन है। विज्ञापन का कुल खर्च संप्रेषण द्वारा बनाए घटकों में बांट दिया जाता है जिससे प्रति लक्षित इकाई लागत कम हो जाती है।

(2) स्पष्टता–

विज्ञापन ग्राहको की नये उत्पाद में रूचि जाग्रत करता हैं। कला, कम्प्यूटर डिजाइन एवं ग्राफिक्स के विकास के साथ–साथ आज विज्ञापन संप्रेषण का सशक्त माध्यम में विकसित हो चुका हैं। विशेष प्रभावोत्पादन के कारण सरल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उत्पाद एवं सन्देश भी बहुत आकर्षक लगने लगते है।

(3) सूचना –

विज्ञापन एक संचार का साधन है जो उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बाजार में उपलब्ध वस्तुओं की जानकारी देता है। इसके द्वारा उपभोक्ता यह जान लेता है कि किस–किस तरह की वस्तुएँ बाजार में उपलब्ध है उन्हें किस स्थान से खरीदा जा सकता है तथा वह उपभोक्ता के लिये कितनी उपयोगी है। विज्ञापन उपभोक्ता को सूचना देने का सबसे सरल, सस्ता व प्रभावी माध्यम है जो ज्यादा से ज्यादा लोगों को वस्तु व सेवाओं की जानकारी देता है।

(4) विश्वास व आश्वासन –

प्रत्येक उपभोक्ता और निर्माता आपस में सीधे सम्पर्क में नहीं रह सकते इसलिये निर्माता उपभोक्ता को वस्तु के प्रति विश्वास दिलाने के लिये विज्ञापन का सहारा लेता है। उपभोक्ता वस्तु खरीदने के बाद जब उसका उपयोग करता है और वह उसे विज्ञापन द्वारा बताये गये गुणों के अनुसार पाता है तब वह उस वस्तु के निर्माता की छवि पर विश्वास कर लेता है तथा उसके द्वारा बनाये गये अन्य नये उत्पादों पर भी विश्वास करने का आश्वासन उपभोक्ता को मिलता है। उपभोक्ता परिचित ब्रान्ड वाली वस्तु को अधिक महत्व देता है चाहे उसे खरीदने के लिये अन्य प्रतिस्पर्धी वस्तु से उसका अधिक मूल्य ही क्यों न चुकाना पडे। उपभोक्ता को यह विश्वास विज्ञापन से ही मिलता है।

(5) सुविधा–

विज्ञापन वस्तु की ब्राण्ड इमेज बनाता है जो वस्तु की बिक्री के लिये महत्वपूर्ण होती है। एक अच्छे ब्राण्ड की वस्तु को खरीदने एवं बेचने में सुविधा रहती है क्योंकि उपभोक्ता उस वस्तु को जांचने–परखने की आवश्यकता नहीं समझता है। उस वस्तु के (पैकेज) डिब्बे पर वस्तु का वजन, रंग, संख्या आदि लिखी होती है तथा उसका मूल्य भी अंकित रहता है जिससे उपभोक्ता व विक्रेता के समय की बचत होती है व खरीदने व बेचने में सुविधा रहती है।

(6) पसन्द की स्वतन्त्रता –

आज के इस भौतिकवादी युग में बहुत से प्रतिस्पर्धी ब्राण्ड नामों वाली वस्तुएं बाजार में उपलब्ध है। विज्ञापन उपभोक्ता को इन बहुत से ब्राण्ड नाम वाली वस्तुओं की जानकारी देता है जिससे कि उपभोक्ता इनमे से अपनी पसन्द की वस्तु का क्रय कर सके। उपभोक्ता किसी एक ब्राण्ड पर सन्तुष्ट नहीं होता है तो वह दूसरी ब्राण्ड की वस्तु खरीद सकता है जो उसकी आवश्यकता पूरी करती है और सदैव उसका उपयोग सुविधा पूर्वक कर सकता है।

उक्त बिन्दुओं के अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि विज्ञापन से प्राप्त होने वाले लाभों के कारण विज्ञापन ने समाज में अपनी जड़ें जमा रखी है। विज्ञापन व्यापार के लिये एक औजार के रूप में कार्य करता है।

विज्ञापन के दोष –

कुछ लोगों का विचार है कि विज्ञापन बेकार है व यह बेकार वस्तुओं को बेचने में सहायता करते है। विज्ञापन के प्रमुख दोष इस प्रकार है–

(1) कम असरदार –

विज्ञापन सम्प्रेषण का गैर वैयक्तिक स्वरूप है। यह व्यक्तिगत विक्रय की तुलना में कम सशक्त माध्यम है इसमें संदेश पर ध्यान देने के लिये लोगों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं होता है।

(2) दोषपूर्ण विक्रय संगठन –

विज्ञापन संभावित क्रेताओं को वस्तु खरीदने के लिये प्रेरित करता है एवं उन्हें आकर्षित करके दुकान तक ले आता है परन्तु यदि विक्रय कर्ता अकुशल है तो विज्ञापन प्रभावहीन हो जाता है।

(3) प्रतिपोषण की कमी –

विज्ञापन संदेश ने उपभोक्ता पर कितना प्रभाव डाला इसका मूल्यांकन करना कठिन है क्योंकि इसके द्वारा प्रसारित सन्देश की तुरन्त एवं सही प्रतिपोषण की व्यवस्था नहीं है।

उचित विज्ञापन माध्यम का अभाव– विज्ञापन माध्यम का चुनाव करते समय उसकी लागत वस्तुओं की प्रकृति, क्रेताओं की प्रकृति को ध्यान में रखकर चुनाव करना चाहिये। विज्ञापन का उचित माध्यम नहीं अपनाने से विज्ञापन प्रभावहीन एवं महत्वहीन हो जाता है।

(4) घटिया किस्म की वस्तुएँ –

यदि वस्तु की किस्म निम्न श्रेणी की है तो विज्ञापन के सहारे प्रतिस्पर्द्धा में नहीं टिका जा सकता है। घटिया किस्म की वस्तुओं को विज्ञापन के माध्यम से एक बार ही बेचा जा सकता है। लम्बे समय तक झूठे विज्ञापनों के आधार पर वस्तुओं की बिक्री संभव नहीं है।

(5) लोचपूर्णता की कमी–

विज्ञापन संदेश निर्धारित मानक का होता है एवं विभिन्न ग्राहक समूहों की आवश्यकता के अनुसार नहीं ढाला जा सकता है। इसलिये विज्ञापन में लोच की कमी होती है।

(6) विक्रेता बाजार–

जिन वस्तुओं में विक्रेता बाजार की स्थिति होती है उन वस्तुओं को बेचने के लिये विक्रेता को पृथक से प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। विक्रेता बाजार में वस्तुओं की माँग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्वतः ही बनी रहती है। उदाहरण के लिये कैरोसिन एवं रसोई गैस (एल.पी.जी.) में विक्रेता बाजार होने के कारण विज्ञापन महत्वहीन होता है।

(7) बेलोचदार माँग वाली वस्तुएँ–

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन की तुलना में इसकी माँग में होने वाले परिवर्तन की मात्रा कम होती है तो उसे बेलोचदार माँग कहते है। साथ ही जिस वस्तु के मूल्य में परिवर्तन का माँग पर कोई प्रभाव नहीं पडता तो उसे पूर्ण बेलोचदार मॉग कहते है। अतः बेलोचदार वस्तुओं हेतु विज्ञापन करने पर भी उनके विक्रय/मॉग में वृद्धि नहीं होती है। उदाहरण के लिये हम नमक का उपयोग निश्चित मात्रा में करते है हम इसकी अधिक मात्रा नहीं खरीदते हैं।

(8) जन सामान्य की रूचि, रीति–रिवाज व भावनाओं के विरूद्ध विज्ञापन–

व्यक्ति अपनी सामाजिक–धार्मिक भावनाओं, रीति–रिवाजों एवं रूचियों के अनुरूप वस्तुऐं क्रय करता है। यदि विज्ञापित वस्तु उसकी भावनाओं रूचियों व रीति–रिवाज के अनुरूप नहीं है। तो विज्ञापन का उस पर प्रभाव नहीं पडता हैं उदाहरण के लिये सात्विक भोजन करने वाले व्यक्ति के लिये माँस एव मदिरा का विज्ञापन व्यर्थ है।

विज्ञापन की आवश्यकता–

आज के वैज्ञानिक युग में प्रतिदिन नयी–नयी वस्तुओं का निर्माण होता है। वस्तु–निर्माता अपनी वस्तु की जानकारी उपभोक्ता को देना चाहता है जिसके लिये संचार व्यवस्था की आवश्यकता को विज्ञापन के मध्य संचार व्यवस्था की आवश्यकता होती है निर्माता और उपभोक्ता के मध्य संचार व्यवस्था की आवश्यकता को विज्ञापन द्वारा ही पूरा किया जाता हैं। निर्माता अपना उत्पादन या सेवायें बेचने और उसकी मॉग बढाने की इच्छा रखता है। वह विज्ञापन द्वारा उस वस्तु की जानकारी उपभोक्ता को देता है तथा उपभोक्ता को वस्तु खरीने के लिये प्रेरित करता हैं निर्माता और उपभोक्ता की जरूरतों को पूरा करने के लिये विज्ञापन ही सबसे सरल, सस्ती व प्रभावशाली को सहयोग प्रदान करता हैं जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है

1. नये उत्पादन की जानकारी–

निर्माता अपने नये उत्पादन को बाजार में बेचने के लिये विज्ञापन के द्वारा ही उपभोक्ता (संम्भावित ग्राहकों) को जानकारी देता है कि वह अमुक वस्तु का निर्माण कर रहा है जो उपभोक्ता के लिये किस प्रकार उपयोगी है तथा उस वस्तु के उपयोग से उपभोक्ता को क्या–क्या लाभ होंगे और वह किस प्रकार से उस वस्तु का उपभोग कर सकता है विज्ञापन का कार्य वस्तु के बाजार में आने से पहले ही उसकी बिक्री के लिये माहौल तैयार करना तथा बाजार में उसके सम्मानित ग्राहकों की खोजकर उन्हें वस्तु खरीदने के लियें प्रेरित करना है। जिससे नयी वस्तु की संभावित एवं सतत् बिक्री हो तथा वह अपने को बाजार में स्थापित कर सकें।

2. उत्पादन की नवीनता की सूचनाः–

निर्माता द्वारा अपने उत्पाद में किये गये बदलाव जैसे वस्तु का रंग बदलना, खुशबू बदलना, वजन का बदलाव पैकेज बदलना, वस्तु की गुणवत्ता में बदलाव करना तथा अन्य सभी तरह के बदलाव जो वस्तु में किये गये है, की जानकारी निर्माता विज्ञापन द्वारा उपभोक्ता को देता है। जिससे कि उपभोक्ता वस्तु से सम्बन्धित किसी भी बदलाव से भ्रमित नहीं हो और वह उस वस्तु को खरीदने में हिचक महसूस नहीं करें कि वह वस्तु वही वस्तु है जिसे वह हमेशा से खरीदता आया है।

3. नये ग्राहकों की तलाशः–

विज्ञापन ही वस्तु को खरीदने के लिये नये–नये ग्राहको को तैयार करता है। विज्ञापन द्वारा प्रयास किया जाता है कि वस्तु की अधिक से अधिक सतत् बिक्री होती रहे। प्रतिस्पर्धात्मक उत्पादनों के इस दौर में विज्ञापन नये ग्राहकों को अनेक उत्पादों में से किसी एक उत्पाद को खरीदने के लिये प्रेरित करके वस्तु की बिक्री को बढाता है।

4. उपभोक्ता को उत्पाद की सही जानकारीः–

बाजार में विभिन्न कम्पनियों के एक जैसे उत्पाद मौजूद रहते है। जिनको देखकर उपभोक्ता भ्रमित हो जाता है कि इनमें से कौनसी वस्तु उसके वास्तविक उपयोग के लिये है तथा वह वस्तु उसके लिये कितनी उपयोगी रहेगी । उस वस्तु की खरीद पर निर्माता द्वारा उपभोक्ता को कोई अन्य लाये जैसे मुफ्त में उपहार आदि दिया जा रहा है, कोई प्रोत्साहन कूपन या मुल्य में छुट दी जा रही है आदि की जानकारी भी विज्ञापन द्वारा उपभोक्ता को दी जाती है, जैसे बाजार में उपलब्ध कपडे धोने के अनेक तरह के पाउडरों में से किस तरह का पाउडर कौन से कपडों के लिये सही रहेगा, जैसे–सूती कपड़ों के लिये कौनसा ऊनी कपड़ा के लिये कौन सा तथा सिल्क के कपड़ा के लिये कौन सा। जिससे उपभोक्ता अपनी आवश्यकतानुसार वस्तु को खरीद कर उसका उपयोग कर सके और उसे निर्माता द्वारा दी जाने वाली छूट या

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अन्य इनामी योजना का लाभ मिल सके।

5. विक्रेता की सहायता :–

जिस वस्तु का विज्ञापन पहले से किया जा रहा होता है उसे वस्तु का बेचने में विक्रय अभिकर्ता को सुविधा रहती है क्योंकि उपभोक्ता विज्ञापन के द्वारा उस वस्तु की गुणवता व उपयोगिता के बारे में जान लेता है।

6. मूल्य में बदलाव की जानकारी :–

वस्तु के निर्माण में लागत के कम–ज्यादा होने के कारण निर्माता द्वारा अपने के मूल्य में परिवर्तन/बदलाव किया जाता है तो वस्तु के मूल्य में किये गये बदलाव की जानकारी निर्माता उपभोक्ता को विज्ञापन के द्वारा ही देता है। कि उसने उक्त वस्तु के मूल्य में कितना बदलाव किया है ताकि उपभोक्ता को वस्तु खरीदते समय किसी तरह का भ्रम नहीं हों और वह आसानी से वस्तु खरीदे जिससे कि वस्तु की बिक्री पर भी किसी तरह का विपरित प्रभाव नही पडे और वस्तु की सतत बिक्री बनी रहे ।

विज्ञापन का महत्व

आज का युग विज्ञापन का युग है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञापन छाया हुआ है। विज्ञापन व्यवसाय के लिये तो महत्वपुर्ण है ही, इससे समाज में भी जागरूकता बढ़ती है और व्यक्ति अपने अधिकारों, आवश्यकताओं और सामाजिक बुराइयों से लडने को प्रेरित होता है। विज्ञापन से वस्तु की मॉग बढ़ती है। जिससे विक्रय में वृद्धि होती है, ग्राहकों को क्रय में सुविधा रहती है एवं संख्या की ख्याति में वृद्धि होती है। इसलिये यह कहा जाता है कि विज्ञापन पर किया गया व्यय विनियोग है। विज्ञापन के महत्व को हम इस प्रकार समझ सकते है।

1. निर्माताओं के लिए महत्व
2. उपभोक्ताओं के लिये महत्व
3. मध्यस्थों के लिये महत्व
4. समाज एवं राष्ट्र के लिये महत्व

निर्माताओं के लिए विज्ञापन से महत्त्व :

1. प्रतिस्पर्धा में सहायकः–

प्रतिस्पर्धा संस्थाओं से आगे निकलने के लिये व प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करने के लिये उत्पादक, धुआँधार विज्ञापन का सहारा लेते है।

2. विक्रेताओं के लिए मार्ग प्रशस्त करता है :–

विज्ञापन के द्वारा वस्तु की किस्म, मूल्य, पैकिंग, प्रयोग छूट,स्कीम आदि की जानकारी प्रदान की जाती है जिसमें विक्रेता को वस्तु बेचने में सुगमता रहती है।

3. मध्यस्थों की प्राप्ति :–

प्रभावी एवं निरन्तर विज्ञापन करने वाली संस्था की साख चहुं ओर फैल जाती है जिससे प्रतिष्ठित व सुदृढ़ साधनों वाले मध्यस्थ एक निर्माता को अपनी सेवायें देने को तत्पर रहते है।

4. नवीन वस्तुओं के उत्पादन में सहायकः–

विज्ञापन द्वारा नयी–नयी वस्तुओं की मॉग उत्पन्न की जाती है। इस तरह यह नवीन वस्तुओं के उत्पादन में सहायक सिद्ध होता है।

5. व्यवसाय का विकासः–

विज्ञापन से वस्तुओं की विक्रय में वृद्धि होती है। परिणाम स्वरूप संस्था के लाभों में वृद्धि होती है। अधिक लाभों की सहायता से व्यवसाय की पुरानी मशीनों एवं उपकरणों के स्थान पर नई एवं अद्यतन मशीनें क्रय की जा सकती है एवं नवीन इकाइयों की स्थापना कर व्यवसाय का विस्तार किया जा सकता है।

6. विक्रय में वृद्धिः–

बर्तन के शब्दों में विज्ञापन निरन्तर मांग का सृजन करने में सहायता करता है। आवश्यकता पूर्ति हेतु ग्राहक वस्तु को खरीदता है। जिससे विक्रय में वृद्धि होती है।

7. उत्पादन में वृद्धिः–

विज्ञापन वस्तु की मांग बढाता है उस मांग को पूरी करने के लिये उत्पादन में वृद्धि करनी होती हैं।

8. मितव्ययताः–

विज्ञापन से मांग में वृद्धि फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन में वृद्धि करने से अर्थात् बड़े पैमान पर उत्पादन करने से उत्पादक को कई प्रकार आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययतायें प्राप्त होती है। परिणामस्वरूप वस्तु की उत्पादन लागत एवं प्रति इकाई लागत में कमी आती है

9. अधिक लाभः–

विज्ञापन के द्वारा अधिकाधिक विक्रय होने के कारण उत्पादन को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

10. ख्याति में वृद्धिः–

बार–बार एवं विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन करने से ग्राहक को संस्था की उपलब्धियों एवं वस्तु की विशेषताओं की जानकारी मिलती है परिणाम स्वरूप उसके मन में संस्था की प्रतिष्ठा बन जाती हैं। हमारे देश में टाटा, बिड़ला, बजाज, रेमेण्ड्स आदि की प्रतिष्ठा में विज्ञापन के कारण महत्वपूर्ण अभिवृद्धि हुई है।

2. उपभोक्ता के लिये महत्व

1. शिक्षाप्रदः–

विज्ञापन से उपभोक्ता को नयी–नयी वस्तुओं एवं उनके उपयोग के बारे में जानकारी मिलती है। जिससे ग्राहकों के ज्ञान में वृद्धि होती है।

2. समय की बचतः–

विज्ञापन के माध्यम से ग्राहक को घर–पर बैठे–बैठे ही वस्तु की कीमत एवं उपलब्धि स्थान की जानकारी मिल जाती है। वस्तु क्रय के लिये इधर–उधर नहीं घूमना पड़ता फलस्वरूप समय की बचत होती है।

3. क्रय में सुविधाः–

विज्ञापन द्वारा ग्राहक को वस्तु की उपलब्धि, कीमत, उपयोग आदि के बारे में जानकारी मिल जाती है जिससे वह विभिन्न वस्तुओं की तुलना करके विवेकपूर्ण एवं सुविधापूर्वक क्रय कर सकता है।

4. उत्तम किस्म की वस्तुओं की उपलब्धताः–

विज्ञापन के अनुरूप वस्तु नहीं मिलने के कारण उपभोक्ता ऐसी वस्तुओं को जल्दी ही प्रचलन से बाहर कर देते हैं अतः विज्ञापन निर्माता को अपने उत्पाद की किस्म को बनाये रखने एवं उसमें सुधार करने के लिये विवश करता हैं परिणाम स्वरूप ग्राहकों को उत्तम किस्म की वस्तुएं प्राप्त होती है।

5. जीवन स्तर में सुधारः–

सर विन्सतन चर्चिल के अनुसार विज्ञापन अच्छे जीवन स्तर के लिये मांग उत्पन्न करता है। विज्ञापन से वस्तु के प्रति ग्राहक में रूचि जाग्रत होती है। व ग्राहक इनका उपयोग करके जीवन स्तर में सुधार करता है।

6. उपभोक्ता बचतः–

विज्ञापन द्वारा ग्राहकों को विभिन्न वस्तुओं, उनकी स्थानापन्न वस्तुओं, कीमत, उपलब्धता गारन्टी, वारन्टी, उपयोगिता के बारे में जानकारी देता हैं इससे उपभोक्ता अपने धन का विवेकपूर्ण उपयोग कर सकते है एवं वस्तुओं से दी गई कीमत की तुलना में अधिक उपयोगिता प्राप्त कर सकते हैं।

3. मध्यस्थों के लिये महत्व

1. निर्माताओं से सम्पर्कः–

निर्माता अपने उत्पाद का विज्ञापन करते है जिससे मध्यस्थ निर्माताओं से उनकी एजेन्सी लेने हेतु सम्पर्क करते है। इसकी और विभिन्न थोक एवं फुटकर व्यापारी भी विज्ञापन करते है। जिससे निर्माता इन विज्ञापनों के आधार पर इन मध्यस्थों से व्यावसायिक सम्पर्क कर सकते है।

2. विक्रय में सहायता :–

विज्ञापन में वस्तु के डीलर/एजेन्ट/थोक व्यापारी आदि का उल्लेख होता है। इससे ग्राहक मध्यस्थों के पास स्वयं आ जाते है। इसके अतिरिक्त विज्ञापन से उपभोक्ताओं को वस्तु के बारे में अनेक जानकारिया जैसे–वस्तु की कीमत, किस्म, उपयोग विधि, छूट होती है जिससे विक्रेता को विक्रय हेतु अधिक प्रयास नही करने पडते है।

3. जोखिम में कमीः–

विज्ञापन के प्रभाव में मध्यस्थों का माल शीघ्र बिक जाता है अतः विक्रेता को फैशन में परिवर्तन आदि से माल के बेकार हो जाने का भय नहीं रहता है।

4. लाभों में वृद्धिः–

निर्माता द्वारा विज्ञापन किये जाने के कारण उसका लाभ स्वतः ही मध्यस्थों को मिल जाता है उनको स्वयं विज्ञापन की आवश्यकता नहीं रहती , विक्रय अधिक होता है व ज्यादा विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति नही करनी पडती जिससे खर्चों में कमी आती है व लाभों में वृद्धि होती है।

5. अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अन्तः–

विज्ञापित वस्तु के मुल्यों पर निर्माता का नियन्त्रण रहता है। फलस्वरूप अनावश्यक प्रतिस्पर्धा का अन्त हो जाता है।

6. विक्रेताओं को प्रोत्साहनः–

निर्माता विक्रय की मात्रा के आधारपर विक्रयकर्ताओं का कमीशन/पुरस्कार देते हैं। इससे विक्रय अधिक विक्रय करने को प्रोत्साहित होते है परिणाम स्वरूप उनकी आय में वृद्धि होती हैं।

4. समाज के लिये महत्व

1. विज्ञापन किसी भी राष्ट्र का जीवन–शैली की झलक दिखाता है।
2. रोजगार के अवसर बढाता है, जिससे लोगों को रोजगार मिलता हैं।
3. विज्ञापन से उत्पादन की मांग बढती है, मांग बढने से उत्पान की लागत में कमी आती है एवं लोगों को सस्ती कीमत पर वस्तु उपलब्ध होती है व समाज के लोगों को जीवन स्तर बढाता हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. विज्ञापन खोज को बढ़ावा देता है जिससे नये–नये उत्पादों का निर्माण होता है।
5. विज्ञापन समाज के लोगों को उनकी आवश्यकता के अनुसार वस्तुए उपलब्ध करवाता है।
6. लोगों को पढने के लिये प्रेरित करता है। जिससे देश की साक्षरता दर में वृद्धि होती है।
7. विज्ञापन समाज के लोगों को सामाजिक बुराईयों से लडने की प्रेरणा देता है।
8. संचार या ध्यय को सक्षम बनाता है। एक सक्षम माध्यम ही लोगों को पक्षपात रहित सूचनाएँ और संदेश दे सकता हैं।
9. विज्ञापन द्वारा ही लोगों को सस्ती दर पर मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते है।

विज्ञापन की तकनीकः–

विज्ञापन की तकनीक आज हर कम्पनी अपने उत्पाद के बारे में ग्राहकों को सूचित बिक्री का अधिग्रहण बाजार मूल्य में वृद्धि और प्रतिष्ठा और नाम हासिल करने के लिये अपने उत्पाद का विज्ञापन करने की जरूरत है। हर व्यवसाय, अपने उत्पादों के विज्ञापन के लिये बहुत सारा पैसा खर्च करना पडता है लेकिन खर्च किया हुआ पैसा खर्च करना पडता है लेकिन खर्च किया हुआ पैसा तभी सफल होता है, जब उत्पादों के लिये विज्ञापन की बेहतरीन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिये विज्ञापन दाताओं द्वारा कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। अधोलिखित बिन्दुओं द्वारा इन तकनीकों का अध्ययन किया जा सकता है।

1. भावनात्मक अनुरोधः–

विज्ञापन की यह तकनीक दो कारकों की मदद पर आधारित होती है उपभोक्ता की आवश्यकतायें एवं भय कारक / उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अन्तर्गत भावनात्मक अपील निम्न बिन्दुओं से भली प्रकार समझी जा सकती हैं

- कुछ नया करने की जरूरत
- स्वीकृति प्राप्त करने की जरूरत
- नजर अन्दाज नहीं करने की जरूरत
- पुरानी चीजें के बदलाने की जरूरत
- सुरक्षा की जरूरत
- आकर्षक बनने की जरूरत
- भय के अन्तर्गत आय अपील इस प्रकार है।
- दुर्घटना का डर
- मौत का डर
- टाले जाने का डर
- बीमार होने का डर
- पुराने होने का डर

2. प्रचार के लिये विज्ञापनः–

इस तकनीक के अन्तर्गत उपभोक्ताओं को उत्पाद के मुफ्त नमूने देना शामिल है। ग्राहकों का ध्यान हासिल करने के लिये व्यापार मेला, प्रचार, की घटनाओं और विज्ञापन अभियान के माध्यम से अपने उत्पादों को खरीदने की पेशकश की जाती हैं

3. गाडी में सवार विज्ञापन :–

विज्ञापन की इस तकनीकी के अन्तर्गत ग्राहकों / लोगों को एक समूह में शामिल होने के लिये प्रेरित किया जाता है जिन्होंने उस उत्पाद को खरीदा है और जो आगे की ओर अग्रसर हैं उदाहरण के लिये पेन्टीन शैम्पू विज्ञापन का कहना है कि 15 करोड महिलाओं का भरोसा पेन्टीन पर आज भी है।

4. तथ्य एवं आंकडेः–

इसके अन्तर्गत विज्ञापन दाता नम्बर, सबुत और वास्तविक उदाहरण का उपयोग कर अपने उत्पादों को अच्छा बताने का प्रयास करते है उदाहरण के लिये कोलगेट दुनिया के 70 प्रतिशत दन्त चिकित्सकों द्वारा उपयोग करने की सलाह दी गई है।

5. अधूरा विज्ञापनः–

इसके अन्तर्गत विज्ञापन दाता यह बताते है कि इनका उत्पाद अच्छा काम करता है किन्तु यह नहीं बताते कि प्रतिद्वन्दी से कितना अधिक अच्छा काम करता है। उदाहरण के लिये प्रतिदिन अधिक पोषण के लिये हार्लिक्स यह विज्ञापन यह नहीं बताता कि और कितना अधिक न्यूट्रिशन मिलता है।

6. समर्थनः–

इसके अन्तर्गत विज्ञापन दाता बडी हस्तियों का उपयोग अपने उत्पादों का विज्ञापन करने के लिए करते है। बड़ी हस्तियों या स्टार अपने अनुभवों को बताकर किसी उत्पाद को खरीदने का समर्थन करते हैं जैसे हाल ही में सुपर स्टार अभिताभ बच्चन एवं उनकी पत्नी जया बच्चन ने एक ज्वैलरी उत्पाद के लिये विज्ञापन दिया था इसके अन्तर्गत यह बताया गया कि किस प्रकार जया बच्चन को उक्त उत्पाद ने प्रभावित किया ।

7. आदर्श परिवार और आदर्श बच्चेः–

विज्ञापन दाता इस तकनीक का इस्तेमाल यह बताने के लिए करते है कि उनके उत्पाद का प्रयोग करने वाले परिवार भाग्यशाली होते है। उदाहरण के लिए डिटोल साबुन का विज्ञापन यह बताता है कि जो परिवार उसका उपयोग करते है वो हमेशा रोगाणुओं से सुरक्षित रहते है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

8. देश भक्ति विज्ञापनः—

इस प्रकार के विज्ञापन यह दर्शाते हैं कि उक्त उत्पाद या सेवा का उपयोग करने वाला व्यक्ति किस प्रकार अपने देश का समर्थन कर सकता है। उदाहरण के लिये कुछ उत्पादों को एक साथ या उनमें से किसी एक को खरीदने के लिए उनके विज्ञापन में दावा किया जाता है कि आप स्कूल जाने के लिए बच्चे की मदद करने जा रहें है।

9. ग्राहको से पुछताछः—

विज्ञापन की इस तकनीक के अन्तर्गत विज्ञापन दाता अपने उत्पादों के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया जानने के लिए उपभोक्ता से सवाल पूछते है।

10. छूटः—

इस तकनीक के अन्तर्गत विज्ञापन दाता अपने उत्पादों को बेचने के लिये उत्पादों की कीमत में कुछ छूट देने का प्रस्ताव उपभोक्ताओं से करते है जैसे एक शर्त खरीदने के दो एक शर्त मुफ्त या किसी क्लब के दो साल के लिये सदस्य बनने पर सभी सेवाओं या उत्पादों पर 20 प्रतिशत की छूट आदि ।

11. सरोगेट विज्ञापनः—

विज्ञापन की इस तकनीक के अन्तर्गत वो कम्पनियॉ आती है जो अपने उत्पादों के प्रत्यक्ष विज्ञापन नहीं करती हैं। ये विज्ञापन दाता अपने उत्पादों को बेचने के लिये अप्रत्यक्ष तकनीकों का इस्तेमाल करते हैं

विज्ञापन दाताओं द्वारा अपने उत्पादों के विज्ञापन के लिये उक्त प्रमुख तकनीकों का इस्तेमाल के लिये उक्त प्रमुख तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। यहॉ कुछ ऑनलाइन विज्ञापन के लिये भी विभिन्न तकनीक इस्तेमाल जी जा रही है जिससे एक बैनर वेब पन्नों पर जगह है, लिंक विज्ञापन, प्रोडक्ट वेबसाइट आदि हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

विज्ञापन अव्यैक्तिक सन्देश होता हे। इनमें सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, परिवहन के साधनों, पत्र—पत्रिकाओं, बाह्य साइन बोर्डो एवं अन्य साधनों द्वारा जन समुदाय को वस्तुओं एवं सेवाओं की जानकारी किया जाती है एवं उन्हें क्रय करने को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके लिये भुगतान विज्ञापन द्वारा किया जाता है।

विज्ञापन के उद्देश्यः—

(1) विक्रय वृद्धि (2) नये ग्राहक बनाना (3) नये बाजारों में प्रवेश करना (4) मध्यस्थों को आकर्षित करना (5) उपभोक्ता के खरीदने के उद्देश्य व किसी ब्राण्ड की वस्तु पर प्रभाव डालना (6) अपने उत्पाद या ब्राण्ड के प्रति उपभोक्ता की जागरूकता एवं जिज्ञासा को बढाना (7) वस्तु का प्रयोग एक बार करने के बाद बार—बार प्रयोग करने की आदत डालने के लिये उपभोक्ताओं की प्रोत्साहित करना (8) अन्य वस्तुओं से उपभोक्ता को अपनी वस्तु की तरफ परिवर्तित करना।

विज्ञापन के माध्यमः—

(1)बाह्य विज्ञापन (2) समाचार पत्रीय विज्ञापन (3) पत्रिका विज्ञापन (4) सैण्डविच मैन विज्ञापन (5) डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन (6) मनोरंजन विज्ञापन (7) क्रय बिन्दु विज्ञापन

विज्ञापन के लाभः—

(1) शिथिलता (2) स्पष्टता (3) सूचना (4) विश्वास व आश्वासन (5) सुविधा (6) पसन्द की स्वतन्त्रता

विज्ञापन के दोषः—

(1) क्रय असरदार (2) दोषपूर्ण विक्रय संगठन (3) प्रतिपोषण की कमी (4) घटिया किस्म की वस्तुयें (5) लोचपूर्णता की कमी (6) विक्रेता बाजार (7) बेलोचदार (मांग वाली वस्तुयें) (8) जन सामान्य की रूचि, रीति—रिवाज व भावनाओं के विरूद्ध विज्ञापन

विज्ञापन की आवश्यकताः—

(1) नये उत्पाद की जानकारी (2) उत्पाद की नवीनता की सूचना (3) नये ग्राहकों की तलाश (4) उपभोक्ता को उत्पाद की सही जानकारी (5) विक्रेता की सहायता (6) मूल्य में बदलाव की जानकारी

विज्ञापन का महत्वः—

(1) प्रतिस्पर्धा में सहायक (2) विक्रेताओं के लिये मार्ग प्रशस्त करता है। (3) मध्यस्थों की प्राप्ति (4) नवीन वस्तुओं के उत्पादन में सहायक (5) व्यवसाय का विकास (6) विक्रय में वृद्धि (7) उत्पादन में वृद्धि (8) अधिक लाभ (9) ख्याति में वृद्धि

1. उपभोक्ताओं को लाभः—

(1) शिक्षा के लिए महत्व (2) समय की बचत (3) क्रय में सुविधा (4) उत्तम किस्म की वस्तुओं की उपलब्धता (5) जीवन स्तर में सुधार (6) उपयोगिता एवं बचत

2. मध्यस्थों लिये महत्वः—

(1) निर्माताओं से सम्पर्क (2) विक्रय में सहायता (3) जोखिम में कमी (4) लाभों में वृद्धि (5) अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अन्त (6) विक्रेताओं को प्रोत्साहन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. समान के लिए महत्त्वः–

1. विज्ञापन की तकनीकेंः– (1) भावनात्मक अनूरोध (2) प्रचार के लिये विज्ञापन (3) गाड़ी में सवार विज्ञापन (4) तथ्य एवं आंकड़ें (5) अधूरा विज्ञापन (6) समर्थन (7) आदर्श परिवार और आदर्श बच्चे (8) देशभक्ति विज्ञापन (9) ग्राहकों से पूछताछ (10) छूट (11) सेरोगेट विज्ञापन

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 विज्ञापन से क्या आशय है?
प्र.2 विज्ञापन के दो उद्देश्य बताइये।
प्र.3 विज्ञापन के दो ध्यय बताइये।
प्र.4 विज्ञापन के दो लाभ बताइये।
प्र.5 वर्गीकृत विज्ञापन से क्या आशय है।
प्र.6 सैण्डविच मैन विज्ञापन से क्या आशय है।
प्र.7 विज्ञापन के कोई दो दोष बताइये।
प्र.8 विज्ञापन का निर्माताओं के लिय क्या महत्व है।
प्र.9 विज्ञापन का नियमिताओं के लिये क्या महत्व है। दो बिन्दु बताइयें
प्र.10 विज्ञापन का ग्राहक के लिये क्या महत्त्व है? दो बिन्दु बताइयें।
प्र.11 विज्ञापन का निर्माताओं के लिये क्या महत्त्व है? दो बिन्दु बताइये।
प्र.12 विज्ञापन का मध्यस्थों के लिये क्या महत्त्व है। दो बिन्दु बताइये।
प्र13 विज्ञापन की तकनीक के किन्हीं दो बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्र.1 विज्ञापन से क्या समझते है ? विज्ञापन के किन्ही पाँच उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
प्र.2 विज्ञापन के किन्ही पॉच माध्यमों का वर्णन कीजिए।
प्र.3 समाचार पत्रीय विज्ञापन पर टिप्पणी लिखिए।
प्र.4 बाह्य विज्ञापन पर टिप्पणी लिखिये।
प्र.5 विज्ञापन के लाभों को संक्षेप मे समझाइये।
प्र.6 विज्ञापन के दोषों के किन्हीं चार बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए।
प्र.7 विज्ञापन की आवश्यकता के किन्हीं चार बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए।
प्र.8 विज्ञापन का निर्माताओं के लिये महत्त्व को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
प्र.9 विज्ञापन का उपभोक्ताओं के लिये महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
प्र.10 विज्ञापन का समाज के लिये महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
प्र.11 विज्ञापन का मध्यस्थों के लिये महत्त्व को स्पष्ट कीजिये।
प्र.12 विज्ञापन की किन्हीं 5 तकनीकों का वर्णन कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र.1 विज्ञापन से आप क्या समझते है? एक व्यवसाय की वृद्धि एवं विकास में विज्ञापन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
प्र.2 विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
प्र.3 विज्ञापन का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं इसकी तकनीक को समझाइये।
प्र.4 विज्ञापन के महत्त्व पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
प्र.5 विज्ञापन के लाभों एवं दोषों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यापारिक विधि एवं अनुबंध अधिनियम
Business Law and Contract Act.

किसी देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, धार्मिक, तकनीकी विकास एवं कानून व्यवस्था, शान्ति व्यवस्था और सौहार्द का वातावरण बनाये रखने के लिये सरकार समाज व अन्य वर्ग रीतिरिवाजों, परम्पराओं, नियमों, उपनियमों के द्वारा गतिविधियों को संचालित करते है जिससे देश में पूर्ण शान्ति व्यवस्था, प्रभावी प्रबन्ध और संसाधनों का रचनात्मक एवं सृजनात्मक उपयोग हो सके। इस प्रयास को व्यवस्थित, प्रभावी एवं नियंत्रित करने के लिए विधि नियमन व्यवस्था व अन्य कानूनों की आवश्यकता होती है। व्यवसाय के क्षेत्र में भी व्यावसायिक क्रियाओं के द्रुत एवं निर्बाध संचालन तथा ई–कॉमर्स के वातावरण में अधिनियमों (विधि) की आवश्यकता है।

विधि–या–सन्नियम का अर्थ – (Meaning of Law)

सामान्य शब्दों में विधि का अर्थ किसी देश राज्य या स्थानीय सरकार द्वारा सामाजिक आर्थिक राजनैतिक क्षेत्र में मानवीय व्यवहार को व्यवस्थित व नियंत्रित करने के लिये सरकार द्वारा बनाये गये नियम, उपनियम, वैधानिक प्रक्रियाएं इत्यादि। इन्हे सन्नियम या राजनियम भी कहते है।

विद्वान के अनुसार –

राजनियम से आशय राज्य द्वारा मान्य एवं प्रयोग में लाये जाने वाले उन सिद्धान्तों के समूह से है जिनको वह न्याय के प्रशासन के लिए प्रयोग में लाता है।

व्यापारिक विधि का अर्थ (Meaning of Business Law)

प्रो. एम. सी. शुक्ला के अनुसार ''व्यापारिक सन्नियम (विधि) राजनियम की वह शाखा है जिसमें व्यापारिक व्यक्तियों के उन अधिकारों एवं दायित्वों का वर्णन होता है, जो व्यापारिक सम्पति के विषय में व्यापारिक व्यवहारों से उत्पन्न होते है।

सामान्य अर्थ में व्यापारिक व्यवहारों या लेन–देनों के नियमित, नियंत्रित व्यवस्थित व प्रभावी करने वाले वैधानिक नियमों के समूह को व्यापारिक सन्नियम (विधि) कहते है।

व्यापारिक विधि का क्षेत्र (Scope of Business Law)

व्यापारिक सन्नियम (विधि) के क्षेत्र में आने वाले अति–महत्वपूर्ण अधिनियम मुख्य रूप से निम्नलिखित है–

1. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872
2. वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930
3. भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932
4. विनियम साध्य विलेख अधिनियम, 1882
5. पंच निर्णय अधिनियम, 1940
6. कम्पनी अधिनियम, 2013
7. बैकिंग कम्पनी अधिनियम, 1949
8. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1956
9. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955
10. औद्योगिक सन्नियम
11. श्रम अधिनियम
12. बीमा अधिनियम
13. सेबी अधिनियम
14. विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम, 1999
15. पेटेन्ट, ट्रेडमार्क और कॉपीराइट अधिनियम
16. सूचना प्रौद्योगिक अधिनियम
17. माल परिवहन सम्बन्धी सन्नियम

भारतीय व्यापारिक विधि के स्त्रोत (Sources of India Business Law)

भारत में सैकड़ों वर्षों तक बिट्रिश राज रहा, इस कारण भारतीय व्यापारिक सन्नियम का मुख्य आधार स्त्रोत इग्लैण्ड के वाणिज्य अधिनियम पर आधारित है। लेकिन इसकी संरचना में भारत में उपलब्ध वातावरण, रीति–रिवाज, व्यापारिक व्यवहार तथा यहाँ की विशेष परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा गया है। भारतीय व्यापारिक सन्नियम के मुख्यतः स्त्रोत निम्नलिखित है–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. **इंगलिश कॉमन ला–**

यह इंग्लैण्ड का सर्वाधिक पुराना राजनियम है। इसकी रचना वहाँ क योग्य न्यायधीशों द्वारा महत्वपूर्ण मामलों में दिये गये निर्णयों के आधार पर की गई है।

2. **परिनियम–**

परिनियम का तात्पर्य उन अधिनियमों से है जो किसी भी देश की सांसद (**States**) प्रणाली के अन्तर्गत सांसद तथा विधानसभाओं द्वारा बनाये जाते है। जिसमें देश की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है।

3. **भारतीय रीति–रिवाज –**

ऐसे रीति–रिवाज अधिक स्पष्ट एवं प्रमाणिक होने पर न्यायालयों द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को उचित आधार, मार्गदर्शन करने में महत्त्वपूर्ण होते है।

4. **न्यायालयों द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण निर्णय–**

वर्तमान परिस्थतियों के ध्यान में रखते हुए नये–नये विषयों पर उत्पन्न विवादों पर अन्य न्यायालयों, सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों को अधीनस्थ (निम्न) न्यायालयों द्वारा निर्णय लेते समय दृष्टान्त के रूप में प्रयोग किया जाता है।

5. **न्याय–**

जब व्यापारिक विवादित मामलों के निष्पादन/निपटाने के लिए साधारण सन्नियम हल नहीं दे सकते तो न्यायालय को न्याय के आधार पर विवादों को निपटाने का अधिकार है।

अनुबन्ध अधिनियम, 1872 एक परिचय

अनुबन्ध अधिनियम व्यापारिक विधि–

सन्नियम की एक महत्वपूर्ण शाखा है। सामान्य जीवन में प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक क्षण किसी न किसी के सम्पर्क में आता है और यही सम्पर्क अनुबन्ध का आधार होता है, हम अपने जीवन की बहुत सी आवश्यकताओं को पूरा करने– घूमने फिरने के लिए, टैक्सी का प्रबन्ध करने,, पढ़ने की पुस्तकें, आवश्यकता की वस्तुऐं खरीदने, दर्जी से कपड़े सिलवाने, यात्रा या मनोंरजन के लिये टिकट खरीदने आदि अनेक दैनिक क्रियाकलापों के लिए अनुबन्ध करते ही रहते है। एक तरीके से हम सभी का जीवन अनुबन्धों पर आधारित है।

व्यावसायिक जगत में अनुबन्ध अधिनियम से व्यवसाय करने वाले पक्षकारों को अपने व्यापारिक अधिकारों की सुरक्षा प्राप्त होती है। अनुबन्ध अधिनियम के बिना समस्त व्यावसायिक जगत का भवन ढह जायेगा तथा सम्पूर्ण व्यावसायिक लेनदेन के बिना भय का वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 हमारे देश में सितम्बर 1872 को लागू किया गया था जिसमें कुल 266 धाराऐं थी। किन्तु इस अधिनियम से कुछ धाराओं को निरस्त कर सन् 1930 में वस्तु विक्रय अधिनियम, सन् 1932 में साझेदारी अधिनियम का निर्माण किया गया। इन परिवर्तनों के बाद वर्तमान में भारतीय अनुबन्ध की विषय वस्तु निम्न प्रकार है –

1. अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्त तथा अर्द्ध अनुबन्ध (धारा 1 से 75 तक)
2. हानि रक्षा तथा गारन्टी अनुबन्धों प्रावधान (धारा 124 से 147 तक)
3. निक्षेप तथा गिरवी अनुबन्धों सम्बन्धी प्रावधान (धारा 148 से 181 तक)
4. ऐजेन्सी अनुबन्धों सम्बन्धी प्रावधान (धारा 182 से 238 तक)

अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषाएत्त–

अनुबन्ध शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द "Contrautum" से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है ''आपस में मिलना'' अतः अनुबन्ध दो या दो से अधिक पक्षकारों (व्यक्तियों) के बीच किया गया एक ऐसा ठहराव है, जो पक्षकारों के मध्य वैधानिक दायित्वों एवं अधिकारों की उत्पत्ति करता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में भी अनुबन्ध की परिभाषा दी गई है। साथ ही विभिन्न विद्वानों एवं न्यायाधीशों ने भी अपने निर्णयों में इसे समझाया है। हम यहाँ कुछ विद्वानों द्वारा तथा अधिनियम में दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करते है–

1. **सर विलियम एन्सन के अनुसार –**

अनुबन्ध दो या दो से अधिक व्यक्तियो के बीच किया गया ठहराव है जिसे राजनियम द्वारा प्रवर्तित करवाया जा सकता है तथा जिसके अन्तर्गत एक या एक से अधिक पक्षकारों को दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के विरूद्ध कुछ अधिकार प्राप्त होते है।

2. **न्यायाधीश साइमण्ड के अनुसार–**

अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो पक्षकारों के बीच दायित्व उत्पन्न करता है और उनकी व्याख्या करता है।

3. **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2(H) के अनुसार**

''अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है, जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अनुबन्ध में मुख्यतः दो तत्त्व विद्यमान है–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. पक्षकारों के बीच ठहराव का होना एवं
2. उस ठहराव में राजनियम द्वारा लागू होने की योग्यता होना।
4. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 में अनुबन्ध की स्पष्टतः समझाया गया है कि सभी ठहराव अनुबन्ध है, जो न्यायोचित प्रतिफल और उद्देश्य के लिये अनुबन्ध करने की वाले पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से किये गये हो, जिन्हें स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न कर दिया गया हो और जो किसी विशेष अधिनियम के आदेश पर लिखित, साथी द्वारा प्रमाणित एवं रजिस्टर्ड हो।

इस सभी परिभाषाओं के विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुबन्ध में दो प्रमुख तत्त्व विद्यमान है–

(1) अनुबन्ध एक ठहराव है जो प्रस्ताव की स्वीकृति देने से उत्पन्न होता है।

(2) यह ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है तथा पक्षकरों के मध्य वैधानिक दायित्व उत्पन्न करता है।

सूत्र रूप में – अनुबन्ध = ठहराव+राजनियम द्वारा प्रवर्तनीयता

वैध अनुबन्ध के लक्षण अथवा आवश्यक तत्व

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(H) में अनुबन्ध की परिभाषा के संकेत मिलते है जबकि अधिनियम की धारा 10 में भी वैध अनुबन्ध के लक्षणों के सम्बन्ध में लिखा गया है। उन सभी लक्षणों की विवेचना निम्नानुसार है–

1. दो या दो से अधिक पक्षकार होना–

किसी भी वैध अनुबन्ध का प्रथम लक्षण है कम से कम दो पक्षकार होना। एक प्रस्तावक या वचनदाता ;च्तवचवेमतद्ध तथा दूसरा प्रस्तावगृहिता या वचनगृहिता (Oferee) कहलाता है। प्रस्तावक प्रस्ताव रखता है और प्रस्तावगृहिता उस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है। जैसे शादी के लिये दो पक्षकार वर और वधू का होना आवश्यक है ठीक वैसे ही अनुबन्ध के लिये कम से कम दो पक्षकार होना अनिवार्य है। जैसे मकान मालिक तथा किरायेदार बीमा अनुबन्ध में बीमित तथा बीमाकर्ता माल से क्रय विक्रय की दशा में क्रेता तथा विक्रेता।

2. ठहराव का होना–

किसी भी वैध अनुबन्ध के निर्माण के लिये दोनों पक्षकारों के बीच एक ठहराव होना चाहिये। ठहराव का जन्म प्रस्ताव की स्वीकृति देने से होता है। लेकिन यदि दो पक्षकार एक साथ एक ही समय पर एक ही वस्तु के क्रमशः क्रय तथा विक्रय के लिये प्रस्ताव करते है तो इससे ठहराव का निर्माण नही होता है ये तो प्रति–प्रस्ताव (Cross offer) है।

उदाहरण – सीमा, रीटा को अपना ब्यूटी पार्लर 50000 रुपये में बेचने का प्रस्ताव करती है। रीटा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। यहाँ सीमा और रीटा के बीच ठहराव है क्योंकि इसमें रीटा ब्यूटी पार्लर के करले सीमा को 50000 रूपये देती है और सीमा को प्रतिफल में 50000 रुपये मिलते है।

3. वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा –

वैध अनुबन्ध निर्माण के लिये दोनों पक्षकारों की इच्छा (इरादा) परस्पर वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिये। हम दैनिक क्रियाकलापों में कई ऐसे ठहराव करते है जैसे 7 साथ खेलने जाना पिकनिक जाना, किसी क्लब में जाना, किसी विवाह, जन्मदीन में जाना, समारोह में जाना, साथ–साथ भोजन करना, घूमने जाना आदि। ऐसे ठहराव पारिवारिक राजनैतिक अथवा सामाजिक दायित्व तो उत्पन्न करते है। परन्तु इनका उद्देश्य किसी प्रकार का वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना नहीं है। इस कारण ये ठहराव अनुबन्ध नहीं है। वैध अनुबन्ध के लिये दोनों पक्षकारों के दिमाग में यह बात निश्चित होनी चाहिए कि उन्हें एक दूसरे के प्रति कुछ कानूनी अधिकार होगे और यदि इनमें से कोई पक्षकार अनुबन्ध को पूरा नहीं करेगा तो उसे न्यायालय द्वारा पूरा करवाया जा सकेगा।

उदाहरण– राम अपने मित्र श्याम को अपनी पुत्री अपूर्वा के जन्मदिन पर भोजन के लिये आमंत्रित करता है। श्याम ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया लेकिन निश्चित दिन व समय श्याम किसी कारणवश भोजन के लिए नहीं पहुँचा। जिस पर राम दो भोजन सामग्री पर किये गये खर्चे व प्रतीक्षा के कष्ट के लिए श्याम पर न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया, जो न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया, क्योंकि न्यायालय की दृष्टि से ठहराव वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से नहीं किया गया था।

4. पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता–

वैध अनुबन्ध के लिये अनुबन्ध करने वाले पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए। यानि वे व्यस्क व्यक्ति हो, स्वस्थ मस्तिष्क का हो और राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषणा न हो।

5. सहमति –

अनुबन्ध निर्माण के लिये पक्षकारों के मध्य में सहमति होना आवश्यक है अर्थात् ठहराव के सभी पक्षकारों को ठहराव की प्रत्येक बात के लिये समान भाव से सहमति होनी चाहिये।

6. पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति–

पक्षकारों के मध्य सहमति स्वतन्त्र होना अनिवार्य है। यदि शारीरिक एवं मानसिक दबाव या धोखे, भ्रम या गलती से अनुबन्ध के लिये सहमति दी जाती है तो वह स्वतन्त्र सहमति नहीं मानी जाती है। अर्थात् ऐसी सहमति, उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन और गलती के आधार पर प्राप्त न की जावे।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7. वैधानिक प्रतिफल –

वैध अनुबन्ध के लिये वैध– प्रतिफल का होना अनिवार्य होता है बिना प्रतिफल के ठहराव सामान्यतः व्यर्थ हो जाता थे। प्रतिफल से हमारा आशय ''कुछ के बदले कुछ' से है।

8. वैधानिक उद्देश्य–

अनुबन्ध निर्माण के लिये ठहराव का उद्देश्य वैधानिक हो अर्थात् राजनियम की दृष्टि से मान्य होना चाहिये। अतः ठहराव करने का उद्देश्य अवैध अनैतिक अथवा लोकनीति के विरूद्ध नहीं होना चाहिये।

9. निश्चितता–

अनुबन्ध में निश्चितता का होना अनिवार्य है। अतः ठहराव की शर्ते, अर्थ, मूल्य, मात्रा, सुपुदर्गी का समय, स्थान, निष्पादन विधि, माल की प्रकृति आदि महत्वपूर्ण वाले निश्चित होनी चाहिये।

10. निष्पादन की सम्भावना–

यदि किसी ठहराव का निष्पादन करना असम्भव हो तो वह ठहराव व्यर्थ हो जाता है। कुछ ठहराव ऐसे होते है जिन्हे निष्पादित करना प्रारम्भ से ही असम्भव होता है। दूसरे ठहराव ऐसे है जिनको करते समय तो निष्पादित करना सम्भव होता है, किन्तु बाद में कुछ परिस्थातियों का निष्पादन करना असम्भव हो जाता है। जैसे विषय वस्तु का नष्ट हो जाना युद्ध के कारण, विदेशी, शत्रु हो जाने के कारण राजनियम के लागू होने के कारण आदि।

11. ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव न हो–

अनुबन्ध अधिनियम के कुछ ठहरावों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया हुआ है। यदि कोई ठहराव उन ठहरावों में से है तो वह कभी भी वैध नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए बिना प्रतिफल के ठहराव, अवयस्क व्यक्ति के साथ किया गया ठहराव व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव आदि।

12. वैधानिक औपचारिकताओं का पालन –

अनुबन्ध लिखित, साक्षी द्वारा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड होना चाहिये यदि किसी अधिनियम द्वारा ऐसा करना अनिवार्य कर दिया गया हो। अन्य दशाओं में अनुबन्ध सामान्यतः लिखित मौखिक अथवा गर्भित किसी भी रूप में हो सकता है।

अनुबन्ध अधिनियम : शब्दावली

1. ठहराव –

वह वचन है जो किसी प्रस्ताव की स्वीकृति से उत्पन्न होता है। अतः ठहराव या वचन = प्रस्ताव+स्वीकृति

2. सभी अनुबन्ध है किन्तु सभी ठहराव अनुबन्ध नही होते केवल वे ही ठहराव अनुबन्ध बनते है जो कानून द्वारा परिवर्तित करवाये जा सकते है।

3. वैध अनुबन्ध –

राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय ठहराव है यह पक्षकारों के मध्य वैधानिक दायित्व उत्पन्न करता हैं।

4. व्यर्थ ठहराव–

जो ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तित नहीं करवाया जा सकता है। व्यर्थ ठहराव का कोई कानूनी प्रभाव नही होता है।

5. व्यर्थ अनुबन्ध –

अनुबन्ध करते समय वैध होता है किन्तु बाद में परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण व्यर्थ हो जाता है।

6. व्यर्थनीय ठहराव–

वह है जो किसी एक पक्षकार (अर्थात् पीड़ित पक्षकार) की इच्छा पर तो व्यर्थ होता है किन्तु दूसरे पक्षकार की इच्छा पर नहीं।

7. अवैध ठहराव–

जो ठहराव स्पष्ट या गर्भित रूप से कानून द्वारा वर्जित हो या विधि विरूद्ध हो। ऐसा ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है।

8. अपरिवर्तनीय अनुबन्ध–

जो अनुबन्ध मूलतः वैध – होता है किन्तु कुछ तकनीकी कमियों के कारण प्रवर्तित नहीं करवाया जा सकता है। ऐसा अनुबन्ध कानूनी तकनीकी कमियों को दूर करने के बाद प्रवर्तित करवाया जा सकता है।

9. स्पष्ट अनुबन्ध –

जिसमें पक्षकार प्रस्ताव स्वीकृति एवं अनुबन्ध की शर्तो को लिखित या मौखिक रूप से प्रकट करते है।

10. गर्भित अनुबन्ध–

जो पक्षकारों के कार्यों या आचरण से प्रकट होता है न कि उनके लिखित या मौखिक शब्दों से।

11. अर्द्ध अनुबन्ध–

वह अनुबन्ध है जिसे पक्षकार वचनों का आपसी आदान–प्रदान करके नहीं किया जाता है बल्कि कानून द्वारा पक्षकारों पर थोपा जाता है।

12. निष्पादित अनुबन्ध–

वह है जिसके अधीन सभी पक्षकारों ने अपने–अपने सभी दायित्वों को पूरा कर दिया है।

13. निष्पादनीय अनुबन्ध–

वह है जिसके अधीन सभी पक्षकारों को अपने दायित्व को पूरा करना बाकी है।

14. द्विपक्षीय अनुबन्ध–

वह है जिसमें दोनों ही पक्षकार वचनों का आदान–प्रदान कर उन्हें भविष्य में पूरा करने का ठहराव करते है।

15. प्रस्ताव–

जब एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार के समक्ष किसी कार्य को करने या न करने की अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त हो, तो यहां एक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के समक्ष–इच्छा प्रकट करना ही प्रस्ताव कहलाता है।

16. स्पष्ट प्रस्ताव–

वह है जिसे लिखित या शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है।

17. गर्भित प्रस्ताव –

कार्यो या आचरण द्वारा प्रकट प्रस्ताव को गर्भित प्रस्ताव कहते है।

18. विशिष्ट प्रस्ताव–

जब कोई प्रस्ताव किसी व्यक्ति विशेष के लिये किया जाता है।

19. स्थानापन्न प्रस्ताव–

जब किसी प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव की शर्तो से हटकर की जाती है तो उस स्वीकृति को स्वीकृति नहीं बल्कि स्थानापन्न प्रस्ताव कहते है।

20. स्वतन्त्र सहमति –

सहमति तब स्वतन्त्र मानी जाती है जब वह उत्पीड़न अनुचित प्रभाव कपट मिथ्यावर्णन और गलती में से किसी भी तत्व के प्रभावित न हो।

21. उत्पीड़न –

किसी व्यक्ति के साथ ठहराव करने के उद्देश्य से कोई ऐसा कार्य करना या करने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित हो या किसी व्यक्ति के हितों के विपरीत उसकी सम्पति को अवैधानिक रूप से रोकना या रोकने की धमकी देना उत्पीड़न है।

22. अनुचित प्रभाव –

जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है तथा वह इस स्थिति का उपयोग करके उस दूसरे व्यक्ति के साथ अनुबन्ध में अनुचित लाभ प्राप्त करना है।

23. कपट–

अनुबन्ध के पक्षकार या उसके एजेण्ट द्वारा दूसरे पक्षकार के समक्ष अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्यों का मिथ्यावर्णन करना अथवा उन्हें छिपाता है ताकि दूसरे को धोखे में डालकर उसे अनुबन्ध के लिए प्रेरित किया जा सके।

24. प्रतिफल –

यह वह मूल्य है जो अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के वचन या कार्य के बदले चुकाता है।

25. सांयोगिक अनुबन्ध –

किसी कार्य के करने या न करने का ऐसा अनुबन्ध जिसमे वचनदाता अनुबन्ध के समपार्श्विक किसी विशिष्ट भावी अनिश्चित घटना के घटित होने या घटित नहीं होने पर उस अनुबन्ध को पूरा करने का वचन देता है। हानि रक्षा, गारण्टी तथा बीमा के अनुबन्ध सांयोगिक अनुबन्धों की श्रेणी में आते है।

26. जितना काम उतना दाम–

इसका तात्पर्य है अनुबनध भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार ने जितना कार्य कर लिया है, उसको तो भुगतान दिया ही जाना चाहिये। पीड़ित पक्षकार को यह राशि क्षतिपूर्ति की राशि के अतिरिक्त पाने का अधिकार होता है।

27. निषेधाज्ञा –

न्यायालय का वह आदेश जो अनुबन्ध की शर्तो के विरूद्ध कार्य करने पर लगाया जाता है।

28. अर्द्धअनुबन्ध –

ये अनुबन्ध कानून द्वारा उत्पन्न किये जाते है। ये पक्षकारों पर कानून द्वारा थोपे जाते है।

29. क्षतिपूर्ति अथवा हानि रक्षा अनुबन्ध –

ऐसे अनुबन्ध जिसके द्वारा एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है। जो वचनदाता के स्वयं के आचरण में या अन्य किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुचे।

30. गारण्टी अनुबन्ध–

जिसमें एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को यह वचन देता हैं कि किसी तृतीय पक्षकार वचन का पालन नहीं करने या दायित्व का निर्वाह नहीं करने की दशा में वह स्वयं उसको वचन का पालन या दायित्व का निर्वाह कर देगा।

31. विशिष्ट या साधारण गारण्टी–

जब किसी विशिष्ट ऋण या सौदे के लिए गारण्टी दी जाती है।

32. चालू गारण्टी–

जो सौदों या व्यवहारों की एक शृंखला तक विस्तृत होती हैं।

33. निक्षेप अनुबंध –

जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे उद्देश्य के इस शर्त पर माल सुपुर्द करता है कि उस निश्चित उद्देश्य के पूरा हो जाने पर वहउस माल का उसे (सुपुर्दगी देने वाले को) वापस लौटा देगा अथवा उसके निर्देशानुसार उस माल की व्यवस्था कर देगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

34. निक्षेपी या निक्षेपकर्ता –

वह व्यक्ति जो अपने माल का निक्षेप करता है। निक्षेपगृहीता वह व्यक्ति है जो निक्षेप अनुबंध के अधीन किसी उद्देश्य के लिये माल प्राप्त करता है।

35. निःशुल्क निक्षेप –

जिसमें निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के बीच प्रतिफल का लेनदेन नहीं होता है।

36. सशुल्क निक्षेप –

जिसमें निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के बीच कुछ न कुछ प्रतिफल का आदान–प्रदान अवश्य होता है।

37. ग्रहणाधिकार –

किसी व्यक्ति उसके अधिकार में रखी हुई वस्तु जिसका वह स्वामी नहीं है तो उस समय तक रोक कर रखने का अधिकार है जब तक कि अधिकार रखने वाले व्यक्ति की मांगों को सन्तुष्ट नहीं कर दिया जाता है।

38. गिरवी–

किसी व्यक्ति के भुगतान या वचन के पालन की प्रतिपूर्ति के लिए किसी माल का निक्षेप है।

39. गिरवीकर्ता–

वह व्यक्ति है जो माल को गिरवी रखने हेतु निक्षेप करता है।

40. गिरवीग्राही–

वह व्यक्ति होता है जो किसी दूसरे के माल को प्रतिभूति के रूप में स्वीकार कर निक्षेप ग्रहण करता है।

41. ऐजेन्सी–

ऐजेन्ट तथा प्रधान के बीच ठहराव द्वारा उत्पन्न एक ऐसा सम्बन्ध है। जिसमे प्रधान एजेन्ट को अपने प्रतिनिधित्व करने नया अन्य पक्षकारों के साथ अपने अनुबधात्मक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु अधिकृत करता है।

42. एजेन्ट–

वह व्यक्ति जिसे किसी व्यक्ति द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करने तथा अन्या पक्षकारों के साथ अपने अनुबंधात्मक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु अधिकृत किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या भारतीय अनुबन्ध अधिनियम व्यापारिक विधि का अंग है।
2. अनुबन्ध का अर्थ क्या है ?
3. अनुबन्ध की कोई चार विशेषताए बताइऐं।
4. व्यर्थ अनुबन्ध क्या है।
5. क्या सभी ठहराव अनुबन्ध होते हैं।
6. वैध ठहराव क्या है।
7. अप्रवर्चनीय अनुबन्ध क्या है ?
8. जितना दाम–उतना काम से क्या अर्थ है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या भारतीय अनुबन्ध अधिनियम पर्याप्त है ?
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम का क्षेत्र क्या है ?
3. अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है, जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है। क्यों ?
4. एक ठहराव कब अनुबन्ध बन जाता है।
5. क्या ठहराव वैधानिक होता है।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अनुबन्ध क्या है ? एक वैध–अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।
2. सभी अनुबन्ध ठहराव होते है। लेकिन सभी ठहराव अनुबन्धों नहीं होते है । विवेचना कीजिए।
3. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के स्त्रोत क्या है?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुबन्ध : वैधानिक प्रावधान
(Contract : Legal Provisions)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार अनुबन्ध की परिभाषा पिछले अध्याय में स्पष्ट की गयी है। इसमें अनुबन्ध के लक्षणों को भी समझाया गया है। यहाँ अनुबन्ध सम्बन्धी प्रावधानों को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया जा रहा है।

1. प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम (Legal Provision related with Proposal)–

प्रस्ताव सम्बन्धी प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार है–

(1) प्रस्ताव के लिये कम से कम दो पक्षकार होने चाहिये। (2) प्रस्ताव सकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है। (3) स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है। विशिष्ट या साधारण हो सकता है। (4) प्रस्ताव वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किया जाता है। (5) प्रस्ताव की शर्तें निश्चित होनी चाहिए। (6) प्रस्ताव तभी किया हुआ माना जाता है जबकि प्रस्ताव उस व्यक्ति जानकारी में आ जाता है, जिसको प्रस्ताव किया गया है। प्रस्ताव की जानकारी बिना जब कोई व्यक्ति स्वीकृति दे देता है तो वह स्वीकृति नहीं मानी जा सकती है। प्रस्ताव लिखित, मौखिक, सांकेतिक, आमने–सामने, टेलीफोन पर रेडियो, टीवी द्वारा, समाचार पत्र से या हैण्डबिल से हो सकता है। यहाँ तक कि पशु–पक्षियों के माध्यम से भी किया जा सकता है परन्तु न्यायालय टेप किये हुए (Tape recorded) प्रस्ताव को वैध प्रस्ताव नहीं मानते है। प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिए जिससे दूसरा पक्षकार पक्षकार प्रस्ताव का उत्तर देने के लिये बाध्य हो जाए। (7) प्रस्ताव करने की इच्छा को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता। अतः नीलामी का विज्ञापन प्रस्ताव की इच्छा है। इसी तरह प्रस्ताव का निमंत्रण में भी प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है। सूचीपत्र, मूल्यपर्ची, होटल का मेन्यू कार्ड, पूछताछ का उतर, कम्पनी का प्रविवरण, रेल्वे का टाईम टेबल, बीमा का विज्ञापन, रिक्त पदों के लिये आवेदन की सूचना आदि प्रस्ताव के निमंत्रण के उदाहरण में ये प्रस्ताव नहीं है।

(2) स्वीकृति के सम्बन्ध में वैधानिक नियम (Legal provision related with acceptance)

प्रस्ताव की स्वीकृति – सम्बन्धी प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार है (1) स्वीकृति पूर्ण तथा शर्तरहित होनी चाहिए। (2) यदि प्रस्तावक ने प्रस्ताव की स्वीकृति की कोई विधि निश्चित कर दी है तो प्रस्ताव की स्वीकृति उसी विधि से दी जानी चाहिए। यदि प्रस्ताव में स्वीकृति की किसी निश्चित विधि का उल्लेख नहीं किया जाता है तो स्वीकृति किसी उचित एवं प्रचलित विधि से दी जानी चाहिए। (3) स्वीकृति स्पष्ट उच्चारण करके या लिखित रूप में दी जा सकती है या आचरण द्वारा भी हो सकती है। (4) स्वीकृति एक निश्चित समय में दी जानी चाहिये। निर्धारित समय बीतने के बाद दी गयी स्वीकृति से अनुबन्ध का निर्माण नहीं हो सकता। (5) यदि कोई व्यक्ति प्रस्ताव को जाने बिना स्वीकृति देता है तो उस स्वीकृति का कोई महत्व नहीं होता है। लालमन शुक्ला बनाम गौरीदत के मामले में यह स्पष्ट किया गया है कि बिना प्रस्ताव की जानकारी के स्वीकति देना व्यर्थ है। (6) स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा दी जानी चाहिये जिसको प्रस्ताव किया गया है। यदि कोई अन्य व्यक्ति स्वीकृति देता है तो यह वैध स्वीकृति नहीं मानी जा सकती है। यदि सामान्य प्रस्ताव है तो दुनियां का कोई भी व्यक्ति प्रस्ताव की शर्तो का पालन करते हुये प्रस्ताव की स्वीकृति दे सकता है। (7) यद्यपि प्रस्तावक द्वारा स्वीकृति की विधि अवश्य तय की जा सकती है किन्तु मौन रहने को स्वीकृति नहीं माना जा सकता है। किन्तु कभी कभी मौन रहना भी स्वीकृति का लक्षण माना जाता है। और वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो जाते है। (8) स्वीकति का संवहन (Communication) उचित व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये जिसे स्वीकृति के संवहन का अधिकार हो। अनधिकृत व्यक्ति से प्राप्त स्वीकृति की सूचना प्रभावहीन होती है। जब प्रस्ताव में स्वीकृति के संवहन के माध्यम का निर्धारण नहीं किया जाता है तो स्वीकृति उचित एवं प्रचलित ढंग से देनी चाहिये। व्यवहार में डाकघर को उचित प्रचलित माध्यम माना जाता है। यदि स्वीकृति पत्र देरी से भी मिलता है तो भी प्रस्तावक उस स्वीकृति से बाध्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्वीकर्ता ने पत्र पर पता सही एवं उचित ढंग से लिखा है। टेलिफोन पर अनुबन्ध उसी समय हुआ माना जाता है जबकि स्वीकृति प्रस्तावक के सुनायी दे जाये।

(3) पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता सम्बन्धी प्रावधान (Legal provisions related with Contractual Capacity)

अनुबन्ध करने की क्षमता से तात्पर्य पक्षकारों की अनुबन्ध करने की वैधानिक क्षमता से है अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो वयस्क है और जो स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा वह किसी राजनियम (जो उस पर लागू होता है) के द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं कर दिया गया है।

अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति

अवयस्क अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति एवं राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति

(अ) अवयस्क से सम्बन्धित प्रमुख नियम / प्रावधान –

(1) ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होना –

एक अवयस्क के साथ किया गया ठहराव प्रारम्भ से ही पूर्णतः व्यर्थ होता है। ''मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष'' के मामले में प्रिवी कौसिंल ने यह निर्णय दिया है।

(2) अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं के लिए दायित्व –

सामान्यतः एक अवयस्क ऋण लेने अथवा लाभ के लिये कोइ स्थायी या अस्थायी सम्पति खरीदने का वैधानिक ठहराव नहीं कर सकता है। लेकिन एक अवयस्क अपने जीवन निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए किसी सम्पति पर ऋण ले सकता है और उन प्रदान करने वाला उसकी सम्पति में से भुगतान पाने का अधिकारी है। भोजन, कपड़ा, यात्रा व्यय, मकान किराया, शिक्षा व्यय, चिकित्सा आदि पर व्यय, धार्मिक अर्थो पर किया गया व्यय, मृत संस्कार का व्यय आदि को अधिनियम में जीवन निर्वाह सम्बन्धी आवश्यक आवश्यताएँ माना गया है।

(3) एक अवयस्क को साझेदार नहीं बनाया जा सकता लेकिन सभी साझेदारों की सहमति से एक अवयस्क को साझेदारी है लाभो में सम्मिलित किया जा सकता है।

(4) अवयस्क को दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है।

(5) एक अवयस्क एजेन्ट हो सकता है लेकिन उसके द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य के लिए उसका स्वामी अर्थात् प्रधान उत्तरदायी होता है।

(6) किसी भी अवयस्क के संरक्षक द्वारा अवयस्क की भलाई या हित के लिये किये जाये अनुबन्ध वैधानिक होते हैं।

(7) जिस व्यक्ति ने अपना माल किसी अवयस्क को दिया है वह यदि अवयस्क के पास उस माल की खोज सकता है तो उसे वापस भी ले सकता है, परन्तु वह न तो मूल्य की मांग कर सकता है, न ही क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है। (प्रत्यास्थापना)

(8) यदि अवयस्क कपट या मिथ्यावर्णन या झूठ बोलकर अपने आपको वयस्क बताकर कोई अनुबन्ध कर लेता है तो भी वह उत्तरदायी नहीं माना जायेगा। लेकिन कानून उसे इस बात की इजाजत नहीं देता है कि वह जन–सामान्य को धोखा देकर ठगी करे। (अवरोध का सिद्धान्त)

(9) एक अवयस्क किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पति को हानि पहुचाता है तो उसके लिये वह कानून के अनुसार उत्तरदायी होगा और दण्ड तथा सजा का भागी बनेगा।

(10) अवयस्क के द्वारा किये गये कार्यो के लिये वैधानिक रूप के उसके माता–पिता उत्तरदायी नहीं होते है।

(11) अवयस्क अपनी अवयस्कता के समय या काल के दौरान यदि विवाह का कोई अनुबन्ध करता है तो इस प्रकार का ठहराव व्यर्थ होगा।

(11) अवयस्क अपनी अवयस्कता के समय या काल के दौरान यदि विवाह का कोई अनुबन्ध करता है तो इस प्रकार का ठहराव व्यर्थ होगा।

(ब) अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति–

अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार स्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति ही अनुबन्ध करने के योग्य है अर्थात् जिसमें सोच विचार करने की क्षमता हो और उसे यह पता हो कि वह क्या कर रहा है उसका उसके हित पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह जानकारी जिस व्यक्ति को है उसे हम स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति कहते है। सामान्यतः हम पागल, पैदायशी या जन्मजात मूर्ख, शराबी या बेसुध व्यक्ति सम्मोहन अवस्था में होने वाले व्यक्ति को अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तिके साथ किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होता है। पागल व्यक्ति को यदि जीवन निर्वाह के लिए आवश्यकत वस्तुओं की पूर्ति की जा सकती है तो उसकी सम्पति से वस्तुओं के मूल्य को वसूल किया जा सकता है। कानून यह मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वसथ मस्तिष्क का है जो व्यक्ति या पक्षकार अपने आपको अस्वस्थ मस्तिष्क का बताना है उसे ही यह सिद्ध करना होगा कि वह अस्वस्थ मस्तिष्क का था।

(स) राजनियम / कानून द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति –

कुछ व्यक्ति अपनी राजनैतिक स्थिति या अपने उच्च पेशे के कारण अथवा अपनी वैधानिक स्थिति के कारण अनुबन्ध अधिनियम अथवा किसी अन्य कानून के प्रभाव से अनुबन्ध करने के लिये अयोग्य घोषित कर दिये जैसे – विदेशी शत्रु, भारत का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राष्ट्रपति, बैरिस्टर, विदेशी सम्राट, राजदूत, कैदी या अपराधी, दिवालिया, समामेलित कम्पनियां, राज्य, विदेशी शासक आदि।

स्वतन्त्र सहमति सम्बन्धी प्रमुख नियम/प्रावधान

(Legal Provisions related with Free consent) -

सहमति का अर्थ है ठहराव करने वाले पक्षकार एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हो। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 13 के अनुसार सहमति को स्वतन्त्र सहमति उसी दशा में माना जाता है जबकि वह सहमति (1) उत्पीड़न (Coercion) (2) अनुचित प्रभाव (Undue influence) (3) कपट (Fraud) (4) मिथ्यावर्णन (Misrepresentation) (5) गलती (Mistake) में से किसी भी तत्व के प्रभाव से न दी गई हो। अर्थात् अनुबन्ध करने वाले पक्षकारों की सहमति प्राप्त करने के लिये उक्त पांचों में से किसी का भी प्रयोग नहीं किया जाये। उदाहरणार्थ जय, विजय को जान से मारने की धमकी देकर उसकी नयी मारूति कार 25000 रूपये में खरीद लेता है। क्योंकि जय न विजय की सहमति उत्पीड़न द्वारा प्राप्त की है। अतः इस कारण यह सहमति स्वतन्त्र नहीं है।

(अ) उत्पीड़न सम्बन्धी प्रावधान/नियम

(1) उत्पीड़न का आशय जोर जबरदस्ती, दबाव, धमकी अथवा बल प्रयोग आदि से लिया जाता है। धारा 15 के अनुसार जब ठहराव करने के लिए एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को बाध्य करता है अर्थात् कोई ऐसा कार्य करना या करने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है। अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए किसी सम्पति कोक अवैध रूप से रोक लेना या रोकने की धमकी देना ही उत्पीड़न कहलाता है।

(2) उत्पीड़न को इंगित करने वाले कुछ कार्य जैसे मारना–पीटना, बल प्रयोग, किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में रूकावट डालना चोरी, डकैती, अपहरण, बलात्कार, हत्या, आत्महत्या, करने की धमकी देना आदि।

(3) उत्पीड़न का उद्देश्य ठहराव करने को होता है।

(4) पक्षकार अनुबन्ध करने के उद्देश्य से स्वयं पक्षकार के विरूद्ध अथवा उसके किसी प्रकार सम्बन्धी के विरूद्ध भी उत्पीडन का प्रयोग कर सकता है।

(5) उत्पीड़न का प्रयोग जिस स्थान पर किया गया है, वहाँ पर भारतीय दण्ड विधान का लागू होना अथवा नही होना महत्वहीन है।

(6) कर्मचारियों द्वारा अपने नियोक्ता को अपनी माँगें मनवाने के लिये यदि कोई धमकी देते है तो ऐसी धमकी को उत्पीडन नहीं माना जाता है।

(ब) अनुचित प्रभाव सम्बन्धी नियम प्रावधान (Undue Influence)

धारा 16 से स्पष्ट है कि अनुचित प्रभाव से प्रेरित ठहराव तक कहा जाता है जबकि पक्षकारों के मध्य ऐसे सम्बन्ध होते है कि उनमें से कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा के दायित्व करने की स्थिति में होता है। ऐसी स्थिति पहला पक्षकार अपनी स्थिति का अनुबन्ध में अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयोग करता है ऐसे सम्बन्धो के कुछ उदाहरण है।– पुलिस तथा अपराधी, डॉक्टर तथा मरीज, वकील तथा मुवक्किल, पिता तथा उनकी सन्तानें, गुरू तथा शिष्य, ऋणदाता तथा ऋणी आदि। जबकि किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति का भय होने मात्र से अनुचित प्रभाव हुआ नहीं माना जाता है। अनुचित प्रभाव से प्रभावित ठहराव में पीड़ित पक्षकार चाहे तो उस अनुबन्ध को व्यर्थ समझ सकता है अथवा उस अनुबन्ध के पालन के लिए दूसरे पक्षकार को बाध्य कर सकता है।

(स) कपट सम्बन्धी नियम/प्रावधान (Fraud)

धारा 17 के अनुसार कपट से तात्पर्य किसी पक्षकार या उसके एजेण्ट द्वारा जानबूझकर अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्यों का मिथ्यावर्णन करना या उन्हें मिलाना ताकि दूसरे पक्षकार को धोखे में रखकर उसे अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित कर लिया जाए। निम्नलिखित कार्यो में से कोई भी कार्य करना कपट माना जाता है–

(1) किसी असत्य बात को जानबूझकर सत्य बताना।
(2) कोई भी ऐसा कार्य जिसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना हो।
(3) कोई भी ऐसा कार्य या भूल जिसे अधिनियम द्वारा कपटमय घोषित किया गया हो।
(4) कभी कभी मौन (चुप रहना) का अर्थ भी कपट होता है।
(5) तथ्यों को छिपाना आदि।
(6) कपट करने वाले पक्षकार को वास्तविक सत्यता की जानकारी हों।
(7) दूसरे पक्षकार को वास्तव में धोखा देना ही कपट है।

(द) मिथ्यावर्णन सम्बन्धी नियम/प्रावधान

धारा 18 के अनुसार जब कोई पक्षकार किसी असत्य बात को उसकी सत्यता में विश्वास रखते हुए वर्णन करता है तो इस प्रकार का कथन मिथ्यावर्णन कहलाता है, अर्थात् अनजाने में किये गये ऐसे कथन से है जो वास्तव में सत्य नहीं है मिथ्यावर्णन दो प्रकार का होता है (1) कपटपूर्ण मिथ्यावर्णन– जानबूझकर धोखा देने के उद्देश्य से किसी असत्य बात को सत्य बतलाना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) अज्ञानवश मिथ्यावर्णन : यदि कोई भी पक्षकार ईमानदारी से यह विश्वास करता है कि यह कथन सत्य है तो इसे निर्दोष का अज्ञानतावश मिथ्यावर्णन है।

मिथ्यावर्णन जानबूझकर नहीं किया जाता है इसका उद्देश्य धोखा देना नहीं होता है।

(इ) गलती अथवा भूल (Mistake) सम्बन्धी नियम/प्रावधान

गलती का आशय है किसी विषय के सम्बन्ध में गलत विश्वास। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार जब ठहराव करने वाले दोनों पक्षकार ठहराव के लिये आवश्यक तथा सम्बन्धी गलती पर हो तो ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है। उदाहरणार्थ राजकुमार ने रामेश्वर से दो गाय 50000 रू में खरीदने का ठहराव दिनांक 25 जुलाई को किया। लेकिन बाद में मालूम हुआ कि गायों की मृत्यु तूफान के कारण 20 जुलाई को हो गयी थी। यह अनुबन्ध व्यर्थ माना गया, क्योंकि दोनों ही पक्षकार अनुबन्ध के इस महत्वपूर्ण तथ्य है के सम्बन्ध में गलती पर थे।

(4) प्रतिफल के सम्बन्ध में वैधानिक नियम (Legal Provisions related with consideration)

प्रतिफल से आशय 'कुछ के बदले कुछ'। अन्य शब्दों में प्रतिफल से तात्पर्य उस मूल्य से है, जो वचनदाता के वचन के बदले वचनगृहीता द्वारा दिया जाता है।'' उदाहरणार्थ सुधा अपनी कार 90000 रूपये में माधुरी को बेचने का ठहराव करती है। यहां 90000 रू देने का माधुरी का वचन कार बेचने के सुधा के वचन के लिये प्रतिफल है और कार बेचने का सुधा का वचन 90000 रूपये देने के माधुरी के वचन के लिये प्रतिफल है।

एक विद्वान ब्लैक स्टोन के अनुसार ''प्रतिफल अनुबन्ध करने वाले एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को दिया जाने वाला वचन है।'' अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(d) के अनुसार 'जब वचनदाता की इच्छा पर वचगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किया जाने वाला कार्य अथवा विरति या अलग रहना ही प्रतिफल कहलाता है। जो भूत, वर्तमान अथवा भविष्य काल से सम्बन्धित हो सकता है।

अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत प्रतिफल सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख प्रावधान बतलाये गये है–

(1) प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर हो। स्वेच्छा से वचनदाता की इच्छा के अभाव में किया गया कार्य प्रतिफल के रूप में नहीं माना जा सकता है।

(2) प्रतिफल से वचनदाता को स्वयं को लाभ–होना आवश्यक नहीं है।

(3) प्रतिफल वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किया जा सकता है।

(4) प्रतिफल सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों में से किसी भी प्रकार का हो सकता है अर्थात् वचनदाता की इच्छा के अनुसार किसी कार्य को करने पर सकारात्मक और न करने पर प्रतिफल नकारात्मक हो सकता है।

(5) प्रतिफल भूत, वर्तमान या भावी किसी भी प्रकार का हो सकता है।

(6) प्रत्येक अनुबन्ध में कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिये। अनुबन्ध में प्रतिफल बहुत कम हो तो भी अनुबन्ध वैध हो सकता है।

(7) प्रतिफल वास्तविक एवं मूल्यवान होना चाहिये। यदि प्रतिफल भ्रामक, अनिश्चित और असम्भव अस्पष्ट है तो वह वास्तविक और मूल्यवान प्रतिफल नहीं माना जा सकता है।

(8) प्रतिफल वैध होना चाहिये। अवैधानिक प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते है।

(9) प्रतिफल सम्भव होना चाहिये साथ ही निश्चित भी होना चाहिये।

(12) अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के अनुसार ''बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ माना जाता है।'' अतः प्रत्येक में प्रतिफल होना आवश्यक है अन्यथा अनुबन्ध व्यर्थ माना जाता है लेकिन कुछ दशाओं में अनुबन्ध बिना प्रतिफल के भी वैध माना जाता है यदि–

(अ) अनुबन्ध किन्ही निकट सम्बन्धियों के बीच स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण होता है और वह अनुबन्ध लिखित एवं रजिस्टर्ड होता है।

(ब) जब किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के लिये स्वेच्छा से कुछ कार्य किया हो जिसे करने के लिये दूसरा व्यक्ति वैधानिक रूप से बाध्य था।

(स) कालबाधित तत्त्वों के भुगतान के लिये किया गया अनुबन्ध।

(द) जब अनुबन्ध निःशुल्क निक्षेप का हो।

(य) जब कोई अनुबन्ध दान देने का हो तथा दान प्राप्तकर्ता ने दान प्राप्ति की आशा में कुछ दायित्व उत्पन्न कर लिये हो।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(10) उद्देश्य तथा प्रतिफल की वैधता सम्बन्धी वैधानिक नियम –
(Legal provisions related with legality of objective and consideration)

वैध अनुबन्ध का उद्देश्य एवं प्रतिफल दोनों ही वैध होने चाहिये। यदि एक भी विधि विरूद्ध या गैर कानूनी है तो ठहराव व्यर्थ हो जाता है। अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित दशाओं मे कोई भी ठहराव गैरकानूनी हो जाता है–

(1) जब ठहराव राजनियम द्वारा वर्जित हो।

(2) जब ठहराव कपटपूर्ण हो।

(3) जब कोई ठहराव किसी दूसरे व्यक्ति देश या सम्पति को हानि पहुँचाने वाला हो।

(4) जब ठहराव अनैतिक हो।

(5) जब कोई ठहराव लोकनीति के विरूद्ध हो यानि समाज या जनता के सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक योगदान को नुकसान पहुंचाने वाला हो।

(11) व्यर्थ ठहराव सम्बन्धी वैधानिक नियम/प्रावधान
(Legal Provisions related with void agreements)

ऐसा ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय न हो, व्यर्थ ठहराव कहलाता है। ऐसा ठहराव पक्षकारों के मध्य किसी प्रकार का वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं करता है। ऐसा पक्षकार दूसरे पक्षकार को अपने वचन के पालन के लिये बाध्य नहीं कर सकेगा। अनुबन्ध अधिनियम में निम्नलिखित ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिये गये है–

(अ) अनुबन्ध करने के अयोग्य पक्षकार जैसे अवयस्क, अस्वस्थ, मस्तिष्क वाला व्यक्ति तथा राजनियम द्वारा अयोग्य जोखिम व्यक्ति के साथ अनुबन्ध किया जाना है तो वह ठहराव हो जाता है।

(2) जब ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के लिये आवश्यक तथ्य सम्बन्धी गलती हो तो ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है।

(3) विदेशी राजनियम के सम्बन्ध में गलती के आधार पर हुए ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होते है।

(4) जिन ठहरावों का प्रतिफल तथा उद्देश्य अवैधानिक होता है।

(5) अवयस्क को छोडकर किसी भी अविवाहित व्यक्ति के विवाह में रूकावट डालने वाले व्यर्थ होते है। कारण कि देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को विवाह करने की स्वतन्त्रता है।

(6) प्रत्येक ऐसा ठहराव जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के किसी भी कानूनी व्यवसाय 'धन्धे तथा व्यापार में रुकावट डाली जाती है तो वह ठहराव उस सीमा तक व्यर्थ होगा। कारण कि भारतीय संविधान द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को व्यापार व्यवसाय व पेशे की स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार दिया गया है।

(7) जब किसी ठहराव का उद्देश्य वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालना होता है।

(8) जब ठहराव इस प्रकार का हो कि उनका अर्थ निश्चित नहीं किया जा सकता हो। ऐसे ठहराव भ्रमात्मक तथा संदेहास्पद प्रकृति के होते हैं अतः व्यर्थ होते है। उदाहरणार्थ राम श्याम को अपना घोड़ा पांच हजार या दस हजार रू में बेचने का ठहराव करना है। यह अनुबन्ध अनिश्चितता के कारण व्यर्थ है।

(9) बाजी के ठहराव –

बाजी के ठहरावों की प्रकृति ऐसी होती है कि इसमें ठहराव के एक पक्षकार को लाभ या जीत व दूसरे पक्षकार को हानि या हार होती है। अतः ऐसे ठहराव व्यर्थ माने जाते है। उदाहरणार्थ राम और श्याम यह ठहराव करते है कि गुरूवार को जयपुर में वर्षा होने पर राम, श्याम को 10000 रूपये देगा और वर्षा न होने पर श्याम, राम को 10000 रूपये देगा। राम और श्याम के बीच किया गया यह ठहराव बाजी का ठहराव कहलाता हो ध्यान रहे कि कुछ ठहराव ऐसे है जो प्रकृति के अनुसार बाजी के ठहराव लगते है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। अतः ऐसे ठहरावों को वैध माना गया है। जैसे घुडदौड़ के ठहराव, चिटफण्ड के ठहराव, बीमा के अनुबन्ध तेजी मंदी के व्यवहार सट्टे के व्यवहार, वर्ग पहेली प्रतियोगिता आदि बाजी के ठहराव में नहीं आते अतः ये ठहराव वैध है।

(10) यदि कोई ठहराव किसी असम्भव घटना के घटित होने पर निर्भर करता है : तो वह ठहराव व्यर्थ होगा। उदाहरणार्थ कमल दीपक से ठहराव करता है कि यदि वह रीटा से शादी कर लेगा तो वह उसे 5000 रुपये देगा जबकि ठहराव के समय से पूर्व ही रीटा मर चुकी है। अतः यह ठहराव व्यर्थ है।

(11) ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है। जो किसी ऐसे कार्य को करने के लिए है जो प्रारम्भ से ही असम्भव है। उदाहरणार्थ पन्डित ज्ञानेश्वर एक महाराजा से जमीन में लिये खजाने को जादू से निकालने का ठहराव करता है। वह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि यह एक असम्भव कार्य को करने का ठहराव।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(12) सांयोगिक अनुबन्ध सम्बन्धी वैधानिक नियम/प्रावधान
(Legal provisions related with contigent contract)

सांयोगिक अनुबन्ध ऐसा अनुबन्ध है जो घटना के घटित होने पर आधारित हैं अर्थात् ऐसे अनुबन्ध संयोग या अवसर पर आधारित होते है। उदाहरणार्थ राम, रमेश को उसे मकान में आग लगने पर 1 लाख रू तक क्षतिपूर्ति करने का वचन देता है। यह एक सांयोगिक अनुबनध है क्योंकि यदि रमेश के मकान में आग लग गई तो राम मकान में आग लगने से होने वाली हानि पूर्ति करेगा, यदि आग नहीं लगेगी तो कुछ भी देगा। इन्हें ''सापेक्ष अनुबन्ध शोयुक्त अनुबन्ध भी कहते है। सांयोगिक अनुबन्ध सम्बन्धी प्रमुख नियम निम्नलिखित है–

(1) ये अनुबन्ध किसी विशिष्ट अनिश्चित घटना के घटित होने अपना न होने पर निर्भर होते है।

(2) वह घटना जिस पर सायोगिक अनुबन्ध निर्भर करता है वह घटना अनुबन्ध के समपार्श्विक होती है अर्थात् वह घटना अनुबन्ध के वचन या प्रतिफल का भाग नहीं होती है।

(3) सांयोगिक अनुबन्ध में भी एक सामान्य अनुबन्ध के सभी आवश्यक तत्व विद्यमान होने चाहिये।

(4) हानिरक्षा, गारण्टी तथा बीमा के अनुबनध सायोगिक अनुबन्धों की श्रेणी में आते है। बाजी के ठहराव भी सांयोगिक अनुबन्धों की श्रेणी में आते है किन्तु उन्हें जनहित की दृष्टि से अधिनियम में स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया गया है।

(13) अनुबन्धों के निष्पादन सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान/नियम
(Legal provisions related with performance of contract)

अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अपने अपने दायित्वों को ही पूरा करना ही अनुबन्ध का निष्पादन कहलाता है। यदि अनुबन्ध के निष्पादन से पूर्व ही किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो दूसरा पक्षकार उस पक्षकार के वैधानिक उत्तराधिकारियों को अनुबन्ध के निष्पादन के लिये बाध्य कर सकता है, यदि अनुबन्ध के निष्पादन के लिये किसी विशेष चातुर्य या योग्यता की आवश्यकता न हो।

अनुबन्ध का निष्पादन दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम, वास्तविक निष्पादन जिसमें अनुबनध के दोनों पक्षकार अपने–अपने वचनों एवं दायित्वों को पूरा करते है तथा दोनों पक्षकारों द्वारा कुछ भी करना शेष नहीं रहता है द्वितीय, प्रस्ताव द्वारा निष्पादन जिसमें पक्षकार अपने–अपने दायित्वों एवं वचनों के निष्पादन का प्रस्ताव दूसरे पक्षकार को करते है।

कुछ दशाओं में निष्पादन करना आवश्यक नहीं है (1) जब निष्पादन करना आ हो जाए (2) जब अनुबन्ध को निरस्त कर दिया जाए (3) जब ठहराव गैर कानूनी हों।

(14) अनुबन्धों की समाप्ति सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान
(Legal Provisions related with end of contract)

अनुबन्ध की समाप्ति से आशय अनुबन्ध की उस स्थिति से है जबकि अनुबन्ध के पक्षकारों का कोई दायित्व शेष नहीं बचता हैं दूसरे शब्दों में अनुबन्ध की समाप्ति तब होती है जबकि अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध के अधीन अपने–अपने दायित्वों को पूरा कर देते ह अथवा अन्य किसी प्रकार से उन्हें समाप्त कर देते है। इसके परिणामस्वरूप पक्षकारों के अनुबन्धात्मक सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। अनुबन्ध समाप्ति की प्रमुख विधियां निम्नलिखित है।

(1) निष्पादन द्वारा समाप्ति
(2) पारस्परिक ठहराव या सहमति द्वारा समाप्ति
(3) अवधि समाप्त होने से अनुबन्ध की समाप्ति
(4) राजनियम के प्रभावित होने से अनुबन्ध की समाप्ति जैसे पक्षकार की मृत्यु होने पर दिवालिया होने पर अनुबन्ध सम्बन्धी प्रमाणों क नष्ट होने पर आदि।
(5) अनुबन्ध भंग या खण्डन द्वारा समाप्ति
(6) निष्पादन की असम्भवता द्वारा समाप्ति

(15) अनुबन्ध भंग के उपचार सम्बन्धी वैधानिक नियम
(Legal provisions related with breach of Contract)

जब एक पक्षकार अनुबन्ध भंग कर देता है तो दूसरा पक्षकार अपने वचन को पूरा करने के लिए उतरदायी नहीं होता है और वह अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ A,B को 10000 सीमेन्ट के बोरे प्रति बोरे 230 रू की दर से देने का अनुबन्ध करता है। निर्धारित तिथि पर A,B को सीमेन्ट के बोरों की सुपुदर्गी देने में असमर्थ रहता है। यह A द्वारा अनुबन्ध का खन्डन कहलायेगा। जब अनुबन्ध भंग हो जाता है तो ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित उपचार या अधिकार प्राप्त होते है–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(1 अनुबन्ध को निरस्त करना

(2) हर्जाने का दावा या क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना।

(3) अर्जित या उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार।

(4) निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार

(5) निषेधाज्ञा प्राप्त करने का अधिकार।

16. अर्द्ध अनुबन्ध सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान/नियम (Legal provisions related with Quasi contract)

कुछ अनुबन्ध ऐसे भी होते है जो पक्षकारों द्वारा नहीं किये जाते है बल्कि कानून एवं न्यायालय द्वारा उन पर थोप दिये जाते है। ऐसे अनुबन्ध कानून से जन्म लेते है इन्हें अर्द्धअनुबन्ध कहा जाता है। कानूनी दृष्टि से यह वास्तविक अनुबन्ध नहीं है। यह अनुबन्ध पक्षकारों द्वारा ठहराव किये बिना ही उत्पन्न हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि ऐसे अनुबन्धों की रचना विधान के द्वारा होती है तो इनमें वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण विद्यमान नहीं होते है। अतः इन्हें गर्मित अनुबन्ध कहते है। इग्लैण्ड में इन्हें अर्द्ध अनुबन्ध कहते है। उदाहरणार्थ – आनन्द गैस सर्विस जयपुर सी–स्कीम जयपुर मे रमेश शर्मा के यहां एक गैस सिलेण्डर भेजती है परन्तु गलती से वह राकेश शर्मा के यहाँ पहुँचा दिया जाता है जो उसका प्रयोग कर लेता है ऐसी स्थिति में आनन्द गैस सर्विस उसका मूल्य राकेश शर्मा से प्राप्त करने का अधिकार रखती है। यथापि आनन्द गैस सर्विस और राकेश शर्मा के बीच कोई ठहराव नहीं हुआ लेकिन कानून की दृष्टि से यह उचित अनुबन्ध है।

अर्द्ध अनुबन्धों के प्रकार–

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68–72 के अन्तर्गत अर्द्ध अनुबन्धों के प्रमुख प्रकार बतलाये गये है–

1. अनुबन्ध करने के अयोग्य पक्षकारों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। उदाहरणार्थ रेखा एक पागल स्त्री है उसके जीवन निर्वाह के लिये अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ विमल प्रदान करता है विमल रेखा की सम्पति में से मूल्य या धनराशि प्राप्त करने का अधिकारी है।

2. जब कोई व्यक्ति अपने हित के लिये किसी दूसरे पक्ष को जो भुगतान के लिये वैधानिक रूप से उतरदायी हो भुगतान कर देता है तो वह ऐसे भुगतान को वापस प्राप्त करने का अधिकारी होता है। उदाहरण – ललित सरोज के मकान में किरायेदार की हैसियत से रहता है। मकान में लगे नल व बिजली के बिलों का भुगतान सरोज के द्वारा किया जाता है। सरोज ने नल व बिजली के बिलों का भुगतान नहीं किया जिसके कारण दोनों के कनेक्शनों को काटने का नोटिस प्राप्त हुआ। ललित ने दोनो बिलों का भुगतान इसलिये किया क्योंकि कनेक्शन कट जाने से उसको असुविधा होगी। ललित के द्वारा भुगतान की गयी राशि को ललित सरोज से पाने का अधिकारी है।

3. स्वेच्छा से किन्तु शुल्क लेने की भावना से किया गया कार्य – जब कार्य करने वाला व्यक्ति शुल्क प्राप्त करने की आशा से कार्य करता है या अपनी वस्तुएं प्रदान करता हैं जब दूसरा पक्षकार इसमें लाभ उठा लेता है। तो राजनियम के प्रभाव से यह एक अनुबन्ध के रूप में परिवर्तित हो जाता हैं इसलिए इसे अर्द्ध अनुबन्ध कहते है। उदाहरणार्थ – जय एक कपडे के व्यापारी विजय को एक थान कपड़े के देना है विजय इसका प्रयोग कर लेता तो ऐसी स्थिति में जय विजय से कपडे का मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी हैं।

हानिरक्षा या क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान/नियम

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार – हानि रक्षा अनुबन्ध से आशय एक ऐसे अनुबन्ध से है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो उसे स्वयं वचनदाता के या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहुचे। उदाहरण– हरि व रामू दोनों आदर्श पड़ौसी है। साथ ही दोनों के मकानों की दीवार संयुक्त है हरि अपने मकान का विस्तार करना चाहता है जिसके परिणामस्वरूप राम ने मकान को हानि पहुँच सकती हैं हरि राम को एक अनुबन्ध के द्वारा मकान के विस्तार करने के परिणामस्वरूप होने वाली सम्भावित हानि की पूर्ति करने का वचन देता है। राम व हरि के बीच यह हानि रक्षा का अनुबन्ध है।

जो व्यक्ति हानि से बचाने का वचन देता है उसे हानि रक्षक और जिसको वचन दिया जाता है अथवा जिसको हानि होती है उसे हानिरक्षाधारी कहा जाता है। हानि रक्षा अनुबन्ध के अन्तर्गत हानिरक्षाधारी को हानिरक्षक से हानि की क्षतिपूर्ति पाने का, उचित व्यय प्राप्त करने का तथा उसकी और से चुकायी गयी राशि जो उसने वाद के समझौते की शर्तो के अन्तर्गत चुकाया हो पाने का अधिकारी है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गारन्टी अनुबन्ध सम्बन्धी वैधानिक नियम/प्रावधान –

आज भवन निर्माण व्यवसाय की स्थापना, नौकरी की प्राप्ति हेतु कार स्कूटर एवं अन्य वाहन हेतु वितीय संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले ऋण आदि गारन्टी अनुबन्धों के रूप में संचालित किये जा रहे है। अतः आज गारन्टी अनुबन्धों की आवश्यकता नहीं बल्कि अनिवार्यता है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 के अनुसार

'' गारन्टी के अनुबन्ध से आशय एक ऐसे अनुबन्ध से है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके तीसरे व्यक्ति के वचन का निष्पादन करने या उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है।'

व्यक्ति जो जमानत या गारन्टी देता है प्रतिभू कहलाता है। और जिसे जमानत या गारन्टी दी जाती है उसे ऋणदाता या लेनदार कहते है और जिस व्यक्ति की त्रुटि या कार्यो के सम्बन्ध में जमानत या गारन्टी दी जाती है उसे मूल ऋणी कहते है

उदाहरण – राम जो कि एक नाबालिग है, श्याम से 5000 रूपये उधार लेता है जिसकी गारन्टी सीता देती है। राम श्याम को 5000 रूपये चुकाने से मना कर देता है ऐसी स्थिति में श्याम सीता से 5000 रूपये की धनराशि पाने का अधिकारी है इस स्थिति में राम मूल ऋणी श्याम ऋणदाता तथा राधा प्रतिभू कहलायेगी।

गारन्टी अनुबन्ध की आवश्यकता सामान्यतया तीन कारणों से होती है– 1. जब कोई व्यक्ति क्रियाओं के लिए या व्यक्तिगत रूप से धनराशि या ऋण प्राप्त करना चाहता है 2. जब क्रेता विक्रेता से उधार माल खरीदता हो 3. जब नियोक्ता किसी नये व्यक्ति की नियुक्ति के समय उसके चरित्र आचरण व्यवहार व ईमानदारी के सम्बन्ध में गारन्टी की मांग करे। गारन्टी अनुबन्ध सम्बन्धी मुख्य बातें 1. गारन्टी अनुबन्ध में प्रतिभू द्वारा जो गारन्टी दी जानी है वह मूल ऋणी की प्रार्थना पर ही की गई हो। 2. इसमें मुख्य दायित्व मूल ऋणी का होता है अर्थात् यदि मूल ऋणी कोई त्रुटि नहीं करता अथवा अपने दायित्व को स्वयं पूरा कर लेता है तो प्रतिभू के उतरदायी होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। 3. गारन्टी के वैध अनुबन्ध के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि ऋणदाता प्रतिभू के सभी तथ्य जो वह मूल ऋणी के बारे में जानता है तथा जिससे प्रतिभू के दायित्वों पर कोई प्रभाव पड़ सकता है प्रतिभू को स्पष्ट रूप से बता देना चाहिये। 4. गारन्टी का अनुबन्ध मौखिक या लिखित दोनों ही रूप में हो सकता है। बैंक द्वारा दिये जाने वाले ऋण के सम्बन्ध में सामान्यतः गारन्टी का अनुबन्ध लिखित ही होता है। 5. प्रतिभू द्वारा दी गयी गारन्टी मूल ऋणी की प्रार्थना पर ही दी गयी हो। यदि गारन्टी मूल ऋणी की प्रार्थना पर नहीं दी गयी हो तो ऐसी दशा में अनुबन्ध वैध नहीं माना जायेगा। 6. प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के साथ सह–विस्तृत है अर्थात् जितना दायित्व मूल ऋणी की राशि बकाया है तो प्रतिभू को सम्पूर्ण धनराशि के लिये उत्तरदायी ठहराया जायेगा। 7. प्रतिभू का दायित्व गौण होता है। प्राथमिक दायित्व तो मूल ऋणी का ही होता है। 8. यदि मूल अनुबन्ध व्यर्थ अथवा व्यर्थनीय हो जाता है तो ऐसी दशा में भी प्रतिभू के दायित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। 9. प्रतिभू की मृत्यु होने पर गारन्टी स्वतः ही समाप्त हो जाती है लेकिन प्रतिभू की मृत्यु होने से पूर्व किये गये व्यवहारों के लिए उसके वैधानिक उत्तरदायी या प्रतिनिधि उत्तरदायी रहेंगे। 10. यदि गारन्टी अनुबन्ध में प्रतिभू को बिना जानकारी दिये या बिना सहमति के मूलधारी व ऋणदाता अनुबन्ध की शर्तो के यदि कोई परिवर्तन कर लेते है तो ऐसी दशा में प्रतिभू अपने दायित्व से मूक्त हो जाता है। 11. यदि कोई ऋणदाता अनुबन्ध के किसी महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाकर किसी व्यक्ति या पक्षकार से गारन्टी प्राप्त करता है तो ऐसी स्थिति में गारन्टी का अनूबन्ध अमान्य या अवैध होगा और प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। 12. जब कोई प्रतिभू पागल हो जाता है तो वह अपने भावी या भविष्य के दायित्वों से मुक्त हो जाता है। 13. प्रतिभू– मूल ऋणी के समस्त दायित्वों को चुकाने के बाद वे सभी अधिकार प्राप्त कर लेता है जो ऋणदाता को मूल ऋणी के विरूद्ध प्राप्त थे।

निक्षेप अनुबन्ध सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान /नियम (Legal Provision related with Bailment)

निक्षेप के अनुबन्ध के अन्तर्गत एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपनी चल प्रकृति की वस्तु या वस्तुओं के केवल अधिकार का हस्तान्तरण करता है और जब उद्देश्य पूरा हो जाता है तो दूसरा व्यक्ति उस वस्तु को सुपुर्दगी देने वाले व्यक्ति वस्तु लौटा देता है। अर्थात् एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को वस्तु लौटा देता है। इसे ही सामान्य भावना में निक्षेप का अनुबन्ध कहते है। जो सुपुर्दगी देने वाला व्यक्ति होता है उसे निक्षेपी कहते है और सुपुर्दगी प्राप्त करने वाला व्यक्ति होता है उसे हम निक्षेपगृहीता कहते है। निक्षेप के अनेक उदाहरण है जैसे – मरम्मत के लिये स्कूटर कार देना, धोबी को धुलाई के लिये कपड़े देना, स्टेण्ड पर साईकल स्कूटर या कार सुरक्षा के लिये रखना, टेण्ट हाउस से सामान उपयोग के लिये

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लाना, यात्रा हेतु टैक्सी किराये पर लेना या पुस्तकालय से पुस्तकें लेना आदि।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण – राकेश सुरेश को पीएमटी की परीक्षा की तैयारी के लिए रसायन शास्त्र व भौतिक शास्त्र की पुस्तक एक माह के लिये देता है। यह निक्षेप का अनुबन्ध है इसमें सुपुर्दगी देने वाला सुरेश निक्षेपी कहलायेगा व पुस्तकों की सुपुर्दगी प्राप्त करने वाला दिनेश निक्षेपगृहीता कहलायेगा।

निम्न अनुबन्ध सम्बन्धी प्रमुख बातें –

1. निक्षेप की वस्तु चल प्रकृति की होना जरूरी है।
2. वस्तु की सुपुर्दगी हस्तान्तरण अस्थायी उद्देश्य के लिये की जानी है।
3. निक्षेप किसी विशेष उद्देश्य के लिये किया जाता है।
4. माल के स्वरूप में परिवर्तन होकर भी माल की सुपुर्दगी निक्षेपी को की जा सकती है। जैसे सोना देकर आभूषण प्राप्त करना।
5. बैंक के खाते में जमा करने के लिये दिया गया धन निक्षेप का अनुबन्ध नहीं है क्योकि जो रूपये सिक्के नोट आदि बैंक खातों में जमा किये जाते है बैंक द्वारा उन्हें उसी मूल रूप में वापस करने की गारन्टी नहीं दी जा सकती हैं। लेकिन यदि कोई व्यक्ति मूल्यवान वस्तुएं, जेवर बाण्ड, सिक्के आदि बैंक के लॉकर में सुरक्षा के लिये रखता है तो यह निक्षेप का अनुबन्ध होता है।
6. यदि भूकम्प, तूफान, आँधी, वर्षा या विदेशी आक्रमण जैसी आकस्मिक घटनाओं के कारण यदि वस्तु को हानि पहुंचाती है या नष्ट हो जाती है तो ऐसी स्थिति में निक्षेपगृहीता का दायित्व नहीं है।
7. निक्षेप प्रमुखतः 2 प्रकार के होते हैःनिशुल्क निक्षेप– जब किसी निक्षेपी अनुबन्ध में किसी प्रतिफल (शुल्क फीस पारिश्रमिक किराया आदि) का लेनदेन नहीं होता है सशुल्क निक्षेप – जब कोई व्यक्ति अपनी वस्तू किसी दूसरे व्यक्ति को किसी अस्थायी उद्देश्य के लिये देता है तथा उनमें से कोई एक व्यक्ति वस्तु देने वाला या लेने वाला कुल शुल्क या पारिश्रमिक प्राप्त करता है या देता है।
8. निक्षेपी या निक्षेपकर्ता का कर्तव्य है 1. निक्षेपगृहीता को माल सुपुर्द करना 2. माल के दोनों को प्रकट करना 3. आवश्यक व्ययों का भुगतान करना 4. निक्षेपगृहीता को पारिश्रमिक या शुल्क चुकाना 6. माल पुनः प्राप्त करन या उसकी व्यवस्था का निर्देश देना
9. निक्षेपगृहीता के कर्तव्य 1. माल की उचित देखभाल करना 2. देखरेख में उपेक्षा करने पर क्षतिपूर्ति करना 3. निक्षेप की शर्तो के विरूद्ध कार्य न करना 4. निक्षेप के माल को अपने माल से न मिलाना 6. माल लौटाना 7. माल नहीं लौटाने पर क्षतिपूर्ति करना
10. जब किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति की खोई हुई वस्तु मिल जाता है और वह उसको अपने अधिकार में रख लेता है तो उसका कर्तव्य निक्षेपगृहीता की भांति हो जाता है।
11. खोई हुई वस्तु के पाने वाला उस माल को तब तक रोके रखता है जब तक उसे उसके द्वारा किये गये खर्चे एवं जोखिम ईनाम की राशि मालिक से नहीं मिल जाती। माल के वास्तविक स्वामी को ढूंढने के उचित प्रयास करने पर भी मालिक का पता नहीं चले तो खोई हुई वस्तु को पाने वाला माल को बेच सकता है।

गिरवी अनुबन्ध के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधान/नियम (Legal provisions regarding cotnracts of pledge)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार 'जब किसी माल का निक्षेप किसी ऋण या वचन के पालन के लिए प्रतिभूति के रूप मे किया जाता है, तो उसे गिरवी कहते है जो व्यक्ति अपनी वस्तु गिरवी रखता है उसे गिरवी रखने वाला अथवा गिरवीकर्ता तथा जिस व्यक्ति के पास इस प्रकार माल गिरवी रखा जाता है तो उसे ''गिरवी रख लेने वाला अथवा गिरवी ग्राही कहते है।

गिरवी अनुबन्ध सम्बन्धी आवश्यक बाते–

1. गिरवी विद्यमान माल की हो सकती है। गिरवी रखी जाने वाली वस्तुएं विभक्त योग्य होनी चाहिए।
2. गिरवीग्राही के अधिकारः (अ) ऋण की राशि के लिये माल को रोकना (ब) असाधारण व्यय को पाने का अधिकार (स) उचित सूचना देकर माल को विक्रय करने का अधिकार (द) गिरवीकर्ता पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार
3. गिरवीग्राही के कर्तव्यः (अ) माल की उचित देखरेख करना (ब) गिरवी रखी वस्तु को अपने निजी उपयोग में नहीं लेना (स) ऋण की राशि और आवश्यक खर्चे मिलने पर समस्त माल को गिरवीकर्ता को लौटा देना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चाहिये। (द) गिरवी की शर्तो के अनुसार कार्य करना (य) गिरवी रखे गये माल को अपने निजी माल से नहीं मिलाना चाहिये।

4. गिरवीकर्ता के अधिकारः (अ) वह गिरवी रखे माल को बकाया ऋणों, ब्याज तथा खर्चो का भुगतान करके प्राप्त कर सकता है। (ब) गिरवी रखी वस्तु को क्षति पहुची है तो उसे उचित क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (स) ऋण का उचित समय पर भुगतान न होने पर उसे माल को बेचने का अधिकार प्राप्त है।

5. गिरवीकर्ता के कर्तव्य – (अ) उसे माल के समस्त दोषों को प्रकट कर देना चाहिये (ब) यथासमय अपने ऋण भुगतान कर देना चाहिये। (स) माल के विक्रय से पूर्व वचन पूरा करके या भुगतान करके माल छुड़ाना।

6. सामान्यतः माल का स्वामी जब चाहे तब माल को गिरवी रखने का अधिकार रखता है। यदि माल के एक से अधिक स्वामी है तो सभी सहस्वामीयों की सहमति सेकोई भी सह–स्वामी माल को गिरवी रख सकता है। किन्तु जो व्यक्ति माल का स्वामी नहीं हैं उसे सामान्यतः किसी दूसरे व्यक्ति माल को गिरवी रखने का अधिकार नहीं होता है। लेकिन अपवादाजनक परिस्थितियों में वे व्यक्ति भी माल को गिरवी रख सकते है जो माल के स्वामी नहीं होते जैसे व्यापारिक एजेण्ट माल में सीमित हित रखने वाला।

एजेन्सी/अमिकरण सम्बन्धी वैधानिक नियम (प्रावधान) (Legal provisions related with agency)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में एजेन्सी शब्द की परिभाषा नहीं की गयी है। किन्तु अधिनियम की धारा 182 से 238 तक की धाराएं एजेन्सी सम्बन्धों का ही नियमन करती है। संक्षेप में एजेण्ट तथा प्रधान के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों को ही एजेन्सी कहते है।

एक न्यायिक निर्णय के अनुसार – एजेन्सी का सार यह है कि प्रधान अपने एजेन्ट को अधिकार देता है कि वह अपने प्रधान का अन्य व्यक्तियों के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करे।

एजेन्सी के आवश्यक तत्त्व – ऐजेन्सी का जन्म एजेन्ट तथा प्रधान के बीच ठहराव से हो सकता है। इसके लिये किसी अनुबन्ध का होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए अवयस्क व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है। एजेन्सी ठहराव में प्रधान में अनुबन्ध करने की क्षमता होना अनिवार्य है। एजेन्सी अनुबन्ध में किसी मूल्यवान प्रतिफल का होना आवश्यक नहीं है। एजेन्ट जिस व्यक्ति का कार्य प्रतिनिधित्व करता है उस व्यक्ति को प्रधान या नियोक्ता या मालिक कहते है।

एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है–

1. सभी वयस्क व्यक्ति
2. सभी स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति
3. ऐसे सभी व्यक्ति जिन्हें देश के किसी भी कानून द्वारा अयोग्य घोषित नहीं किया गया है।
4. किसी भी निगम या कम्पनी द्वारा
5. नैसगिंक संरक्षक या न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक द्वारा नियुक्ति

कौन व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है?

कोई भी व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है चाहे उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो या नहीं। इसलिये अवयस्क, अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति भी एजेन्ट नियुक्त किये जा सकते है क्योंकि एजेन्सी की स्थापना के लिये ठहराव का होना ही पर्याप्त है और अनुबन्ध का होना अनिवार्य नहीं हैं किन्तु अवयस्क या अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति को एजेन्ट नियुक्त करना जोखिम भरा कार्य है।

एजेण्ट तथा नौकर में अन्तरः

1. एजेण्ट तीसरे पक्षकार के साथ अपने मालिक के अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करवाता है जबकि नौकर ऐसा नहीं करता है।
2. एजेन्ट को परिश्रमिक कमीशन या फीस के रूप में मिलता है जबकि नौकर को अपना पारिश्रमिक वेतन के रूप में मिलता है।
3. एक एजेन्ट के अनेक सेवायोजक/प्रधान हो सकते है जबकि नौकर का सामान्यतः एक ही सेवायोजक Emplioyer) होता है।
4. एजेन्ट एक ही समय में नौकर नहीं हो सता है जबकि नौकर कभी कभी नौकर के साथ–साथ एजेन्ट भी बन सकता है।

एजेन्ट तथा ठेकेदार में अन्तरः

1. एजेन्ट अपने प्रधान/मालिक के निर्देशानुसार कार्य करने के लिये बाध्य होता है जबकि एक ठेकेदार अपने अनुबन्ध के अनुसार कार्य करने के लिये उत्तरदायी होता है।
2. ठेकेदार विशेष परिस्थिति में एजेन्ट हो सकता है किन्तु एक ऐजेट ठेकेदार नहीं हो सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

एजेन्सी का निर्माण या स्थापना के तरीके

1. स्पष्ट ठहराव द्वारा जबकि एजेन्ट की नियुक्ति प्रधान द्वारा लिखित तथा मौखिक शब्दों द्वारा की जाती है।
2. पक्षकारों के आचरण या पक्षकारो के आपसी सम्बन्धो के द्वारा जिसे गर्भित एजेन्सी कहते है।
3. कभी कभी कोई प्रधान अपने आचरण या कार्यो से तथा बिना किसी विशेष के दूसरे व्यक्ति को अपने एजेन्ट के रूप में कार्य करने योग्य है ऐसी स्थिति में उनके बीच एजेन्सी का जन्म होता है जिसे प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी कहते है।
4. जब कुछ परिस्थितियाँ किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति के लिये बिना उसको स्पष्ट अधिकार के ऐजेन्सी का कार्य करने को मजबूर या बाध्य कर देती है उसे आवश्यकता द्वारा एजेन्सी कहते है।
5. जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा बिना उसके अधिकार के किये गये किसी कार्य का अनुमोदन कर देता है तो अनुमोदन हो जाने के बाद यह माना जाता है कि अनाधिकृत रूप से कार्य करने वाला व्यक्ति कार्य करने के समय से ही वह कार्य करने हेतु अधिकृत एजेन्ट था। इसे पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी कहते है।

एजेन्ट के अधिकारः

1. अपना पारिश्रमिक पाने का अधिकार
2. प्रधान की अयोग्यता से होने वाली हानि की क्षति की पूर्ति का अधिकार
3. अपने अधिकारों की सीमा में किये गये वैध कार्यो से हुई हानियों से लिये क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार
4. संकटकाल में सभी आवश्यक कार्य करना
5. उचित सूचना देकर एजेन्सी अनुबन्ध से मुक्त होना
6. व्यापार की परम्परा के अनुसार सभी कार्य करना
7. उप एजेन्ट तथा स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति करना

एजेन्ट के विरूद्ध प्रधान के अधिकार

1. आदेश के अनुसार कार्य करवाना
2. गुप्त लाभों को प्राप्त करना
3. एजेन्ट के अनधिकृत कार्यो को अस्वीकार करना या स्वीकार करना
4. एजेन्ट के अधिकारों को बढाना, घटाना या समाप्त करना
5. एजेन्ट द्वारा दुराचारण करने पर पारिश्रमिक देने से इन्कार करना
6. एजेन्ट से हिसाब मांगना।
7. एजेन्ट की लापरवाही तथा असावधानी से कार्य करने पर उससे क्षतिपूर्ति प्राप्त करना।

नोट – एजेन्ट के अधिकार ही प्रधान/मालिक के कर्तव्य होगे और एजेन्ट के कर्तव्य प्रधान के अधिकार माने जायेंगे।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अनुबन्ध एवं अर्द्ध अनुबन्ध में क्या अन्तर है?
2. प्रतिफल की परिभाषा दीजिए।
3. मिथ्यावर्णन क्या है?
4. उत्पीड़न की परिभाषा दीजिए।
5. क्या बीमा अनुबन्ध बाजी है?
6. अर्द्ध अनुबन्ध से आप क्या समझते है?
7. गारन्टी अनुबन्ध क्या है?
8. एजेन्ट कौन बन सकता है?
9. निक्षेपी कौन होता है?
10. गिरवीकर्ता कौन होता है?
11. वयर्थ ठहराव की परिभाषा दीजिए।
12. क्या आत्महत्या की धमकी उत्पीड़न है।
13. हानि रक्षा अनुबन्ध में कितने पक्षकार होते है।
14. क्या बैंक लॉकर में आभूषण रखना निक्षेप अनुबन्ध है?
15. एजेन्ट तथा नौकर में क्या अन्तर है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रस्ताव तथा प्रस्ताव की इच्छा में अन्तर बताइये।
2. अनुबन्ध करने की क्षमता से क्या आशय है?
3. कपट का अर्थ उदाहरण द्वारा स्पष्ट करो।
4. सांयोगिक अनुबन्ध पर टिप्पणी लिखिए।
5. अर्द्ध अनुबन्ध का क्या महत्व है।
6. निक्षेप के विभिन्न प्रकार बताइये।
7. गिरवी अनुबन्ध के आवश्यक तत्त्वों की बताइये।
8. आवश्यकता द्वारा एजेन्सी क्या है।
9. 'प्रतिफल नहीं अनुबन्ध नहीं' स्पष्ट कीजिए।
10. किन दशाओं में गारन्टी अवैध हो जाती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्ताव और स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियमों की व्याख्या कीजिए।
2. स्वतन्त्र सहमति से क्या आशय है? अनुबन्ध के लिये इसका महत्व समझाइये।
3. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा व्यर्थ घोषित किये गये ठहरावों की व्याख्या कीजिये।
4. एक अवयस्क को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत कौन–कौन से विशेषाधिकार प्राप्त है?
5. निक्षेप क्या है? निक्षेपी तथा निक्षेपगृहिता के कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।
6. एजेन्सी किसे कहते है? एक एजेन्ट के अधिकार एवं कर्तव्य लिखिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उद्यमिता : परिचय, प्रकृत्ति, महत्त्व एवं बाधाएँ

Enterpreneurship: an Introduction, Nature, Importance & Problems

उद्यमिता एक सामान्य परिचय (Entrepreneurship: A General Introduction):–

किसी भी देश के आर्थिक विकास में उद्यमी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उद्यमी के द्वारा ही देश के संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जाता है। उद्यमी देश के संसाधनों का उपयोग करने की जोखिम उठाते है एवं नव सृजन का कार्य सम्पन्न करते है। वर्तमान समय में उद्यमी युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत के रुप में उभर कर आ रहे है। आज के युवा बिल गेट्स, मुकेश अंबानी, मार्क जकरबर्ग, नारायण मूर्ति, कुमार मंगलम् बिड़ला जैसे उद्यमियों को अपना आदर्श मानते है एवं यही कारण है कि अमेरिका की ऑपिनियन रिसर्च काउन्सिल के द्वारा किये गये सर्वेक्षण में 18 से 24 वर्ष की मध्य आयु के युवा वर्ग में से 58 प्रतिशत ने अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने की इच्छा व्यक्त की।

उद्यमिता का प्रादुर्भाव मनुष्य द्वारा व्यवसाय की जोखिम उठाने एवं अनिश्चिताओं के सामना करने के साथ ही हो गया। पिछले 150–200 वर्षो के इतिहास पर नजर डाले तो ऐसे बहुत से उद्यमी हुए है जिन्होनें विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। वर्तमान युग में उद्यमिता का महत्व बहुत अधिक हो गया है। आज सम्पूर्ण विश्व उद्यमिता के महत्व को एक मत से स्वीकार करता है कि किसी भी राष्ट्र की आर्थिक उन्नति उद्यमिता पर ही निर्भर है। आज विभिन्न देशों की सरकारें अपने यहॉ विश्व के उद्यमियों को ससम्मान, निमंत्रित कर उनसे निवेश के लिए आग्रह करती है, यहीं तथ्य उद्यमिता के महत्त्व को स्पष्ट करता है।

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास उत्पादन के विभिन्न साधनों की उपलब्धता, तकनीकी ज्ञान, बाजार की परिस्थितियाँ आदि से प्रभावित होता है लेकिन व्यावसायिक क्षेत्र में बढ़ रही प्रतिस्पर्द्धा, नवाचार एवं जोखिम के कारण उद्यमिता का राष्ट्रीय विकास में विशेष योगदान होता है। अर्नस्ट एवं यंग (Ernest & Young) नामक संस्था के सर्वेक्षण इस तथ्य की पुष्टि करते है। इस संस्था द्वारा किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि, "78 प्रतिशत प्रभावशाली अमरीकियों का विश्वास है कि उद्यमिता ही इस शताब्दी का रूख निर्धारित करेगी।"

हमारे देश में उद्यमिता का विकास बहुत तीव्र गति से हो रहा है। विश्व में हमारा देश उद्यमिता विकास सूचकांक में दूसरे संकेत है कि भारतीय युवा वर्ग अब स्वयं का व्यवसाय स्थापित करने में रूचि ले रहा है। हमारे देश में उद्यमिता के विकास हेतु पर्याप्त आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध है, सरकारी नीति व नियंत्रणों में उद्यमिता विकास हेतु छूटें एवं रियायतें प्रदान की जा रही है। नये उपक्रमों हेतु 'कर रहित' योजनाएँ बनाई जा रही है, शिक्षण–प्रशिक्षण की सुविधाओं का विकास किया जा रहा है, तीव्र गति से तकनीकी परिवर्तनों को लागू किया जा रहा है, ऐसे परिदृश्य में उद्यमिता के विकास की प्रबल सम्भावनाएँ प्रतीत होती है।

उद्यमिता का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of Entreprenuirship) :–

उद्यमिता' को विभिन्न विद्वानों ने विविध अर्थों एवं दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। कुछ विद्वानों ने इसे विशेषण के रुप में परिभाषित किया है एवं कुछ ने इसे क्रिया के रुप में स्पष्ट किया है। सामान्य अर्थ में उद्यमिता का तात्पर्य जोखिम वहन करने एवं अनिश्चितताओं का सामना करने की योजना एवं साहस से है।

आधुनिक समय में उद्यमिता के क्षेत्र में विस्तार हुआ है फलतः नवीन उपक्रमों की स्थापना, उनका निर्देशन एवं नियंत्रण, उपक्रम में परिवर्तन एवं सृजनशीलता, सुधारात्मक कार्यवाही की जोखिम उठाने की क्षमता को उद्यमिता कहा जाता है। जो व्यक्ति ये योग्यता रखते है उन्हें उद्यमी अथवा साहसी के नाम से जाना है।

उद्यमिता की परिभाषाओं को हम निम्न पाँच भागों में विभक्त कर सकते है :–

1. व्यवसाय एवं उपक्रम की स्थापना से सम्बन्धित परिभाषाएँ (Definitions related to establishing business & enterprise) :–

(i) प्रो.मुसेलमान तथा जेक्सन (Prof. Musselman and Jackson) :–

"किसी व्यवसाय को प्रारम्भ करने तथा उसे सफल बनाने के लिये उसमें समय, धन तथा प्रयासों का निवेश करना एवं जोखिम उठाना ही उद्यमिता है।"

(Entreprenueurship is the investing and risking of time, money and effort to start a business and make it successful.)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ii) प्रो.उदय पारीक एवं मनोहर नादकर्णी (Prof. Udai Pareek & Manohar Nadkarni) के अनुसार :–

"उद्यमिता से आशय समाज में नये उपक्रम स्थापित करने की सामान्य प्रवृत्ति से है।"

(Entrepreneurship refers to the general trend of setting up new enterprises in a society.)

2. कार्य एवं क्रियाओं से सम्बन्धित परिभाषाएँ (Definitions related to functions & activities) :–

(i) जोसेफ ए.शुम्पिटर (Joseph A. Schumpeter) के शब्दों में :–

"उद्यमिता एक नव प्रवर्त्तनकारी कार्य है। यह स्वामित्व की अपेक्षा नेतृत्व कार्य है।"

(Entrepreneurship is an innovative function. It is leadership rather than ownership.)

(ii) पीटर किलबाई (Peter Kilby) के अनुसार :–

"उद्यमिता विभिन्न क्रियाओं का सम्मिश्रण है, जिसमें बाजार अवसरों का ज्ञान प्राप्त करना, उत्पादन के साधनों का समायोजन एवं प्रबंध करना, उत्पादन, तकनीक एवं वस्तुओं को अपनाना सम्मिलित है।"

(Enterpreneurship involves a wide range of activities which includes perception of market opportunity, compesing & mananging the factors of production and introduction of the production, techniques and products.)

3. संगठन एंव संयोजन से सम्बन्धित परिभाषाएँ (Definitions related to organisation of combination) :–

(i) हॉवर्ड जॉनसन (Howard Johnson) के मतानुसार :–

"उद्यमिता तीन मूलभूत तत्वों आविष्कार, नवाचार एवं अंगीकरण का मिश्रण है।"

(Entrepreneurship is the composit of three basic elements invention, innovation and adaptations.)

(ii) फ्रेकलिन लिण्डसे (Franklin Lindsay) के अनुसार :–

"उद्यमिता समाज की भावी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगाना तथा उन्हें संसाधनों के नये सृजनात्मक एवं कल्पनाशील संयोजनों के द्वारा सफलतापूर्वक पूरा करना है।"

(Entrepreneurship is the anticipating the future requirements of society and successfully meeting these needs with new, creative and immaginative combinations of resources.)

4. निर्णय लेने से सम्बन्धित परिभाषाएँ (Definitions related to decision-making):–

(i) एच.एन. पाठक (H.N. Pathak) के अनुसार :–

"उद्यमिता उन व्यापक क्षेत्रों को सम्मिलित करती है, जिनके सम्बन्ध में अनेक निर्णय लेने होते है। इन निर्णयों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। (1) अवसर का ज्ञान करना (2) औद्योगिक इकाई का संगठन करना एवं (3) औद्योगिक इकाई को लाभदायक, गतिशील एवं विकासशील संस्था के रुप में संचालित करना।"

(Entrepreneurship involves a wide range of areas on which series of decision are required, which can be broadly grouped into three categoris, viz relating to (1) perception of an opportunity, (2) organising an industrial unit, and (3) running the industrial unit as a profitable, going and growing concern.)

5. नवाचार सम्बन्धी परिभाषाएँ :–

(i) रोबिन्स तथा कौलटर (Robbins & Coulter) के अनुसार :–

"उद्यमिता वह प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह अपने नियंत्रण के अधीन संसाधनों की परवाह किये बिना, उपयोगिता का सृजन करने एवं नवाचार द्वारा विकास के अवसरों को खोजने में समय व धन का जोखिम उठाता है।"

(Entrepreneurship is the process where individual or a group of individuals risk time and money in pursuit of opportunities to create value and go through innovation regardless of the resources they currently control.)

(ii) प्रो.राव एवं मेहता (Prof. Rao & Mehata) के अनुसार :–

"उद्यमिता को वातावरण के सृजनात्मक एवं नवाचारी प्रत्युतर के रुप में वर्णित किया जा सकता है।"

(Entreprenurship can be described as creative and innovation response to the environment.)

निष्कर्ष रुप में उद्यमिता वह प्रक्रिया है जिसमें उद्यमी अवसरों की खोज करके सृजनात्मक नवाचार करता है सामाजिक नव प्रर्वतन करने एवं व्यवसाय को गतिशील बनाये रखने हेतु जोखिम उठाता है, इसमें उद्यमी नवीन व्यावसायिक संगठनों की स्थापना करके उसका संचालन करता है तथा नवीन उत्पाद या सेवा प्रस्तुत करने का साहस करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उद्यमिता की विशेषताएँ / प्रकृति (Characterstics/Nature of enterpreneurship)

उद्यमिता के अर्थ व परिभाषा का अध्ययन करने के पश्चात उद्यमिता की निम्न प्रमुख विशेषताएँ पाई जाती है:–

1. नवाचार (Innovation) :–

वर्तमान में उद्यमिता केवल परम्परागत कार्यों को सम्पन्न करने की क्रिया नहीं है अपितु इसमें नवीन तकनीक, नवीन उत्पाद या अन्य किसी प्रकार के नवाचार का समावेश होता है। उद्यमी अपने व्यवसाय में जब किसी नवाचार का अपनाता है तब ही उसे उद्यमी की श्रेणी में रखा जाना न्यायोचित होता है। पीटर ड्रकर ने लिखा है कि ''नवाचार उद्यमिता का विशिष्ट उपकरण है।''

2. सृजनात्मक क्रिया (Creative Activity):–

उद्यमिता में उद्यमी द्वारा वस्तु या सेवा के स्थान, रंग, रूप आदि उपयोगिताओं का सृजन करके उसको समाज के लिये अधिक उपयोगी बनाया जाता है। हिजरिच एवं पीटर्स (Hisrich and Peters) के मुताबिक ''उद्यमिता उपयोगिता सृजित करने की प्रक्रिया है।'' उद्यमिता द्वारा अनुपयोगी वस्तुओं को उपयोगी वस्तुओं में परिवर्तित करके सृजनात्मक कार्य किया जाता है। पीटर एफ. ड्रकर भी स्पष्ट करते है कि ''..... उद्यमिता मिट्टी के ढ़ेर को भी सोने में बदल सकती है।''

3. जोखिम वहन करना (Risk Bearing):–

उद्यमिता जोखिम उठाने की क्षमता का पर्याय है। एक उद्यमी नवीन उपक्रम की स्थापना एवं संचालन, बाजार में नवीन उत्पादन का प्रस्तुतिकरण, बाजार की अनिश्चितताओं के मध्य मूल्य निर्धारण करने के लिये उसमें अपना धन, समय व मेहनत का निवेश कर जोखिम उठाता है। एक उद्यमी मूल्यों में उच्चावचन, ग्राहक की रूचियों में परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा, बदलती सरकारी नीतियों आदि की जोखिम से सदैव घिरा हुआ रहता है एवं वह न केवल आर्थिक जोखिम अपितु मानसिक जोखिम को भी वहन करता है।

4. अवसर खोजने की प्रक्रिया (A Process of Searching Opportunity) :–

उद्यमिता अवसर तलाशने की प्रक्रिया है। एक उद्यमी व्यक्तियों की समस्याओं, उनकी आवश्यकताओं व आकांक्षाओं, सामाजिक व तकनीकी परिवर्तनों, प्रतिस्पर्धा आदि में भी उद्यमिता के अवसर खोजता है एवं उन्हें कियान्वित करता है। जैसे एक औद्योगिक क्षेत्र में खाने हेतु छोटा होटल या रेस्टोरेन्ट नहीं है तो व्यक्तियों की इस समस्या में उद्यमी टिफिन सेन्टर खोलकर नये अवसर खोज लेता है।

5. उपक्रम की स्थापना व संचालन (Establishment and Operation of Enterprises):–

उद्यमिता व्यवसाय प्रधान अभिवृत्ति है। यह व्यक्तियों को इस बात की प्रेरणा देती है कि वे नवीन व्यवसायों की स्थापना करें एवं उसका सफलता पूर्वक संचालन करें। उद्यमिता द्वारा ही समाज में नवीन उपक्रमों की स्थापना सम्भव हो पाती है इसके अभाव में नवीन औद्योगिक इकाइयों का निर्माण असम्भव है।

6. उच्च उपलब्धि की आकांक्षा का परिणाम (It is the result of high achievement/ambition):–

उद्यमिता उच्च उपलब्धि की आकांक्षा का परिणाम होती है। उद्यमी अपनी उच्च उपलब्धि की महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये कड़ी मेहनत एवं संघर्ष को सदैव तत्पर रहते है। वे अपने लक्ष्य को येन–केन–प्रकारेण हासिल करना चाहते है। गैलरमैन ने लिखा है कि '' उद्यमी उच्च उपलब्धियों के लक्ष्य के प्रति समर्पित होते है, तथा इन्हें प्राप्त किये बिना संतुष्ट नहीं होते है।''

7. सिद्धान्तों पर आधारित न कि अर्न्तज्ञान पर (Based on Principles not on Intuition):–

उद्यमिता सिद्धान्तों पर आधारित क्रिया है। यह किसी व्यक्ति के अर्न्तज्ञान पर आधारित नहीं होती है। उद्यमिता व्यवसायशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, कानून, सांख्यिकी, प्रबन्ध शास्त्र आदि के सिद्धान्तों पर आधारित होती है।

8. पेशेवर क्रिया (Professional Activity) :–

वर्तमान युग में उद्यमिता एक पेशेवर एवं अर्जित योग्यता है। यदि कोई व्यक्ति इस योग्यता को प्राप्त करना चाहता है तो विभिन्न शिक्षण–प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षण–प्रशिक्षण प्राप्त कर इस योग्यता को अर्जित कर सकता है। यही नहीं वर्तमान में विभिन्न सरकारी संगठन भी उद्यमिता प्रवृत्ति को विकसित करने एवं इसमें रुचि जागृत करने हेतु अनेक कार्यक्रमों तथा योजनाओं का संचालन कर रहे है।

9. यह परिवर्तनों का परिणाम है (It is result of different changes):–

उद्यमिता त्वरित गति से हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तकनीकी, सरकारी नीतियों व नियम आदि में हो रहे बदलाव का परिणाम है। परिवर्तनों के कारण व्यक्तियों के विचार एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है जिससे उद्यमिता का विकास हो रहा है।

10. उद्यमिता एक व्यवहार है (Entrepreneurship is a Practice):–

उद्यमिता उद्यमी के द्वारा किया गया व्यवहार होता है न कि उसके व्यक्तित्व का लक्षण। जो उद्यमी अपने व्यवहार से जितनी अधिक जोखिम वहन करेगा, नवीन कार्य करेगा, नवाचार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करेगा, वह उतना ही प्रखर व बड़ा उद्यमी बनता जाता है। प्रबन्ध विषेशज्ञ ड्रकर ने लिखा है कि '' उद्यमिता न विज्ञान है और न कला। यह तो व्यवहार है।''

11. सभी व्यवसायों में आवश्यक (Essential in all types of Business):–

उद्यमिता सभी प्रकार के व्यवसायों में आवश्यक होती है। व्यवसाय चाहे छोटा हो या बड़ा हो, निर्माण प्रक्रिया से संबंधित हो या विपणन प्रक्रिया से संबंधित हो, विकासशील अर्थव्यवस्था में संचालित हो या विकसित अर्थव्यवस्था में संचालित हो, उद्यमिता सभी जगह आवश्यक होती है।

12. सभी क्रियाओं में आवश्यक (Essential in all activities):–

उद्यमिता केवल आर्थिक क्रियाओं में ही आवश्यक नहीं है अपितु यह प्रत्येक क्रिया में आवश्यक होती है। व्यक्ति आर्थिक क्षेत्र के अलावा जिस भी क्षेत्र में कोई साहसिक कार्य, जोखिम उठाने का निर्णय या नवाचार करता है वहॉ भी उद्यमिता की नितान्त आवश्यकता होती है।

13. उद्यमिता के कई स्वरूप होते है (Different types of Entrepreneurship):–

प्रत्येक देश व समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैधानिक स्थितियाँ व वहॉ के व्यक्तियों का दृष्टिकोण अलग–अलग होता है ऐसी स्थिति में उद्यमिता के प्रकारों में भिन्नता पाई जाती है। इसे निजी उद्यमिता, संयुक्त उद्यमिता, केन्द्रीकृत उद्यमिता, विकेन्द्रीकृत उद्यमिता, लघु उद्यमिता, वृहत उद्यमिता, परम्परागत उद्यमिता, नवीन उद्यमिता आदि प्रकारों से जाना जा सकता है।

उपरोक्त मुख्य विशेषताओं के अतिरिक्त विद्वानों के अनुसार उद्यमिता की विशेषताओं में यह शामिल किया जाता है कि यह ज्ञान पर आधारित होती है एवं व्यक्तित्व निर्माण की क्रिया को संपादित करती है।

उद्यमिता का महत्व (Importance of Entrepreneurship)

उद्यमिता किसी भी देश की आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति का आधारस्तम्भ होती है। यह देष के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास का प्रतिबिंब होती है। किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था चाहे वह विकसित हो या विकासशील हो, उस राष्ट्र की विचारधारा चाहे पूँजीवादी हो या साम्यवादी या समाजवादी हो, उस राष्ट्र का नेतृत्व चाहे प्रजातान्त्रिक या राजशाही या अधिनायकवादी हो सभी स्थितियों में उद्यमिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह किसी व्यक्ति विशेष के जीवन को ही परिमार्जित नहीं करती है अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को विकासात्मक दिशा प्रदान करती है। इसी कारण येल ब्रोजन ने कहा है कि ''उद्यमिता आर्थिक विकास का अनिवार्य अंग है।''

उद्यमी किसी भी राश्ट्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवीय संसाधनों का कुषलता के साथ उपयोग कर वहॉ के निवासियों की आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रषस्त करते हैं। वे नवीन उपक्रमों की स्थापना करके, नवीन बाजारों की खोज करके, नवीन उत्पादों को प्रस्तुत करके लोगों की आवश्यकताओं व इच्छाओं को पूर्ण करने का कार्य करते हैं एवं लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाते है। डोलिंगर ने ठीक ही लिखा है ''आधुनिक बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में नये व्यवसायों का सृजन करना ही तकनीकी एवं आर्थिक विकास की कुंजी है। उद्यमिता के माध्यम से लोग बेहतर, दीर्घायु एवं अधिक समृद्ध जीवन जीते रहेंगे।''

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्शल भी उद्यमिता के महत्व को रेखांकित करते हुये लिखते है कि ''उद्यमी व्यवसाय का कप्तान होता है वह केवल जोखिम एवं अनिश्चितता का वाहक ही नहीं होता है अपितु एक प्रबन्धक, भविष्यदृष्टा, नवीन उत्पाद विधियों का आविष्कारक और देश के आर्थिक ढॉचे का निर्माता भी होता है।'' उपरोक्त विवेचन के आधार पर उद्यमिता के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:–

1. देश के आर्थिक विकास का आधार (Basis of Economic Development of the Nation):–

उद्यमिता से प्रत्येक देश का तीव्र एवं संतुलित विकास होता है। उद्यमिता न केवल व्यावसायिक गतिविधियों का आधार है अपितु यह देष में रोजगार अवसरों का सृजन कर, संसाधनों का सदुपयोग कर राश्ट्रीय आय में वृद्धि करती है जिससे पूंजी निर्माण को बल मिलता है एवं देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास होता है।

2. नवीन उपक्रमों की स्थापना में सहायक (Helps in Establishing new enterprises):–

उद्यमी के द्वारा ही नवीन उपक्रमों की स्थापना की जाती है। उद्यमी आवष्यक संसाधनों की व्यवस्था करके जोखिम पूर्ण क्षेत्रों में भी नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करते हैं। देश में विभिन्न औद्योगिक घरानों द्वारा अनेक उपक्रमों की स्थापना की गई है एवं इनसे प्रेरित होकर नवीन उद्यमी भी अनेक साहसिक निर्णय लेकर नये–नये उत्पादों के उद्योग स्थापित कर रहे है। टाटा, बिरला, अंबानी, बजाज, डालमिया, ... आदि अनेक उद्यमी घरानों ने इस देश में नवीन उपक्रमों की लगातार स्थापना की है एवं कर रहे है।

3. विद्यमान उपक्रमों के विकास एवं विस्तार में योगदान (Contribution in Development & Expansion of Existing Enterprises):–

उद्यमिता विद्यमान उपक्रमों के सफल संचालन एवं उनके विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। उद्यमिता के कारण नये–नये उत्पादों का निर्माण किया जाता है,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नवीन उत्पाद विधियां व तकनीक को ईजाद किया जाता है, नये बाजारों की खोज की जाती है, जिससे विद्यमान इकाईयां दीर्घकाल तक बाजार में बनी रहती है एवं उनका निरन्तर विकास एवं विस्तार होता रहता है। पीटर एफ. ड्रकर के शब्दों में ''उद्यमिता व्यवसाय के विकास, नवप्रर्वतन एवं विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।''

4. नवीन उत्पाद व तकनीक विकास में सहायक (Helps in developing new Products & technique):–

उद्यमिता के कारण नये उत्पाद एवं नवीन तकनीक का विकास सम्भव होता है। मानव जीवन में काम आने वाले विभिन्न उत्पादों की उपलब्धता उद्यमिता के कारण ही सम्भव हो पाई है। इसी प्रकार उद्यमिता से विद्यमान उत्पादन विधियों में सुधार एवं परिवर्तन करके नवीन तकनीकों को विकसित किया जाता है।

5. मानवीय क्षमता के पूर्ण उपयोग का अवसर (Opportunity to exploit full human Potentiality):–

उद्यमिता में उद्यमी स्वयं उपक्रम की स्थापना करता है एवं उसको सफल बनाने हेतु वह अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग करता है। वह अपने व्यवसाय के विकास एवं विस्तार हेतु अपनी पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता से कार्य करता है। इस प्रकार उद्यमिता से मानवीय क्षमता का सदुपयोग सम्भव हो पाता है।

6. रोजगार के अवसरों का सृजन (Creation of Employment opportunity):–

उद्यमिता के कारण देश में नवीन रोजगार उत्पन्न होते है। एक उद्यमी नये उपक्रम की स्थापना करता है, नवीन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण करता है इस कारण स्वतः ही रोजगार के अवसरों का सृजन होता है। रिब्सान के शब्दों में '' विकासषील देशों में उद्यमी रोजगार के अवसर पैदा करने वाला होता है।''

7. पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन (Promotes Capital Formation):–

उद्यमिता के परिणामस्वरूप एक उद्यमी नवीन उपक्रमों की स्थापना एवं विद्यमान उद्योगों का विकास एवं विस्तार करता है। इस हेतु वह अपनी पूंजी व जन सामान्य की पूंजी का अंष ऋण पत्रों के माध्यम से विनियोग करता है। 'विनियोग' प्रवृत्ति उत्पन्न होने से बचत को प्रोत्साहन मिलता है एवं पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलता है। रेजर नस्कर्ट के अनुसार ''विकासशील देषों में केवल उद्यमिता ही पूंजी के अभेद्य दुर्ग को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और पूंजी निर्माण में आर्थिक शक्तियों को गति प्रदान कर सकती है।''

8. संतुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development):–

प्रो. नर्कसे ने स्पष्ट लिखा है कि ''उद्यमी संतुलित आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।'' उद्यमिता के विकास से देष के प्रत्येक कोने में उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। जो क्षेत्र कम विकसित होते है वहॉ उद्यमियों को विभिन्न प्रकार की रियायतें व छूटें प्रदान करके अल्पविकसित क्षेत्रों का विकास करके संतुलित आर्थिक विकास किया जा सकता है।

9. राजकीय नीतियों एवं योजनाओं के कियान्वयन में सहायक (Helps in the execution of Government Policies & Plans):–

उद्यमिता के माध्यम से न केवल औद्योगिक नीति का कियान्वयन होता है अपितु ये देष के विकास हेतु बनाई गई अन्य योजनाओं एवं नीतियों को लागू करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा संचालित विभिन्न जन कल्याणकारी योजनाओं में उद्यमी सहभागिता प्रदान कर इनके कियान्वयन में सहायता प्रदान करते है।

10. सामाजिक परिवर्तन में सहायक (Helps in Social Change):–

उद्यमिता समाज में शिक्षा एवं जागृति की अलख जगाकर, वैज्ञानिक अनुसंधान व शोध के परिणाम प्रस्तुत करके अंधविश्वास, रूढ़िवादिता व कुप्रथाओं को समाप्त करने में सहायक है। इसी प्रकार उद्यमिता रोजगार प्रदान करके व्यक्तियों की आय में वृद्धि करती है परिणामतः उनके जीवन स्तर में वृद्धि होती है जिससे समाज में सकारात्मक परिवर्तन आसानी से सम्भव हो जाता है।

11. शोध एवं अन्वेषण को बढावा (Encourage to Research and Investigation):–

उद्यमिता 'नवीनता' पर बल देती है। यह नवीनता उत्पाद,तकनीक या बाजार से संबंधित हो सकती है। नव–प्रवर्त्तन को बनाये रखने हेतु निरन्तर शोध व अनुसंधान का कार्य किया जाता है एवं वर्तमान समय में उपक्रमों में इसका अलग विभाग भी बनाये जाने लगा है। शोध एवं अनुसंधान विभाग का मुख्य कार्य ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुये नव–प्रवर्तन करना होता है।

उद्यमी के गुण (Trairs/Qualities of an Entreprenur)

किसी भी उद्यमी की सफलता उसके व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर निर्भर करती है। एक उद्यमी को व्यवसाय की स्थापना से लेकर विक्रय के पश्चात की जाने वाली सेवा तक के विभिन्न काम करने होते है। इन विभिन्न कार्यों के सम्पादन एवं निष्पादन हेतु उसमें अनेक गुणों का होना आवश्यक है। विद्वान लेखक एमर्सन (Emerson) का यह विचार शत प्रतिशत सत्य है

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कि ''व्यवसाय चातुर्य का खेल है जिसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं खेल सकता है।'' एक उद्यमी को यदि सफलता के सोपानों पर पहुँचना है तो उसमें विभिन्न प्रकार के चातुर्य एवं कौशल का होना आवष्यक है। उद्यमी में एक सामान्य व्यक्ति के गुणों के साथ–साथ व्यावसायिक योग्यता, निर्णयन क्षमता, सृजनशीलता, प्रबन्धकीय एवं प्रशासनिक क्षमता जैसे अनेक गुणों का समावेश होता है।

सफल उद्यमी के गुण (Qualities of a Successsful Entreprenur)

एक सफल उद्यमी के गुणों के संबंध में विद्वान एकमत नहीं है। अनेक प्रबंधशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों ने उद्यमी के गुणों का वर्णन किया है। विभिन्न विद्वानों के अनुसार एक सफल उद्यमी में निम्न गुण होने चाहिए:–

(अ) मेक्क्लीलैड (Mc clelland) के अनुसार सफल उद्यमी में निम्न गुण पाये जाते है–

(i) असाधारण सृजनशीलता
(ii) जोखिम वहन करने की क्षमता एवं
(iii) सफलता प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा।

(ब) प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.बी.से. (J. B. Say) के मतानुसार उद्यमी में निम्न गुण होने चाहिए–

(i) निर्णयन क्षमता
(ii) दृढ़ निश्चयी
(iii) व्यावसायिक ज्ञान एवं
(iv) पर्यवेक्षण एवं प्रशासकीय क्षमता।

(स) जेम्स बर्ना (JAMES BURNA) ने अपने निष्कर्ष में उद्यमी में निम्न गुणों का होना आवश्यक माना है–

(i) संगठनात्मक एवं प्रशासकीय योग्यता
(ii) तकनीकी एवं व्यावसायिक ज्ञान
(iii) अवसरों के प्रति सजगता
(iv) परिवर्तनों को स्वीकार करने में रूचि एवं
(v) जोखिम उठाने की मनोवैज्ञानिक क्षमता।

(द) हॉर्नाडे एवं अबौड़ (Hornaday and Aboud) के अनुसार –

(i) जोखिम उठाने की क्षमता
(ii) संसाधनों के संयोजन की क्षमता
(iii) संगठनात्मक एवं प्रशासकीय योग्यता
(iv) नवीन अवसरों की खोज की ललक एवं
(v) परिवर्तनों में रूचि।

(य) ए. सी. ब्रेडफोर्ड (A. C. Bredford) की दृष्टि में एक उद्यमी में निम्न गुण होने चाहिए–

(i) मूलभूत तकनीकी सिद्धातों का ज्ञान
(ii) व्यावसायिक समूहों के बीच सांमजस्य एवं सहयोग
(iii) मानवीय दृष्टिकोण एवं प्रशिक्षण
(iv) मानव संसाधन चयन एवं प्रशिक्षण की योग्यता
(v) सेवा के आदर्श से प्रेरित दृष्टिकोण।

विभिन्न विद्वानों के विचारों एवं सुझावों का अध्ययन करने के पश्चात एक उद्यमी के गुणों को हम निम्नांकित तीन भागों में बांट सकते है–

(i) शारीरिक एवं मानसिक गुण (Physical and Mental Qualities)
(ii) सामाजिक एवं नैतिक गुण (Social and Moral Qualities)
(iii) पेशेवर या व्यावसायिक गुण। (Professional Qualities)

I. शारीरिक एवं मानसिक गुण (Physical and Mental Qualities) :–

(1) उत्तम स्वास्थ्य एवं कार्य करने की शक्ति (Sound health and Stamina):–

उद्यमी का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए। किसी ने ठीक ही लिखा है कि स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। अच्छा स्वास्थ्य व्यक्तित्व का एक बहुत महत्वपूर्ण तत्व होता है। स्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति ही अपनी पूर्ण क्षमता से उद्देश्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। कमजोर स्वास्थ्य वाले व्यक्ति जोखिम उठाने एवं नवाचार क्रियायें करने में प्रायः असमर्थ रहते हैं अतः उद्यमी का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए।

यही नहीं, उद्यमी की कार्यशक्ति भी अच्छी होनी चाहीये। उसमें लम्बे समय तक कार्य करने की शक्ति होने पर ही वह पूर्ण मनोयोग एवं उत्साह से अपना कार्य सम्पन्न कर पायेगा अन्यथा वह थकावट, झुंझलाहट आदि महसूस करेगा एवं अपने कार्यों को कुशलता पूर्वक नहीं कर सकेगा।

(2) परिश्रमी (Hard working)

भारतीय दर्शन में कहा गया है कि उद्येमन हि सिद्धयंति कार्याणि मनोरथ। एक उद्यमी को सफल होने के लिये उसका परिश्रमी होना आवश्यक है। उद्यमी का कर्म के प्रति सकारात्मक सोच होना चाहिये। जो व्यक्ति कार्य से जी चुराते हैं, सफलता कभी भी उनके नजदीक नहीं आती है। कहा भी गया है कि ''परिश्रम सफलता की कुंजी है।'' वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में अपने आपको बाजार में बनाये रखने हेतु कड़ी मेहनत का कोई विकल्प नहीं है।

(3) कल्पनाशील (Imaginative)

उद्यमी में कल्पनाशक्ति का होना भी नितान्त अनिवार्य है। उद्यम की स्थापना से लेकर उसके संचालन तक उद्यमी को विभिन्न नवाचार करने होते हैं जो कि कल्पनाशील होने पर ही सम्भव हो पाते हैं। कल्पनाएँ केवल कोरी कल्पनाएं नहीं होनी चाहिये अपितु वह यथार्थ के नजदीक होनी चाहिए। आर्थर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आल्पस के शब्दों में ''केवल उसी व्यक्ति की महत्वाकाक्षाएँ पूरी होती है जो कर्मवीर होता है। केवल कल्पना करने वाले व्यक्ति की महत्वकांक्षाएँ कभी भी पूरी नहीं होती है।

(4) प्रखर बुद्धि एवं स्मरण शक्ति (Sharp Intelligence & Memory)

उद्यमी प्रखर बुद्धि का धनी होना चाहिये। प्रखर बुद्धि होने पर ही निर्णयों में सटीकता एवं तत्परता हो पाती है। विभिन्न प्रकार के कार्य भी बुद्धिमता ढंग से पूर्ण करने पर उपक्रम प्रगति व विकास के पथ पर गतिशील होता है। इसी प्रकार उद्यमी में स्मरण शक्ति होनी चाहिए। उसे कब, कहाँ, क्या करना है आदि का निश्पादन तीव्र स्मरण शक्ति होने पर सरल हो जाता है।

(5) आत्म विश्वास (Self Confidence)

''आत्म विश्वास सफलता की जननी है।'' यह उक्ति उद्यमी के सन्दर्भ में सत्य प्रतीत होती है। आत्म विष्वास के सहारे अनेक दुर्गम व कठिन कार्य भी आसानी से सम्पन्न किये जा सकते है जबकि इसके अभाव में सामान्य से लगने वाले कार्य भी पूरे नहीं हो पाते है। एक उद्यमी को लक्ष्य प्राप्ति हेतु अनेक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, इन विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों का मुकाबला करने में आत्म विश्वास की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(6) आषावादी (Optimist)

एक उद्यमी को आशावादी होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उसे लगातार अनिश्चितताओं एवं जोखिम का सामना करना होता है। ''असफलता में सफलता छिपी है'' के मूल मन्त्र को दृष्टिगत रखते हुए उद्यमी को असफलताओं से निराश होकर निष्क्रिय नहीं होना चाहिए अपितु पुनः उत्साह एवं लगन से लक्ष्य प्राप्ति हेतु तत्पर हो जाना चाहिए। स्टीवेन्सन ने ठीक ही लिखा है कि ''सफलता की शर्ते आसान है, हमें कुछ परिश्रम करना है, कुछ सहन करना है, सद्विश्वास करना है और कभी पीछे नहीं मुड़ना है।''

(7) दूरदर्शिता (Foresightness)

उद्यमी को भविष्य का पूर्वानुमान करके उसके आधार पर निर्णय लेना होता है अतः उसको दूरदर्शी होना चाहिए। ग्राहकों की भावी रूचि, सरकारी नीति, प्रतिस्पर्द्धा, बाजार सम्भावना आदि का ठीक से पूर्वानुमान करके एक उद्यमी अपने उपक्रम का विकास एवं विस्तार कर सकता है।

(8) प्रभावी व्यक्तित्व (Effective Personality)

उद्यमी का व्यक्तित्व प्रभावषाली एवं आकर्षक होना चाहिए। प्रभावी व्यक्तित्व हेतु उद्यमी को गम्भीर, शालीन, धैर्यवान व शिष्ट होना चाहिये। हॅसमुख स्वभाव, प्रसन्न मुख मुद्रा, मधुर वार्ता, हाव–भाव व पौशाक आदि व्यक्तित्व को निखार देते है।

(9) स्फूर्ति एवं सहिष्णुता (Vitality & Endurance)

नेतृत्व वाले

(10) निर्णयन क्षमता (Capacity to take decisions)

एक सफल उद्यमी में असाधारण निर्णयन क्षमता होनी चाहियें। उद्यमी परिस्थितियों के अनुरूप यथाशीघ्र निर्णय लेने में सक्षम होना चाहियें। एक उद्यमी को किसी समस्या के समाधान के लिये वर्तमान व भावी परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये निर्णय लेने होते है एवं सही समय पर लिया गया सही निर्णय ही उद्यमी के लिये सफलता के द्वार खोलता है।

ii. सामाजिक एवं नैतिक गुण (Social and Moral Qualities):–

उद्यमी की सफलता में सामाजिक एवं नैतिक गुणों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। एक सफल उद्यमी में निम्नांकित सामाजिक एवं नैतिक गुण होने चाहिए :–

1. मिलनसार (Sociable) :–

उद्यमी की सफलता में उसकी मिलनसारिता का बहुत बड़ा योगदान होता है। उद्यमी को सब के साथ स्नेहपूर्ण वार्तालाप करनी चाहिए। उसके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से उसको आत्मीयता से संबंध बनाने चाहिये एवं परस्पर आत्मीयता जागृत करनी चाहिये। मिलनसारिता की वजह से उद्यमी के प्रति लोगों का विश्वास जागृत होता है। अतः उद्यमी मिलनसार होना चाहियें।

2. सहयोगी (Co&operative):–

उद्यमी को सभी वर्गों का सहयोगी होनी चाहिये। उसे व्यवसाय के स्वामियों, कर्मचारियों, ऋणदाताओं, पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों एवं यहॉ तक कि अपने प्रतिस्पद्वियों के साथ भी सहयोग एवं सामजस्यपूर्ण व्यवहार रखना चाहिये। उद्यमी में समझौता करने की एवं अपनी भूलो तथा गलतियों को स्वीकार करने की योग्यता होनी चाहियें।

3. नम्रता (Politeness):–

एक उद्यमी को विनम्र होना चाहिये। कहा भी गया है कि ''विनम्रता का कुछ मूल्य नहीं लगता, किन्तु इससे बहुत मिलता है।'' नम्रता से उद्यमी की लोकप्रियता में वृद्वि होती है।'' नम्रता का यह आशय नहीं है कि वह अपनी प्रतिष्ठा व स्वाभिमान के विरूद्ध कोई कार्य करें।

4. चरित्रवान (Sound character):–

एक उद्यमी का चरित्र निर्मल होना चाहिये। चरित्रवान उद्यमी अपने कार्यो एवं व्यवहार से सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों पर अपनी छाप छोड़ता है एवं उन्हें अपना बना लेता है। चरित्र के संबंध में कहा भी गया है कि अगर ''चरित्र खोया तो सब कुछ खोया।'' प्रो. हाविन्स के अनुसार चरित्रवान व्यक्ति अपनी ऑखों के द्वारा, अपने हाव–भाव द्वारा, अपनी वाणी द्वारा, अपने कथन व तथ्यों द्वारा, अपने लोगों में अपना मन डाल देता है।

5. ईमानदार (Honesty):–

उद्यमी को ईमानदार होना चाहिये। बेईमानी एवं गलत तरीके से उद्यमी अल्प समय के लिये सफल हो सकता है किन्तु

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दीर्घकालीन सफलता हेतु ईमानदारी पूर्वक व्यावसायिक गतिविधियों का क्रियान्वयन होना जरूरी है। उद्यमी को ''ईमानदारी एक सर्वोतम नीति है'' के आधार पर अपनी नीतियों व योजनाओं का निर्धारण एवं उनका पालन करना चाहिये।

6. निष्ठावान (Loyal):–

एक उद्यमी को न केवल सामान्य अपितु विशेष एवं संकटकालीन परिस्थितियों में भी अपने सहयोगियों, ग्राहकों, पूर्तिकर्त्ताओं, सरकार आदि के प्रति निष्ठावान रहना चाहिये। उद्यमी को कालाबाजारी, वस्तुओं का कृत्रिम अभाव, मुनाफाखोरी, चोर बाजारी जैसे हथकंडे अपनाकर विभिन्न वर्गो के प्रति अपनी निष्ठा को भंग नहीं करना चाहिये।

7. मानवीयता (Humanity):–

एक उद्यमी को उपक्रम में कार्यरत विभिन्न कर्मचारियों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण रखना चाहिये। उसे अपने कर्मचारियों एवं अधीनस्थों के साथ स्नेह, अपनत्व, प्यार व सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। कर्मचारियों के साथ मधुर संबंधों के निर्माण से श्रम आवर्त्तन कम होता है जिससे अनुभवी व योग्य कर्मचारियों का ठहराव एवं उद्यमी के प्रति मान, सम्मान व अपनत्व की भावना में वृद्धि होती है।

8. सुशील स्वभाव (Likeable disposition):–

उद्यमी का स्वभाव सुशील होना चाहिये। सद्व्यवहार, नम्रता, व्यवहार कुशलता, सद्व्यवहार आदि गुणों से सम्पन्न उद्यमी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करता है। सुशील स्वभाव वाला व्यक्ति अपने विरोधियों को भी अपना बनाने की क्षमता रखता है।

9. आदर भाव (Respectful):–

एक सफल उद्यमी में आदर भाव का गुण होना चाहिये। उसे अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति छोटे–बड़े, गरीब–अमीर, शिक्षित–अशिक्षित आदि सभी को सम्मान देना चाहिये क्योंकि कहा भी गया है कि ''सम्मान मांगने से नहीं अपितु दूसरों को सम्मान देने से मिलता है।''

10. व्यावसायिक या पेशेवर गुण:–

एक उद्यमी की सफलता के लिये उसमे व्यावसायिक गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि व्यावसायिक गुण उद्यमी की सफलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। हेनरी पी. डटन (Henry P. Dutton) ने उचित ही लिखा है – ''वह व्यक्ति जिसने एक बार भी व्यवसाय के कार्यो का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, जिसने संगठन, आर्थिक प्रबन्ध, लेखा–विधि सहयोगियों के साथ कार्य करने एवं उनका नेतृत्व करने तथा क्रय–विक्रय के आधारभूत सिद्धान्तों को समझ लिया हो,वह बहुत शीघ्र ही व्यवसाय में कुशलता एवं सफलता प्राप्त कर लेता है।'' एक सफल उद्यमी में निम्नांकित व्यावसायिक गुण अपेक्षित होते है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता का अर्थ बताइये।
2. उद्यमिता की कोई एक परिभाषा दीजिये।
3. साहसी किसे कहते है ?
4. जोखिम का अर्थ बताइये।
5. नवाचार किसे कहते है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता को विस्तार से समझाइये।
2. उद्यमिता की विशेषताएं बताइये।
3. सफल उद्यमी के किन्हीं पाँच गुणों की विवेचना कीजिये।
4. उद्यमी के शारीरिक व मानसिक गुणों का वर्णन कीजिये।
5. उद्यमी के सामाजिक गुणों का वर्णन कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता से आप क्या समझते है ? इसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
2. उद्यमिता के महत्व का वर्णन कीजिये।
3. एक सफल उद्यमी के गुणों की विवेचना कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उद्यमिता विकास कार्यक्रम – अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व
Entrepreneurship Development Programme - Meaning, objective and Importance

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उद्यमी का विषेश योगदान है। उद्यमी आर्थिक विकास का संवाहक है जो देष में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग राष्ट्र हित में करता है। उद्यमिता के विकास के बिना अर्थव्यवस्था के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ऐसे में उद्यमिता विकास के लिए नियोजित प्रयास किए जाने आवश्यक है। उद्यमिता विकास कार्यक्रम (EDPs) इसी दिशा में किया गया प्रयास है। ये कार्यक्रम नये उद्यमियों का निर्माण करते है, श्रेष्ठ समाज के निर्माण का पथ प्रशस्त करते है और उद्यमियों में स्वस्थ एवं रचनात्मक सोच उत्पन्न करते हैं।

उद्यमिता विकास कार्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of EDP)

सामान्य शब्दों में उद्यमिता विकास कार्यक्रम से तात्पर्य किसी ऐसे कार्यक्रम से है जिसका उद्देश्य जनसमूह में से सम्भावित उद्यमियों की खोज करना, उनमें उद्यमिता की भावना का विकास करना तथा तकनीकी एवं प्रबन्धकीय प्रशिक्षण देकर उन्हें अपना उपक्रम स्थापित व संचालित करने में सहयोग देना है। इन कार्यक्रमों के द्वारा उद्यमियों के विकास हेतु योजनाबद्ध प्रयास किए जाते हैं तथा उनके समुचित तथा समग्र विकास की कोशिश की जाती है। इस प्रकार उद्यमिता विकास कार्यक्रम का अर्थ ऐसे प्रयासों है जिसके द्वारा –

1. उद्यमी को शिक्षण–प्रशिक्षण प्रदान कर उसकी बौद्धिक, तकनीकी एवं वैचारिक क्षमताओं को परिमार्जित किया जाता है।
2. उद्यमीय कार्यो के द्वारा उन्हें अपना उपक्रम स्थापित करने में सहयोग प्रदान किया जाता है।
3. उद्यमी की आन्तरिक शक्तियों का विकास कर तथा उद्यमिता की प्रेरणा जागृत कर साहसिकता का मार्ग अपनाने के लिये प्रेरित किया जाता है।
4. दैनिक क्रियाओं में उद्यमीय व्यवहार उत्पन्न करना तथा उसमें सुधार पर बल दिया जाता है।

उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के उद्देश्य (Objectives of EDPs)

उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैः–

1. **प्रथम पीढ़ी के व्यवसायियों का निर्माण करना (To Promote First Generation Businessmen & Industrialists):–**

''उद्यमी पैदा होते है विकसित नहीं किए जा सकते'' इस विचारधारा को परिवर्तित कर उचित प्रशिक्षण देकर उद्यमी का विकास करना तथा जिनके घरों में कभी व्यवसाय की बात नहीं हुई ऐसी पीढ़ी को व्यापार एवं व्यवसाय करने की प्रेरणा देना उद्यमिता विकास कार्यक्रम का प्रथम उद्देश्य है।

2. **उद्यमीय गुणों का विकास करना (To develop entrepreneurs' qualities):–**

उद्यमिता विकास कार्यक्रम से उद्यमीय प्रेरणा वाले व्यक्तियों की पहचान कर उन्हें शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जाकर उनमें उद्यमिता के आवश्यक गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जात है। एक उद्यमी की सफलता उसके गुणों पर निर्भर करती है एवं इन गुणों का विकास उद्यमिता कार्यक्रम के माध्यम से सम्भव हो सकता है।

3. **सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों की जानकारी प्रदान करना (To Provide knowledge about Government plannings & programmes):–**

उद्यमिता विकास कार्यक्रम का यह भी उद्देश्य है कि विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों की जानकारी उद्यमियों को उपलब्ध करायें एवं उनके बारे में जागरूकता पैदा करें। कौन–कौन सी सरकारी योजनाएं है, इन योजनाओं का उपयोग कैसे किया जावें, इनकी विश्वस्त सूचना कहॉ से व कैसे प्राप्त की जावें, कौनसा विभाग कौनसी जानकारी प्रदान करेगा आदि उपयोगी जानकारी प्रदान करना भी उद्यमिता विकास कार्यक्रम के उद्देश्य है।

4. **परियोजना निर्माण में उद्यमियों की सहायता करना (To help in formulation of projects):–**

उद्यमिता विकास कार्यक्रम उद्यमियों को परियोजना निर्माण में आवश्यक सहायता प्रदान करता है। यह उद्यमियों को परियोजना निर्माण हेतु आवश्यक आधारभूत तथ्य, समंक, वित्तीय एवं सरकारी ज्ञान आदि प्रदान करके परियोजना निर्माण को सुगम बनाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. उद्यमिता के लाभ–दोषों से अवगत कराना
(To provide knowledge about advantages and disadvantages) :–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम उद्यमिता अपनाने वाले उद्यमियों को उद्यमिता के लाभ–दोषों से अवगत कराता है जिससे किसी उपक्रम की स्थापना एवं संचालन मं आने वाली कठिनाइयों का मुकाबला किया जा सके। उद्यमिता के क्या–क्या लाभ व फायदें है तथा इसमें कौन–कौन सी सम्भावित चुनौतियाँ होती है इनका ज्ञान उद्यमी को करवाया जाता है।

6. देश के सभी भागों में उद्यमिता को विकसित करना
(To develop enterprises in all areas of country):–

देश के संतुलित आर्थिक विकास हेतु प्रत्येक क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना होनी चाहिए। प्रायः उद्यमी वही पर उद्यम लगाना पसन्द करते है जहॉ पर पहले से उपक्रम स्थापित है ऐसी दशा में उद्यमियों को अल्प विकसित क्षेत्रों में उपक्रम लगाने हेतु प्रेरित किया जाता है।

7. व्यवसाय संचालन व विपणन संबंधी प्रशिक्षण प्रदान करना
(To provide training to operate Business & Marketing):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम का यह भी उद्देश्य होता है कि उद्यमियों को यह सिखाया जावें कि व्यवसाय कैसे किया जाता है, विभिन्न पक्षकारों के साथ कैसे मधुर संबंध स्थापित किये जावें, बाजार विश्लेषण कैसे किया जावें, माल के विपणन के लिये विक्रय, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन की विधि क्या हो, प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला कैसे किया जावें।

8. लघु एवं कुटीर उद्योगों को विकसित करना
(To develop small & cottage industries):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन कर लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना करने की प्रेरणा देना है। लघु एवं कुटीर उद्योग देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते है एवं इनके विकास हेतु स्थानीय समुदाय को शिक्षण–प्रशिक्षण देकर एवं तकनीकी ज्ञान प्रदान करके इन उद्योगों को विकसित करने के प्रयास किये जाते है।

9. उद्यमियों की शंकाओं व समस्याओं का निदान व उपचार
(To Provide solutions entrepreneurs about doubts and problems) :–

जब कोई उद्यमी व्यवसाय स्थापित करता है तो उसके सामने अनेक षंकाएं व समस्याएं आती है। इन शंकाओं व समस्याओं का प्रभावी निदान करना भी इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य है। यही नहीं, समय–समय पर ऐसे विषेशज्ञों के आयोजित किये जाकर उसमें उद्यमियों को आमंत्रित कर प्रत्यक्ष रूप से उनकी समस्याओं को दूर करना एवं उद्यमियों से सुझाव प्राप्त कर उनको लागू करना है।

उद्यमिता कार्यक्रम का महत्व/भूमिका
(Importance/ Role of EDP's)

देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में उद्यमिता कार्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देश में रोजगार के साधनों का सृजन, संतुलित औद्योगिक विकास एवं युवा वर्ग को उद्यमी बनाने में इन कार्यक्रमों का महत्ती योगदान होता हैं। येल बोजन के अनुसार ''उद्यमिता विकास कार्यक्रम आर्थिक विकास का अनिवार्य अंग है।'' इसी प्रकार आर्थर कोल ने भी इसकी सामाजिक उपादेयता को स्वीकार करते हुये लिखा है कि ''उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के अध्ययन से आर्थिक एवं सामाजिक किया में सहायता मिलती है।'' संक्षेप में इसके महत्व को निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।:–

1. नवाचार एवं उत्पाद विविधिकरण को प्रोत्साहन
(Encouragement to innovation and Product diversification):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम से नवाचारों एवं उत्पादन विविधिकरण को प्रोत्साहन मिलता है। इससे नई वस्तुओं का उत्पादन, उत्पादन की नवीन तकनीकी, नये यंत्र व मशीनों का प्रयोग सम्भव होता है। उद्यमिता विकास कार्यक्रम से बाजार अनुसंधान के माध्यम से नये बाजारों का पता लगाया जाता है तथा शोध व अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाता है।

2. देश का तीव्र आर्थिक एवं संतुलित विकास
(Rapic economic & balanced development of the nation):–

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास वहॉ के उद्यमियों पर निर्भर करता है। आज जापान व चीन जैसे देषों का विश्व की अर्थव्यवस्था में सिरमौर स्थान वहॉ के उद्यमियों के कारण से है। भारत भी सन् 2020 तक विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आने की कतार में खड़ा है यह तभी सम्भव है जब देश में उद्यमियों की नई श्रृंखला खड़ी की जावें। उद्यमिता विकास कार्यक्रम नवीन उद्यमियों के निर्माण में काफी मददगार साबित हो सकता है।

यही नहीं, यह कार्यक्रम संतुलित विकास का आधारस्तम्भ है क्योंकि इन कार्यक्रमों से प्रेरित होकर उद्यमी अविकसित एवं अल्पविकसित क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना करने हेतु तत्पर हो जाते है जिससे देश का संतुलित आर्थिक विकास होता है। प्रो. नर्कसे ने लिखा है कि ''उद्यमी संतुलित आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।''

3. संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग
(Optimum utilisation of resources):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम से उद्यमियों को संसाधनों के श्रेष्ठतम उपयोग की विधि व तकनीक का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे उत्पादन के विभिन्न संसाधनों को संयोजित कर उनका

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बेहतर उपयोग करने का प्रयास करते है। यही नहीं, उद्यमी प्रत्येक संसाधन को मूल्य देकर प्राप्त करता है अतः वह सदैव इनके अधिकतम सदुपयोग के प्रति जागरूक बना रहता है।

4. पूँजी निर्माण में सहायक (Helpful in capital formation):–

हमारी की मूल अवधारणा 'आय ज्यादा व खर्चा कम' है, परिणाम स्वरूप देश में लगातार बचतों में वृद्धि होती जाती है। उद्यमी इन बचतों को उद्योगों में अंश, ऋण पत्र, आदि के रूप में उपयोग कर प्रत्यक्ष रूप से पूंजी निर्माण को बढ़ावा देते है। ये इन बचतों को उत्पादक कार्यो में उपयोग करके पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि करते है।

5. औद्योगिक वातावरण का निर्माण (Build industrial environment):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप उद्यमी नये–नये उद्योग धन्धों की स्थापना करते है, नवीन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करते है, नये बाजारों की खोज एवं उन्हें विकसित करते है, औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित स्थानों पर उपक्रम लगाते है, विद्यमान उपक्रमों का विस्तार एवं नवीनीकरण करते है जिससे देश में औद्योगिक क्रियाओं में बढ़ोतरी होती है एवं औद्योगिक वातावरण का निर्माण होता है।

6. उद्यमियों को कानूनी प्रावधान व नीतियों की जानकारी (Knowledge of Legal Provisions & Govt. Policies to entrepreneurs):–

उद्यमी विकास कार्यक्रम उद्यमियों को आधारभूत कानूनी प्रावधान एवं प्रमुख सरकारी नीतियों से अवगत कराता है जिससे उपक्रम ही स्थापना एवं उसका संचालन सुगम हो जाता है। इसी प्रकार केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा जो विभिन्न नीतियां निर्धारित की जाती है उनके बारे में भी उद्यमियों को जानकारी प्रदान की जाती जिससे इनका क्रियान्वयन एवं समन्वय आसानी से हो जाता है।

7. उद्यमियों की शंकाओं एवं समस्याओं का समाधान (Remedies of entrepreneurs' doubts and problems):–

उपक्रम की स्थापना व उसके संचालन के दौरान उद्यमियों को विभिन्न शंकाओं एवं समस्याओं से रूबरू होना पड़ता है। इन शंकाओं एवं समस्याओं की वजह से नवीन उद्यमी उपक्रम स्थापित करने का विचार भी त्याग देते है ऐसी स्थिति में उद्यमिता विकास कार्यक्रम इन उद्यमियों की शंकाओं एवं समस्याओं का त्वरित गति से निदान कर उन्हें अभिप्रेरित करता है।

8. सरकारी नीतियों व योजनाओं का कियान्वयन (Execution of Government Policies & Plannings):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम सरकारी नीतियों व योजनाओं के कियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सरकार की कुछ ऐसी नीतियां व योजनाएँ भी होती है जिनका कियान्वयन उद्यमिता पर काफी निर्भर होता है जैसे– नौकरियों में कमी लाना, स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना, घाटे वाले सार्वजनिक/राजकीय उपक्रमों का विक्रय करना आदि। ऐसी योजनाओं की सफलता उद्यमिता विकास पर ही निर्भर होती है।

9. लघु व कुटीर उद्योगों का विकास (Development of small scale & Cottage Industries):–

उद्यमिता विकास कार्यक्रम स्थानीय जन समुदाय को स्थानीय क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन कर उन्हें लघु व कुटीर उद्योगों की स्थापना करने में सहायता प्रदान करता है। इस कार्यक्रम से उन्हें तकनीक, बाजार एवं कम लागत पर अधिक उत्पादन के बारे में प्रशिक्षित किया जाता है।

10. रोजगार के अवसरों में वृद्धि (Increase in employment opportunities):–

उद्यमिता के विकास से देश में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार के अवसरों का सृजन होता है। देश में नवीन उद्योगों की स्थापना, संचालित उपक्रमों के विकास व विस्तार, नवीन व आधुनिक तकनीक के प्रयोग अदि के परिणाम स्वरूप रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध होते है। इससे न केवल औद्योगिक क्षेत्र में अपितु कृषि, सेवा, व्यापार आदि क्षेत्रों में भी रोजगार में वृद्धि होती है। रिब्सन के मुताबिक ''उद्यमी देश में रोजगार के अवसरों का सृजन करता है।''

11. उच्च जीवन स्तर (High Standard of Living):–

उद्यमिता के कारण समाज में रोजगार की उपलब्धता होती है एवं बाजार में उपभोक्ताओं को अनेक कम्पनियों के उत्पाद उपलब्ध हो पाते है। प्रतिस्पर्द्धा के कारण उद्यमी न्यूनतम मूल्य पर श्रेष्ठ उत्पाद समाज को उपलब्ध करवाने का प्रयास करते है। रोजगार, पूंजी निर्माण, उत्पादों की न्यूनतम मूल्य पर उपलब्धता, उपभोक्ता की रूचि व फैषन के अनुसार उत्पाद की उपलब्धता आदि से जनसामान्य के जीवन स्तर में सुधार होता है।

12. सामाजिक परिवर्तन का माध्यम (Medium of Social Change):–

डोनाल्ड. बी. ट्रो का महत्वपूर्ण कथन है कि ''उद्यमिता सामाजिक परिवर्तन एवं उद्यमीय संस्कृति की स्थापना का महत्वपूर्ण माध्यम है।'' उद्यमी के कारण आत्मनिर्भर समाज की स्थापना सम्भव हो पाती है। समाज उद्योग प्रधान समाज बनाता है जिससे अंधविश्वासों एवं रूढ़िवादिता में कमी आती है। जातिगत रूढ़ियाँ समाप्त होती है एवं सामाजिक समरसता को बढ़ावा मिलता है। समाज में नयी परम्पराएँ व प्रथाएँ प्रचलन में आती है। संक्षेप में, समाज के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान, चिन्तन–मनन आदि में उद्यमिता के कारण सकारात्मक बदलाव होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता विकास कार्यक्रम क्या है ?
2. उद्यमिता विकास कार्यक्रम के कोई दो उद्देश्य बताइये।
3. लघु उद्योग किसे कहते है ?
4. औद्योगिक वातावरण किसे कहते है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता विकास कार्यक्रम के उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।
2. उद्यमिता विकास कार्यक्रम की भूमिका बताइये।

निबंधात्मक प्रश्न :–

1. उद्यमिता विकास कार्यक्रम का अर्थ बताइये तथा इसके उद्देश्यों की विवेचना कीजिये।
2. देश के विकास में उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के महत्त्व की विवेचना कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बीमा : परिचय एवं महत्व

आज संसार का प्रत्येक व्यक्ति अनिश्चतताओं एवं जोखिमों से घिरा हुआ है। जो कुछ उसके पास है, उसे खोने का डर उसे हमेशा सताता रहता है। चाहे वह संसार का सबसे धनी व्यक्ति हो या एक सामान्य आदमी, चाहे वह एक बड़े उद्योग का मालिक हो या एक छोटा या दुकानदार, राजनेता हो या अभिनेता, खिलाड़ी हो या खेल का आयोजक, किसान–मजदूर हो या वैज्ञानिक सभी अपने भविष्य के खतरों से भयभीत रहते है। किसी को अपने स्वास्थ्य की चिन्ता है तो किसी को अपनी मृत्यु के पश्चात् परिवाजनों की, किसी को प्राकृतिक विपदाओं जैसे बाढ़, तूफ़ान, उपद्रव, भूकम्प से सम्पत्ति के नष्ट होने की चिन्ता है तो किसी को अपने व्यवसाय के माल को सुरक्षित रखने की। एक कर्मचारी को अपनी नौकरी की चिन्ता है तो मालिक को कर्मचारी द्वारा विश्वासघात करने का डर सताना है। व्यवसायी को प्रतिस्पर्द्धी की चिन्ता है तो उपभोक्ता को चिन्ता है कि कहीं उसे मिलावटी या नकली माल तो नही दिया जा रहा। साझेदारों को अन्य साझेदारों द्वारा पैसा हड़पने की चिन्ता रहती है तो कारखाने के मालिक को कानूनी पंजों की जोरदार पकड़ होने से अपने कारखाने में काम करने वाले कर्मचारियों एवं श्रमिकों के जीवन की सुरक्षा के उपाय करने की चिन्ता रहती है तात्पर्य यह है कि आधुनिक तकनीकी युग में हम सभी का सम्पूर्ण जीवन एवं चारों ओर का वातावरण भय एवं चिन्ताओं से ग्रस्त है। यही चिन्ताऐं व्यक्ति को जोखिम ग्रस्त करती है और जीवन में अनिश्चतता भी उत्पन्न करती है इसलिए फ्रैंक एच नाईट द्वारा दशकों पूर्व व्यक्त किये गए विचार आज भी सत्य सिद्ध हो रहे है कि ''जोखिम अनिश्चतता का ही नाम है और अनिश्चितता जीवन की आधारभूत वास्तविकताओं में से एक है।''

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी सुरक्षा चाहता है। अपने को सुरक्षित रखने के लिये मनुष्य ने आदिम युग से वर्तमान तक अनेक उपाय किये है, उन्हीं उपायों में से एक है –बीमा। बीमा उतना ही पुराना है जितनी सभ्मता। प्राचीन समय में इसका स्वरूप आपसी सहायता और सहयोग के रूप में था। वर्तमान में बीमा का कार्य कम्पनियों और निगमों द्वारा सम्पादित किया जाता है। ऋग्वेद में बीमे के लिये ''योगक्षेम'' शब्द का प्रयोग किया गया है। मनुस्मृति में भी ''वस्तु के क्रयमूल्य, विक्रयमूल्य, मात्रा की दूरी, सम्बन्धित व्यय और योगक्षेम, अर्थात् जोखिम तथा सुरक्षा को ध्यान में रखते हुये व्यापारियों से कर वसूल किया जाने का उल्लेख आया है। प्रारम्भ में बीमा की जरुरत व्यक्तियों और माल की जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करने के लिये हुई किन्तु वर्तमान में बीमा सुरक्षा के साथ–साथ विनियोग एवं उत्पादन में वृद्धि के अवसर भी उपलब्ध करा रहा है।

बीमा के कारण ही हमारे लिये अनिश्चतताओं एवं जोखिमों से उबरना सम्भव हो पाता हे। इसलिये बीमा एक व्यक्ति, समाज, व्यवसाय और राष्ट्र सभी के लिये आवश्यक आवश्यकता बनता जा रहा है। इसके बिना जोखिम एवं अनिश्चतताओं से भरे संसार में चलना कठिन है। अमेरिकी विहान कालविन कूलिज लिखते हैं– बीमा वह आधुनिक साधन हैं जिसके द्वारा मनुष्य अनिश्चित को निश्चित तथा असमान को समान बना सकता है। यह वह साधन है जिसके द्वारा सफलता को लगभग निश्चित किया जा सकता है। इसके माध्यम से ताकतवर कमजोर की सहायता के लिये अंशदान देता है तथा कमजोर ताकतवर से सहायता प्राप्त करता है किन्तु किसी की कृपा से नही अपितु अधिकार द्वारा जो कि उसने भुगतान करके खरीदा है। बीमा मनुष्य धर्म के सुनहरे नियम के अनुसार कार्य करता है – ''एक दूसरे का कष्ट मिलजुलकर सहन करो''

बीमा : अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of Insurance)

अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से बीमा को परिभाषित किया है। जन–सामान्य एवं समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण से बीता ''जोखिम से सुरक्षा का उपाय'' (A device of protection against risks) माना गया है। अर्थशास्त्रियों ने ''बीमा के अर्थशास्त्र'' को ध्यान में रखकर आर्थिक या व्यवसायिक आधार पर बीमा की परिभाषा की है। कानूनी दृष्टिकोण रखने वालों ने बीमा को एक अनुबन्ध (Contract) बताया है। इस प्रकार विद्वानों ने बीमा की उपयोगिता आधारित, प्रक्रिया आधारित एवं वैधानिक परिभाषाएँ की है। इन सभी को अध्ययन की सुविधा के लिये निम्नलिखित तीन भागों में बाटाँ गया है–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(1) सामान्य परिभाषाएँ
(2) कार्यात्मक परिभाषाएँ
(3) अनुबन्धात्मक / वैधानिक परिभाषाएँ

(1) सामान्य परिभाषाएँ (General Definitions)

सर विलियम बेवरिज के अनुसार, "सामूहिक रूप से जोखिमें उठाना ही बीमा है।" इस परिभाषा के अनुसार किसी एक की जोखिम को जिसे वह अकेला वहन नहीं कर सकता, मिलजुलकर उठाना ही बीमा का कार्य है।

जान मैगी के अनुसार "बीमा वह योजना है जिसके अन्तर्गत एक बड़ी संख्या में लोग मिलकर किन्हीं एकाकी व्यक्तियों की जोखिमों को अपने कन्धों पर ले लेते हैं।

थामस के अनुसार "बीमा एक प्रावधान है जो एक विवेकशील व्यक्ति आकस्मिक अथवा अवश्यम्भावी घटनाओं, हानियों या दुर्भाग्य के विरूद्ध करता है। यह जोखिमों को बाँटने या फैलाने का तरीका है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बीमा जोखिमों को फैलाने का सामाजिक व सहकारी तरीका है, जिसमें समान, जोखिमों से घिरे व्यक्ति अपनी जोखिमों को दूसरे व्यक्ति या किसी संस्था (बीमाकर्ता) को हस्तान्तरित कर देते है अथवा सब मिलकर सामूहिक रूप से बाँट लेते है।

(2) कार्यात्मक / व्यावसायिक परिभाषाऐं

कुछ विद्वानों ने बीमा की कार्यात्मक परिभाषाऐं देते हुये बीमा की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है कि किस प्रकार बीमा द्वारा हानि से सुरक्षा अथवा हानि की पूर्ति की जाती है। इन परिभाषाओं के अनुसार बीमा बीमित को हानि से सुरक्षित करने तथा क्षतिपूर्ति करने की प्रक्रिया है।

ब्रिटानिका विश्वकोष के अनुसार "बीमा एक सामाजिक तरीका है जिसके द्वारा व्यक्तियों का एक बड़ा समूह समान अंशदान की व्यवस्था द्वारा समूह के सभी सदस्यों की कुछ सामान्य मापने योग्य आर्थिक हानि को कम या दूर करता है।

रागल तथा मिलर के अनुसार "बीमा वह सामाजिक उपाय या योजना है जिसके द्वारा एकाकी व्यक्तियों की अनिश्चित जोखिमों को समूह के साथ जोड़ा जा सकता है तथा उन जोखिमों को अधिक निश्चित किया जा सकता है।" सभी व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर दिये गये अल्प अंशदान से निर्मित कोष में से हानि की पूर्ति की जा सकती है।

फेडरेशन ऑफ इन्श्योरेन्स इन्स्टीट्युट्स, मुम्बई के अनुसार "बीमा वह विधि है जिसमें एक समान प्रकार की जोखिम से घिरे व्यक्ति एक सामान्य कोष में से अंशदान करते है जिनमें से कुछ दुर्भाग्यशाली व्यक्तियों की दुर्घटनाओं में हुई हानियों को पूरा किया जाता है।

इन सभी क्रियात्मक परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बीमा एक सामाजिक उपाय है जिसके अन्तर्गत बड़ी संख्या में लोग एक संगठन के अन्तर्गत कुछ जोखिमों से सुरक्षा पाने के लिये अंशदान (प्रीमियम) देकर कोष का निर्माण करते हैं तथा उस कोष में से सदस्यों की जोखिम से होने वाली मापने योग्य आर्थिक हानि की क्षतिपूर्ति की जानी है।

(3) अनुबधात्मक / वैधानिक परिभाषाएँ

ये परिभाषाएँ बीमा के वैधानिक स्वरूप को स्पष्ट करती है–

न्यायमूर्ति टिण्डाल के अनुसार, "बीमा एक अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत बीमित बीमाकर्त्ता को एक निश्चित धनराशि एक निश्चित घटना के घटित होने की जोखिम उठाने के प्रतिफल में देता है।

रीगल तथा मिलर के अनुसार "वैधानिक दृष्टि से यह एक अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत बीमादाता, बीमित को समझोते के तहत होने वाली वित्तीय हानि को पूरा करने का ठहराव करता है और बीमित इसके लिये प्रतिफल (प्रीमियम) चुकाने को सहमत होता है।

पेटरसन के अनुसार "बीमा एक अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार प्रतिफल जिसे प्रीमियम कहते हैं, के बदले किसी दूसरे पक्षकार की जोखिम को ले लेता है तथा किसी विशिष्ट घटना के घटित होने पर उसे या उसके नामांकित व्यक्ति को एक निश्चित या निश्चित की जाने वाली धनराशि के भुगतान का वचन देता है।

बीमा की वैधानिक – परिभाषाऐं स्पष्ट करती है कि बीमा दो पक्षकारों (बीमित और बीमाकर्त्ता) के बीच एक अनुबन्ध है जिसमें बीमाकर्त्ता एक निश्चित प्रतिफल (प्रीमियम) के बदले बीमित को किन्हीं पूर्व निश्चित कारणों से हानि होने पर क्षतिपूर्ति करने अथवा किन्हीं निश्चित घटनाओं के घटित होने पर एक निश्चित अथवा निश्चित की जाने वाली धनराशि के भुगतान करने का वचन देता है।

निष्कर्ष : बीमा की अलग–अलग विद्वानों द्वारा अपने–अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत परिभाषाओं का अध्ययन करने पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बीमा एक सामाजिक एवं सहकारी व्यवस्था है, सामूहिक रूप से जोखिमों को वहन की विधि है जिसमें समान प्रकार की जोखिमों से घिरे व्यक्ति बीमाकर्त्ता को कुछ अंशदान (प्रीमियम) देकर एक कोष का निर्माण कर लेते है तथा बीमाकर्ता इस कोष से बीमित को बीमापत्र में उल्लेखित घटना के घटित होने पर घटना से हुयी वास्तविक हानि की राशि अथवा पूर्वनिर्धारित धनराशि चुका देता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बीमा की विशेषताऐं या प्रकृति (Characteristics or Nature of Insurance)

बीमा की परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर बीमा की निम्नालिखित विशेषताऐं स्वतः परिलक्षित होने लगती है–

1. जोखिमों से सुरक्षा –

बीमा आर्थिक सुरक्षा का कवच है। यह जीवन का माल या सम्पत्ति के सम्बन्ध में व्याप्त जोखिमों को समाप्त नहीं करता बल्कि जोखिमों से सुरक्षित करने का तरीका है।

2. जोखिमों का विभाजन :

बीमा, किसी व्यक्ति, परिवार या संस्था को किसी निश्चित घटना के घटित होने पर होने वाली आर्थिक हानि को सभी बीमित व्यक्तियों में विभाजित करने की युक्ति है। ये घटनाएँ परिवार के सदस्य की मृत्यु, सामुद्रिक दुर्घटनाएँ, चोरी, दुर्घटना, प्राकृतिक प्रकोप आदि किसी भी रूप में हो सकती है।

3. सहकारी व्यवस्था :

प्रो. आर.एस. शर्मा के अनुसार ''बीमा एक सहकारी व्यवस्था है।'' बीमा का आधार सहकारिता का सिद्धान्त है अर्थात् ''एक सबके लिये और सब एक के लिए''। बीमा के अन्तर्गत सामूहिक हित के लिए कुछ लोग स्वेच्छा से अंशदान देकर एक कोष का निर्माण किया जाता है तथा किसी भी सदस्य को हानि होने पर कोष में से क्षतिपूर्ति की जाती है।

4. विस्तृत क्षेत्र :

बीमा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें जीवन बीमा, अग्नि बीमा, सामुदिक बीमा के अलावा अनेक आधुनिक या गैर पारम्परिक बीमा भी सम्मिलित है। इन गैर पारम्परिक बीमा में हम कृषि बीमा, पशुधन बीमा, झोपड़ी बीमा, चिकित्सा बीमा, वाहन बीमा, विश्वसनीयता बीमा आदि को सम्मिलित करते है।

5. शुद्ध जोखिमों का बीमा :

जोखिमें दो प्रकार की होती है – प्रथम शुद्ध जोखिमें तथा द्वितीय परिकल्पी जोखिमें। शुद्ध जोखिमें वे है जिनमें केवल हानि की ही सम्भावना होती है। परिकल्पी अथवा सट्टे की जोखिमें, वे होती है जिनमें हानि एवं लाभ दोनों की ही सम्भावनाऐं बनी रहती है। बीमा केवल भावी शुद्ध हानियों से सुरक्षा का साधन है। अतः केवल शुद्ध जोखिमों का ही बीमा करवाया जा सकता है।

6. लोकनीति या लोकहित के विरूद्ध नहीं :

बीमा उन कार्यों के लिये नहीं करवाया जा सकता जो लोकहित के विरूद्ध है। उदाहरण के लिये चोर, डकैत या जेबकतरे आदि अपने लूट के माल का बीमा नहीं करवा सकते, क्योंकि ये कार्य लोक–हित के विरूद्ध होते है।

7. कानून द्वारा नियमन :

वर्तमान में प्रत्येक देश में बीमा कार्य का देश की सरकार के द्वारा नियत्रंण किया जाता है। प्रत्येक देश की सरकार बीमा व्यवस्था के संचालन हेतु कानून बनाती है हमारे देश में जीवन बीमा अधिनियम, समुद्री बीमा अधिनियम, साधारण बीमा (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम तथा बीमा नियामक एवं विकास प्राधिकरण (IRDA) आदि के द्वारा बीमा का नियमन एवं नियत्रंण किया जाता है।

8. जोखिमों का मूल्यांकन :

बीमा करने से पहले बीमाकर्ता द्वारा जोखिम की सम्भावना और जोखिम की राशि दोनों को पहले निर्धारित कर लिया जाता है। उसके आधार पर ही बीमित से प्रीमियम लिया जाता है। ''जितनी अधिक जोखिम उतना अधिक प्रीमियम''

9. बीमा जुआ नहीं–

बीमा जुआ नहीं है। जुए में एक पक्षकार को हानि होती है और दूसरे को लाभ जबकि बीमा में ऐसा नहीं है। बीमा हानि से बचने के लिये करवाया जाता है जबकि जुआ को मनोरंजन या लाभ प्राप्त करने के लिये खेला जाता है। बीमा एक वैध अनुबंध है जबकि जुए को अनुबन्ध अधिनियम में व्यर्थ घोषित किया गया है। बीमा जनहित के लिये किया जाता है जबकि जुए में जनहित नहीं होता। बीमा में भाग्य का महत्व नहीं जबकि जुए में भाग्य का बहुत महत्व होता है।

10. बीमा दान नहीं :

बीमा दान भी नहीं हैं, क्योंकि दान बिना किसी वास्तविक प्रतिफल के लिए ही दिया जाता है। जबकि बीमा में वैध और वास्तविक प्रतिफल होता है। बीमाकर्ता बीमित से एक निश्चत प्रतिफल (प्रीमियम) लेता है जबकि दान लेने वाले को कुछ देना नहीं पड़ता। बीमा एक व्यापार है। दानकर्ता को दान के बदले कुछ आर्थिक लाभ नहीं मिलता।

11. अन्य विशेषताएँ:

(1) बीमा कुछ सिद्धान्तों पर आधारित है। (2) बीमा एक संस्थागत ढाँचा बन गया है।

बीमा सम्बन्धी महत्वपूर्ण शब्दावली

बीमा के दौरान कुछ शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हे समझना आवश्यक है–

(1) बीमाकर्ता –

वह व्यक्ति या संस्था जो किसी दूसरे व्यक्ति को जोखिमों से होने वाली हानि की पूर्ति का वचन देती है।

(2) बीमित या बीमाकृत या बीमादार –

बीमा अनुबन्ध का दूसरा पक्षकार जो बीमा की विषयवस्तु का स्वामी होता है या जिसका बीमा की विषयवस्तु में हित होता है। बीमित कोई व्यक्ति, फर्म या संस्था अथवा कम्पनी के रूप में हो सकता है। यह बीमाकर्ता को प्रीमियम का भुगतान करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(3) प्रीमियम –

यह बीमा अनुबन्ध का प्रतिफल या मूल्य है जो बीमाकर्ता बीमित से प्राप्त करता है।

(4) बीमा की विषयवस्तु –

जिस जीवन या सम्पति का बीमा किया जाता है वह बीमा की विषयवस्तु कहलाती है।

(5) अल्प बीमा –

जब किसी सम्पति का बीमा उसके मूल्य से कम धनराशि का कराया जाता है तो उसे अल्प बीमा कहते है।

(6) अधिबीमा–

जब किसी सम्पति का बीमा उसके मूल्य से अधिक धनराशि का काराया जाता है तो उसे अधिबीमा कहते है।

(7) पुनर्बीमा –

जब कोई बीमाकर्ता अपनी जोखिम को कम करने के लिये किसी दूसरे बीमाकर्ता से अपने द्वारा बीमाकृत जोखिम का पुनःबीमा करवा लेता है तो उसे पुर्नबीमा कहते है।

(8) दोहरा बीमा–

जब कोई बीमित एक ही विषयवस्तु पर एक से अधिक बीमाकर्ताओं से अधिक बीमापत्र क्रय करता है तो उसे दोहरा बीमा कहते है।

(9) बीमापत्र –

बीमापत्र वह लिखित प्रलेख है जिसके द्वारा बीमाकर्ता एवं बीमित के बीच बीमा अनुबन्ध किया जाता है।

(10) कालानीत बीमापत्र –

कालातीत बीमापत्र वह है जिसकी देय प्रीमियम का भगुतान यथासमय नहीं होने के कारण बीमित के लाभ प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

(11) एश्योरेन्स –

इस शब्द का प्रयोग उन बीमा अनुबन्धों के लिये किया जाता है जिसमें बीमाकर्ता का दायित्व निश्चित रहता है, जीवन बीमा अनुबंधों के लिये एश्योरेन्स शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(12) इन्श्योरेन्स –

इस शब्द का प्रयोग उन अनुबंधों के लिये किया जाता है जिसमें हानि होने की सम्भावना तो पायी जाती है किन्तु हानि होना निश्चित नहीं होता। क्षतिपूर्ति अनुबन्धों (अग्नि, समुद्री बीमा) में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

(13) जोखिम–

किसी अनिष्ट, क्षति, विनाश, हानि या दुर्घटना, सम्भावना या अनिश्चितता को ही जोखिम कहते है।

(14) बीमा संकट (Hazard) -

वे कारण जो किसी विशेष स्थिति में विषयवस्तु की हानि उत्पन्न करते है या हानि की सम्भावना को बढ़ाते है।

बीमा का क्षेत्र एवं प्रकार
Scope and Kinds of Insurance

ऐसा माना जाता है कि बीमा का आधुनिक स्वरूप जो हमे देखने को मिल रहा है इसका प्रारम्भ 13वीं शताब्दी में हुआ है। बीमा की उत्पत्ति एवं विकास पर नजर डाले तो सर्वप्रथम सामुद्रिक बीमा का वर्णन मिलता है। इसके बाद धीरे–धीरे अग्नि बीमा, जीवन बीमा तथा अन्य बीमों का प्रचलन हुआ है। वर्तमान में अनेक प्रकार के बीमे प्रचलित है यानि आवश्यकता एवं जोखिमों की विविधताओं के अनुसार अलग–अलग प्रकार के बीमें, बीमाकर्ताओं द्वारा किये जाते है वर्तमान युग में बीमा का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। अध्ययन की सुविधा के लिये हम निम्नलिखित प्रमुख आधारों पर बीमा का वर्गीकरण कर सकते है

(1) बीमा की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण
(2) व्यावसायिक आधार पर वर्गीकरण
(3) जोखिम के आधार पर वर्गीकरण

बीमा भी प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण

बीमा की प्रकृति के आधार पर बीमा को निम्नलिखित पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है

1. जीवन बीमा
2. अग्नि बीमा
3. समुद्री बीमा
4. सामाजिक बीमा तथा
5. विविध बीमा

1. जीवन बीमा (Life Insurance) -

जीवन बीमा के अन्तर्गत व्यक्तियों के जीवन का बीमा किया जाता है। इसमें बीमे की विषयवस्तु 'मानव जीवन' होता है। जीवन बीमा में बीमाकर्ता एक निश्चित प्रतिफल (प्रीमियम) के बदले बीमित को उसकी मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को अथवा निश्चित अवधि पूर्ण होने पर बीमित को एक निश्चित धनराशि देने का वचन देता है। बीमित को एक निश्चित समयावधि तक प्रीमियम की राशि चुकानी होती है। यदि बीमित निश्चित प्रीमियम अवधि के पूर्व ही मर जाता है तो उसके उत्तराधिकारी को आगे प्रीमियम नहीं देनी पड़ती है, बीमित की मृत्यु की दशा में उनके नामांकित अथवा उत्तराधिकारी को ही बीमे की राशि प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है।

जीवन बीमा बीमित एवं उसके परिवार के सदस्यों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी व्यक्ति का, जिसके जीवन में उसका बीमायोग्य हित है, बीमा करवा सकता है। जीवन बीमा में सुरक्षा के साथ–साथ विनियोग तत्व भी होता है। हमारे देश में जीवन बीमा व्यवसाय ''भारतीय जीवन बीमा निगम'' (LIC) के साथ–साथ कुछ निजी कम्पनियों जेसे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कोटक महिन्द्रा, बजाज एलियाज और आईसीआईसीआई प्रुडेंशियल द्वारा भी किया जाता है।

2. अग्नि बीमा (Fire Insurance) –

अग्नि बीमा वह बीमा है जिसमें बीमाकर्ता बीमित को आग लगने से सम्पति को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति का वचन देता है। यह क्षतिपूर्ति का बीमा होता है जिसमें बीमाकर्ता द्वारा केवल वास्तविक हानि की क्षतिपूर्ति की जाती है। अग्निबीमा सामान्यतः एक वर्ष की अवधि के लिये ही करवाया जा सकता है। यह बीमा आग से होने वाले नुकसान के अतिरिक्त कुछ निश्चित परिणामजन्य हानियों की क्षतिपूर्ति के लिये भी किया जाता है। यह बीमा दंगो, बलवों, उपद्रवों, गैस विस्फोट, भूकम्प, आँधी, बाढ़, जल–प्लावन, वायुयान क्षति, बिजली गिरने आदि जोखिमों से सम्पति की सुरक्षा के लिये भी कराया जा सकता है।

आधुनिक औद्योगिक युग में अग्नि बीमा का महत्व बहुत अधिक है। कारखानों, गोदामों, दुकानों, आवासीय बस्तियों में अग्नि का खतरा बढ़ रहा है। अत्यधिक विद्युत उपयोग या विद्युतयुक्त निर्माण प्रक्रिया में भी सभी जगह अग्नि से हानि की जोखिम बढ़ी है।

3. समुद्री बीमा (Marine Insurance) –

'समुद्री बीमा' विभिन्न सामुद्रिक जोखिमों से जहाज, माल एवं भाड़े की रकम के सम्बन्ध में होने वाली क्षतिपूर्ति का बीमा है। समुद्री बीमा जहाज, जहाज में ढोये जाने वाले माल, जहाज के भाड़े आदि का करवाया जा सकता है। समुद्री तूफान आने, जहाज के दूसरे जहाज या चट्टान से टकरा जाने पर होने वाली क्षति के लिये सामुद्रिक बीमा करवाया जाता है।

समुद्री बीमा में दो प्रकार के बीमों को सम्मिलित किया जाता है– प्रथम, महासागर सामुद्रिक बीमा एवं द्वितीय अन्तरस्थलीय अर्थात् देशीय सामुद्रिक बीमा। प्रथम बीमा सामुद्रिक जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करता है, जबकि द्वितीय प्रकार के समुद्री बीमे में उन अन्तस्थलीय जोखिमों के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान की जानी है जो बीमित तथा क्रेता (आयातक) के गोदाम तक माल की सुपुर्दगी लेन–देन के दौरान उत्पन्न होती है।

4. सामाजिक बीमा (Social Insurance) –

समाज के निम्न एवं बेसहारा वर्ग को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये सामाजिक बीमा योजनाओं का विकास किया गया है। वर्तमान में सरकार जनकल्याण की भावना एवं कमजोर वर्गो के उत्थान हेतु सामाजिक बीमा योजनाऐं प्रारम्भ करती है। इस बीमा के अन्तर्गत बेरोजगारी, बीमारी, आकस्मिक, दुर्घटनाओं, वृद्धावस्था, प्रसूति, मृत्यु आदि अनेक जोखिमों का बीमा किया जाता है। राष्ट्रीय श्रम आयेाग ने सामाजिक बीमा को परिभाषित करते हुये लिखा है कि ''सामाजिक बीमा वह योजना है जो अल्प आय वर्ग के लोगों को अधिकार पूर्वक वह राशि लाभ के रूप में प्रदान करती है जो बीमित, सेवायोजक तथा सरकार के अंशदान से एकत्रित होती है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक बीमा एक ऐसी युक्ति है जिसके द्वारा बीमित की बेरोजगारी, बीमारी या आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय जीवन–स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य सेएक सामान्य कोष में से सुविधाऐं प्रदान की जाती है। इस कोष का निर्माण श्रमिकों सरकार एवं सेवाजकों के त्रिदलीय अंशदान से किया जाना है।

सामाजिक बीमा के मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार है–

1. बीमारी बीमा–

इसमें बीमित व्यक्ति के बीमार पड़ जाने पर दवाइयाँ, चिकित्सा सुविधा तथा बीमारी की अवधि में वेतन की क्षति की पूर्ति व्यवस्था की जाती है। सामान्य बीमा निगम द्वारा इस हेतु मेडीक्लेम की योजना चलायी गई है।

2. मृत्यु बीमा –

इसमें बीमित की कार्य के दौरान मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों को पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से एक धनराशि प्रदान की जाती है। इस प्रकार नियोक्ता अपने कर्मचारियों का मृत्यु बीमा करवाकर अपने दायित्वों का हस्तान्तरण बीमाकर्ता को करता है।

3. असमर्थता बीमा–

इसमें कारखाने में दुर्घटना के किसी कर्मचारी के कार्य करने में पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से अपंग हो जाने पर क्षतिपूर्ति का प्रावधान होता है। यद्यपि 'श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम' के अनुसार यह दायित्व सेवायोजकों का होता है किन्तु नियोक्ता इस प्रकार का बीमा करवाकर अपने दायित्व का हस्तान्तरण बीमा कम्पनी को कर सकता है।

4. बेरोजगारी बीमा –

जब कुछ विशिष्ट कारणों से बीमित बेरोजगार हो जाता है तो उनके पुनः रोजगार मिलने तक की अवधि के लिये आर्थिक सहायता दी जाती है।

5. वृद्धावस्था बीमा –

इस प्रकार के बीमों में बीमाकर्ता बीमित या उसके आश्रितों को एक निश्चित आयु के बाद वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह बीमित को वृद्धावस्था में सहायता पहुँचाने की योजना है।

सरकार की सामाजिक न्याय की विचारधारा के प्रचार प्रसार के कारण वर्तमान में हमारे देश में सरकार ने कुलियों, रिक्शाचालकों, भूमिहीन, मजदूरों, सफाई मजदूरों, कारीगरों, हस्तशिल्पियों आदि समाज के कमजोर वर्गों के लिए विभिन्न बीमा योजनाऐं प्रारम्भ की है जिसमें केवल नाममात्र प्रीमियम देना पड़ता है। कुछ योजनाओं में तो बिना प्रीमियम के भी दुर्घटना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लाभ की व्यवस्था की गयी है।

5. विविध बीमे–

शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, स्वचालन और तकनीकी विकास के फलस्वरूप जोखिमों के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। हमारे जीवन में विभिन्न प्रकार की जोखिमों का विस्तार हुआ जोखिमों विविधता एवं विस्तार के कारण बीमाकर्ता द्वारा वर्तमान में आवश्यकता आधारित अनेक बीमा योजनाओं का विकास किया गया है। ऐसे कुछ बीमा अनुबन्धों का आगे वर्णन किया जा रहा है।

(1) वाहन बीमा –

सड़क यातायात के अनेक स्वचलित एवं कीमती वाहनों यथा बस, ट्रक, स्कूटर, मोटरसाईकिल कार आदि का बीमा करवाना अनिवार्य है। ऐसे वाहनों का बीमा करवाने से दुर्घटना में वाहन तथा तृतीय पक्षकार को होने वाली क्षति की पूर्ति बीमकर्ता से करवायी जा सकती है। वाहन बीमा की अवधि एक वर्ष होती है। इसमें बीमा कम्पनी तीनों प्रकार की अर्थात् वाहन की क्षति, वाहन स्वामी को हुई क्षति एवं वाहन से तीसरे पक्षकार को होने वाली क्षति का दायित्व ग्रहण किया जाता है।

(2) व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा–

इस बीमे की दशा में दुर्घटना जैसे– मृत्यु, स्थायी या आंशिक रूप से असमर्थ होने की स्थिति में बीमित को होने वाली सम्भावित हानि की पूर्ति का उत्तरदायित्व बीमाकर्ता द्वारा ग्रहण किया जाता है। दुर्घटना में मृत्यु होने पर अथवा पूर्ण अयोग्यता होने पर बीमा की सम्पूर्ण राशि की क्षतिपूर्ति दी जाती है जबकि आंशिक अयोग्यता की दशा में बीमापत्रों की शर्तों के अनुसार एक निश्चित अनुपात में क्षतिपूर्ति की जाती है। साधारण बीमा निगम की चार सहायक कम्पनियाँ व्यक्तिगत दुर्घटना के सम्बन्ध में 'जनता दुर्घटना बीमापत्र'' का निर्गमन करती है। यह वायुउड़ान एवं रोडवेज यात्रा के अन्तर्गत भी प्रचलित है।

(3) चोरी–डकेती बीमा–

इस प्रकार के बीमों में बीमाकर्ता बीमित को चीरी, सेंधमारी, उठाईगीरी आदि से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति का वचन देता है। बीमित अपने मकान, दूकान, माले–गोदाम, यात्रा के दौरान ले जाये जा रहे समान, लाये एवं ले जाये जाने वाले धन, आदि का बीमा करवाता है। यह सिनेमाग्रहों, पेट्रोल पम्पों, आवासीय होटलों, बैंक, वितीय संस्थाओं आदि के लिये उपयोगी होता है।

(4) पशुधन बीमा–

पशुधन बीमा का बीमा इस प्रकार के बीमा में यदि पशुओं में महामारी बीमारी के कारण या अन्य किसी कारण से पशुओं की हानि होती है तो बीमाकर्ता बीमित को क्षतिपूर्ति कर देता है। इसमें गाय, बैल, भैंस, गधे, घौड़े, ऊँट, भेड़, बकरी आदि का बीमा सम्मिलित है।

(5) फसल बीमा–

कृषि की जोखिमों के कारण कुछ वर्षों से यह बीमा काफी प्रचलित है। इसमें जलवायु सम्बन्धी कारणों यथा सूखा, बाढ, आंधी, तूफान, पौधों की बीमारी से महामारी प्रकोप से होने वाली क्षति की बीमित को क्षतिपूर्ति की जाती है।

(6) अपराध बीमा–

इसमें डकैती, लूटपाट, उपद्रवों, आंतक कार्यवाहियों आदि से सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। बैंक, वित्तीय संस्थाऐं, यातायात संस्था, होटल, पेट्रोल पम्प तथा अन्य व्यावसायिक संस्थान इस बीमे के द्वारा सुरक्षित हो सकते है।

(7) अन्य बीमे–

उपरोक्त के अतिरिक्त आजकल कई अन्य बीमे भी प्रचलित है। उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं उनमें से कुछ है– साईकिल बीमा, बैलगाड़ी बीमा, कुक्कुट बीमा, वायुयात्रा, वन बीमा, सुन्दरता का बीमा, उद्यमी का बीमा, होटल के ग्राहको का बीमा, सामान का बीमा आदि।

(7) अन्य बीमे–

उपरोक्त के अतिरिक्त आजकल कई अन्य बीमे भी प्रचलित है। उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं उनमें से कुछ है– साईकिल बीमा, बैलगाड़ी बीमा, कुक्कुट बीमा, वायुयात्रा, वन बीमा, सुन्दरता का बीमा, उद्यमी का बीमा, होटल के ग्राहको का बीमा, सामान का बीमा आदि।

(8) प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना (PSBY) –

18 से 70 वर्ष की आयु तक का व्यक्ति यह बीमा करवा सकता है। मात्र 12 रु की राशि प्रीमियम के रुप में भुगतान सीधे उस व्यक्ति के बैंक खाते से हो जाता है। यह एक वर्षीय बीमा है। यह माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 2015 में प्रारम्भ किया गया है। जहाँ बीमित की मृत्यु पर 2 लाख रूपये और शारीरिक क्षति अथवा हाथ या पैर के काम करने के काम करने में असमर्थ होने पर 1 लाख रूपये का भुगतान बीमित को किया जाना है। इसके लिये बीमित का बैंक खाता होना अनिवार्य है।

(9) प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (PMJJBY)

यह बीमा भी वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी द्वारा प्रारम्भ किया गया है। 5 वर्ष से 18 वर्ष तक की आयु के सभी व्यक्तियों के लिये है। इसमें बीमित को 2 लाख रू तक की सुरक्षा प्रदान की जाती है। प्रीमियम का भगुतान सीधे बैंक खाते से दिया जाता है। यह बीमा भी एक वर्ष के लिये होता है इसकी प्रीमियम राशि 380 रू प्रतिवर्ष है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बीमा के उद्देश्य / कार्य (Purpose/Functions of Insurance)

रीगल और मिलर के अनुसार बीमा का उद्देश्य या कार्य मुख्यतः भावी घटनाओं की अनिश्चितता को कम करना है। वास्तव में लोगों ने अपनी अनिश्चितता में निश्चितता को ढूँढने एवं अपनी जोखिमों को असीमित करने के उद्देश्य से सामूहिक प्रयास के रूप में बीमा की खोज की है। परन्तु समय के साथ–साथ वर्तमान में बीमा जोखिमों से सुरक्षा के साथ–साथ और अनेक कार्यों को पूरा कर रहा है। जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के लिये उपयोगी साबित हुए है। बीमा के उद्देश्यों / कार्यों को अध्ययन की सुविधा के लिये निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

बीमा के उद्देश्य / कार्य

1. प्राथमिक उद्देश्य / कार्य,
2. सहायक उद्देश्य / कार्य,
3. सामान्य उद्देश्य / कार्य,

प्राथमिक उद्देश्य / कार्य

इनमें उन उद्देश्यों / कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जिसके लिये बीमा का विकास हुआ हैं। ये उद्देश्य / कार्य है–

1. जोखिमों के विरूद्ध निश्चिंतता प्रदान करना –

बीमा का मूलभूत उद्देश्य / कार्य बीमित की जोखिमों का कम करना तथा हानियों की अनिश्चितता को कम करना हमारे जीवन में, हमारे व्यवसास में अनेक जोखिमें रहती है। इनमें से कुछ जोखिमों (अनिश्चितताओं) को एक निश्चित राशि प्रीमियम के रूप में देकर बीमाकर्ता को हस्तान्तरित कर सकते है। ध्यान रहे कि बीमा के द्वारा किसी व्यक्ति (बीमित) की जोखिम को केवल निश्चित किया जा सकता है किन्तु किसी कार्यविशेष में विद्यमान जोखिम को कम या समाप्त नहीं किया जा सकता। वास्तव में बीमा बीमित की जोखिम को बीमाकर्ता को हस्तान्तरित करने की विधि है बीमाकर्ता बीमित को विश्वास दिलाता है कि हानि का भुगतान किया जायेगा। ऐसी निश्चितता प्रदान करने के लिये ही बीमाकर्ता प्रीमियम वसूल करता है।

2. सुरक्षा प्रदान करना –

बीमा का उद्देश्य आर्थिक हानि के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना है। इसके द्वारा कोई भी व्यक्ति या संस्था अपनी हानि के सम्भावित अवसरों के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त कर सकता है। हानि का समय और राशि अनिश्चित होती है। बीमा जोखिम को नही रोक सकता लेकिन जोखिम घटने से होने वाली आर्थिक हानि के भुगतान की व्यवस्था पर बीमित को सुरक्षा प्रदान करता है। बीमा के जरिए कोई व्यक्ति अपनी सम्पति, यथा मकान फर्नीचर, मूल्यवान वस्तुओं, धनराशि आदि अग्नि, चोरी, डकैती से बीमा करवाकर सुरक्षित हो सकता है। इसी प्रकार उद्योगपति और व्यवसायी भी अपने माल, मशीन, कर्मचारी आदि सभी का बीमा करवाकर सुरक्षित हो सकते है।

3. जोखिमों का विभाजन या फैलाव करना –

निःसंदेह आपदा या जोखिम तो बीमित (व्यक्ति / संस्था) को वहन करनी पड़ेगी पर इससे उत्पन्न होने वाली आर्थिक हानि को उन लोगों में विभाजित किया जा सकता है, जो ऐसी हानियों से सुरक्षा चाहते हैं। इसलिये सर विलियम बेवरिज ने भी लिखा है ''सामूहिक रूप से जोखिमें उठाना ही बीमा है। बीमा के अन्तर्गत समान प्रकार की जोखिमों से घिरे हुए व्यक्ति प्रीमियम के रूप में एक कोष में अंशदान करते हैं और उनमें से किसी भी सदस्य की हानि होने पर उस कोष से क्षतिपूर्ति कर दी जाती है। इस प्रकार बीमा में एक व्यक्ति की हानि को अनेक व्यक्तियों द्वारा बाँट कर वहन कर लिया जाता है।

4. जोखिमों का मूल्यांकन करना –

बीमा, बीमित के जोखिम का मूल्यांकन एवं निर्धारण भी करता है। बीमाकर्ता कई घटकों पर विचार करके हानि की सम्भावितता (Probability) को आंकता है। उसके अनुसार बीमित के अंशदान को निर्धारित करता है। जोखिम की मात्रा के अनुसार ही अंशदान (प्रीमियम) की राशि तय की जाती है।

5. अनुसंधान करना –

बीमा का उद्देश्य बीमा क्षेत्र में अनुसंधान करना है ताकि ग्राहकों (बीमितों) की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुसार अपनी बीमा योजनाओं में बीमाकर्ता परिवर्तन कर सके। बीमाकर्ता हानियों के कारणों के अनुसंधान पर ध्यान देकर भावी हानियों को रोकने के लिये भी प्रयत्नशील रहते हैं।

5. अनुसंधान करना –

बीमा का उद्देश्य बीमा क्षेत्र में अनुसंधान करना है ताकि ग्राहकों (बीमितों) की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुसार अपनी बीमा योजनाओं में बीमाकर्ता परिवर्तन कर सके। बीमाकर्ता हानियों के कारणों के अनुसंधान पर ध्यान देकर भावी हानियों को रोकने के लिये भी प्रयत्नशील रहते हैं।

(2) सहायक कार्य

1. हानियों से सुरक्षा के लिए सतर्क करना –

बीमा का एक उद्देश्य / कार्य समाज को हानियों से सुरक्षित रहने के उपायों से अवगत करवाना तथा हानियों से सतर्क रखना भी है। बीमा कम्पनियाँ समय–समय पर बीमितों को उन तरीकों से अवगत करवाती है जिनसे भविष्य में जोखिम से रक्षा की जा सके अथवा हानियों को कम किया जा सके। इससे बीमाकर्ता द्वारा बीमितों को हानि की दशा में कम क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है। भारत में बीमाकर्ताओं द्वारा ''Loss Prevention Association of India'' (भारतीय क्षति रोकथाम संघ) की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्थापना की है। यह संघ अपने विज्ञापनों द्वारा जनता को भावी हानियों से सतर्क करता है। कई बीमा कम्पनियाँ अपने बीमितों का समय–समय पर स्वास्थ्य परीक्षण करवाती है तथा भविष्य में होने वाली बीमारियों का पूर्व में ही रोकथाम हो जाए।

हानियों से सुरक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये बीमा कम्पनियाँ कुछ प्रोत्साहन भी देती है। ये कम्पनियाँ उन बीमितों को बीमा प्रीमियम में रियायत देती है जिन्होंने पिछले वर्षों में क्षतिपूर्ति का दावा प्रस्तुत नहीं किया है। वाहन बीमा के क्षेत्र में बीमा कम्पनियाँ बीमितों को Non claim Bonus के रूप में आगामी प्रीमियम में रियायत देती ।है। इसमें बीमित और अधिक सतर्कता बरतते है। समुद्री बीमा कम्पनियाँ उन बीमितों के कम दर पर प्रीमियम वसूल करती है जो बहुत अच्छे ढंग से पैकिंग करते हैं।

2. वित्तीय सहायता उपलब्ध करना –

बीमा संगठन, उद्योग, व्यापार व्यवसाय आदि समस्त आर्थिक क्रियाओं तथा आधारभूत उद्योगों के विस्तार हेतु व्यक्तियों, संस्थाओं तथा सरकार को वित्तीय कोष उपलब्ध कराते है। इन बीमा कम्पनियों के विशाल वित्तीय कोषों का उपयोग उत्पादक कार्यों हेतु किया जाता है जिसके फलस्वरूप देश के आर्थिक विकास की दर में वृद्धि की जा सकती है।

3. वृहद्स्तरीय उपक्रमों के विकास में योगदान देना –

बीमा वृहद्स्तरीय उपक्रमों एवं उद्योगों के विकास में सहायक होता है। इनमें जोखिम की मात्रा अधिक होती है। अतः ऐसी दशा में वित्तीय संस्थान उन्हीं उपक्रमों एवं उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं जिन्होंने संभावित जोखिमों के विरूद्ध अपनी सम्पत्तियों का बीमा करवा लिया है। इससे वित्तीय संस्थाओं के साधन सुरक्षित हो जाते हैं।

4. कार्यक्षमता में वृद्धि –

बीमा, मनुष्य जीवन एवं सम्पति के विनाश के फलस्वरूप होने वाले दुख तथा हानि के सम्बन्ध में चिन्ताहरण शस्त्र के रूप में कार्य करता है। बीमा हमें चिन्ताओं से राहत दिलाता है। चिन्तारहित व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ होता है। फलतः उसकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है और उसका लाभ सम्पूर्ण समाज को मिलता है।

(3) परोक्ष / सामान्य कार्य

1. निर्यातों को प्रोत्साहन देना –

बीमा सुविधा के अभाव में निर्यात व्यापार में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती है। बीमा सुविधा के अभाव के कारण ही पहले बहुत कम विदेशी व्यापार होता था। बीमा सुविधा के कारण ही निर्यात व्यापार में बढ़ोतरी हुई है।

2. बचत का साधन –

बीमा का एक उद्देश्य / कार्य बचत का साधन प्रदान करना भी है। भारत में जीवन बीमा बचत का अच्छा साधन माना जाता है। कई लोग बीमा प्रीमियम की आयकर में छूट मिलने के कारण भी जीवन बीमा करवाना उचित समझते हैं।

3. सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना –

बीमा का उद्देश्य सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना भी है। यह सामान्य लोगों के मृत्यु पर उनके आश्रितों को ही नहीं, बल्कि बीमारी, वृद्धावस्था, गर्भावस्था आदि के समय स्वयं बीमित व्यक्ति को भी सुरक्षा प्रदान करता है।

4. विदेशी मुद्राकोष में योगदान –

विदेशी व्यापार की दशा में बीमा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही होता है। इसमें बीमा कम्पनियों को विदेश जाने वाले माल के बीमे की प्रीमियम विदेशी मुद्रा में प्राप्त होती है, फलतः बीमा विदेशी मुद्रा की प्राप्ति में योगदान देता है।

5. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में योगदान करना –

यह ग्रामीणों की विविध प्रकार के बीमा यथा फसल बीमा, पशु बीमा आदि की सुविधा प्रदान कर उनकी सम्पति को सुरक्षित करता है तथा उनके द्वारा लिये गये ऋणों के लिये उनका बीमा करके अनेक प्रकार की सहायता कर रहा है।

बीमा की आवश्यकता / महत्त्व

मनुष्य जीवन में जितनी अधिक अनिश्चितताएँ और जोखिमें बढ़ेगी उतना ही बीमा का महत्व बढ़ेगा। आज के इस तकनीकी, वैज्ञानिक एवं मशीनी युग में जहाँ एक ओर हम विभिन्न प्रकार के खतरों में जीवन यापन कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर इनसे उत्पन्न होने वाली जोखिमों से सुरक्षा की चिन्ता हमें निरन्तर सताती रहती है। अब प्रत्येक व्यक्ति जोखिमों एवं अनिश्चितताओं से घिरा हुआ है और बीमा उनसे उबरने का बहुत आसान तरीका बन गया है। इस कारण बीमा का महत्व एक व्यक्ति या परिवार तक ही सीमित नहीं है वरन् इसका महत्व सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में है। आज प्रत्येक व्यक्ति चिन्तामुक्त होकर रहना चाहता है, मानसिक शांति चाहता है, ऐसे में उसके पास अपनी भावी अनश्चितताओं और जोखिमों से सुरक्षा या बचाव का एकमात्र विकल्प है – बीमा। प्रो. डिनाडेल ने एक छोटे से वाक्य के जरिये बीमा की उपयोगिता एवं महत्व को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि ''आधुनिक विश्व में कोई भी व्यक्ति बीमा के बिना नहीं रह सकता है।'' विश्व के एक महान राजनीतिज्ञ सर विन्सटन चर्चिल ने बीमा के महत्व के सन्दर्भ में कहा था कि – यदि मेरा वश चले तो मैं द्वार–द्वार पर यह अंकित करा दूँ कि बीमा कराओ'' इन कथनों से स्पष्ट है कि बीमा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है तथा आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। बीमा आधुनिक सभ्यता तथा प्रगति का प्रतीक है। व्यवसाय के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क्षेत्र में बीमा के महत्व को स्पष्ट करते हुए लार्ड हार्डविक ने यहाँ तक कह दिया है कि ''बीमा के बिना व्यवसाय का संचालन करना असंभव है।

परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व व्यवस्था के सभी वर्गों के लिये बीमा की सामाजिक एवं आर्थिक उपयोगिता के कारण बीमा के महत्व को निम्नांकित शीषकों में विभक्त करते हुए समझाया जा रहा है –

(I) वैयक्तिक या पारिवारिक दृष्टि से आवश्यकता / महत्व
(II) व्यावसायिक दृष्टि से आवश्यकता / महत्व
(III) सामाजिक दृष्टि से आवश्यकता / महत्व
(IV) राष्ट्रीय दृष्टि से आवश्यकता / महत्व
(V) अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से आवश्यकता / महत्व

(I) वैयक्तिक या पारिवारिक दृष्टि से आवश्यकता / महत्व–

(1) बीमा सुरक्षा प्रदान करता है –

बीमा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह अनिश्चितताओं के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करता है। जिससे किसी विशेष घटना के घटित होने पर बीमित होने वाली हानि के विरूद्ध सुरक्षित हो जाता है। बीमाकर्ता, बीमित को बीमापत्र में उल्लेखित कारणों से होने वाली हानि की पूर्ति का वचन देता है। जीवन बीमा के द्वारा एक व्यक्ति समय से पूर्व मृत्यु तथा वृद्धावस्था के कष्टों के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त कर सकता है। बीमित की मृत्यु की दशा में सम्पूर्ण आश्रित परिवार को भी जीवन व्यतीत करने में आसानी होती है। अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा अन्य प्रकार के बीमों की दशा में सम्पति के नष्ट होने, क्षतिग्रस्त होने, चोरी या गायब होने पर बीमा कम्पनियाँ बीमित को हानि की पूर्ति करती है। सामान्य बीमा द्वारा दायित्व सम्बन्धी हानि का भी भुगतान किया जाता है। स्पष्ट है कि बीमा प्रायः सभी क्षेत्रों में शुद्ध जोखिम से होने वाली हानियों की क्षतिपूर्ति करके सुरक्षा प्रदान करता है।

(2) मानसिक शान्ति –

तनाव, असुरक्षा की भावना एवं चिन्ता से व्यक्ति का अपने काम में मन नहीं लगता है। बीमा से प्रत्येक व्यक्ति को अनश्चितताओं से मुक्ति मिलती है, व्यक्ति चिन्ता मुक्त रहता है। परिणामतः उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। आग, तूफान, दुर्घटनाऐं, नुकसान, मृत्यु आदि मानवीय नियंत्रण के बाहर है और इनमें से किसी भी घटना के घटित होने पर व्यक्ति में निराशा और मानसिक कमजोरी उत्पन्न होती है। परन्तु बीमा इन सब कमजोरियों को दूर करके मनुष्य को उत्साही बनाता है। जीवन बीमा, वृद्धावस्था बीमा, श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमा, सेवानिवृति बीमा आदि ऐसे ही बीमा है जिनसे व्यक्ति आर्थिक रूप से निश्चित हो जाता है और अधिक अच्छा कार्य कर पाता है।

(3) आर्थिक निर्भरता को प्रोत्साहन –

परिवार के मुखिया की मृत्यु अथवा दुर्घटनाओं के कारण कई व्यक्तियों एवं परिवारों की आर्थिक आत्मनिर्भरता समाप्त हो जाती है लेकिन यदि व्यक्ति या सम्पति का बीमा कराया हुआ है तो किसी भी दुर्घटना के घटने पर बीमा सहायता प्रदान करता है तथा बीमित राशि का भुगतान या वास्तविक हानि की पूर्ति करता है, जिससे परिवार को आर्थिक कठिनाई नहीं होती है।

(4) बचत को प्रोत्साहन –

बीमा बचत की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित करता है। रीगल, मिलर तथा विलियम्स के शब्दों में ''बीमा बचत को प्रोत्साहन देने वाला वातावरण प्रदान करता है।'' जीवन बीमा में सुरक्षा और विनियोग का तत्त्व पाया जाता है। इसमें नियमित प्रीमियम का भुगतान करना अनिवार्य है, इसलिये क्रमबद्ध बचतें सम्भव है। अब तो जीवन बीमापत्रों की कुछ योजनाएँ जैसे बीमा संचय, मनी बैक पॉलिसी ऐसी योजनाएँ है जिनसे सुरक्षा के साथ साथ बचत की भी प्रवृत्ति बढ़ती है।

(5) घरेलू सम्पतियों की जोखिमों से सुरक्षा –

बीमा घर–परिवार की सभी सम्पत्तियों की जोखिम से सुरक्षा भी प्रदान करता है। निजी आवास, घरेलू सामान जैसे टी. वी, फ्रीज, कार, जेवर आदि का बीमा करवा कर घरेलू सम्पतियों की विभिन्न जोखिमों से सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।

(6) सतर्कता को प्रोत्साहन –

बीमा कम्पनियाँ अपने ग्राहकों (बीमितों) को प्रायः हानियों से बचने के लिए अनेक उपायों को अपनाने का सुझाव देती है। इतना ही नहीं कई कम्पनियाँ उन बीमितों को बीमा प्रीमियम की राशि में छूट भी देती है जिन्होंने पिछले वर्षों में जोखिमों से सामान्यतः औसत से कम का दावा प्रस्तुत किया है अथवा जिन्होंने कोई दावा प्रस्तुत ही नहीं किया है।

(7) वैधानिक दायित्वों से सुरक्षा –

बीमा करवाकर कोई भी बीमित अपने वैधानिक दायित्व से भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिये जब एक वाहन चालक से किसी व्यक्ति के मकान को क्षति पहुँचती है तो तृतीय पक्षकार दायित्व बीमा होने की दशा में बीमा कम्पनी मकान मालिक की क्षतिपूर्ति कर देगी तथा उस वाहन चालक का कोई दायित्व नहीं होगा।

(8) करों में छूट –

बीमा से करो में छूट भी प्राप्त होती है। भारत में जीवन बीमा करवाने पर बीमित को उसके द्वारा चुकायी गयी प्रीमियम की राशि पर आयकर में छूट प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सम्पदाकर के लिये सम्पदा की गणना करते समय भी बीमापत्रों की राशि को कुल सम्पति में नहीं जोड़ा जाता है तथा कर नहीं लगता है। इसी प्रकार भेंट किये गये बीमापत्रों तथा उन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पर चुकायी जाने वाली प्रीमियम की राशि भी उपहार कर से मुक्त हैं

(9) कुर्की से सुरक्षा –

किसी व्यक्ति के दिवालिया घोषित होने पर न्यायालय उसकी सम्पतियों को कुर्क कर सकता है और उन्हें बेचकर ऋणदाताओं के ऋणों का भुगतान किया जाता है किन्तु जीवन बीमापत्रों पर प्राप्त होने वाला धन कुर्क नहीं किया जा सकता है।

(10) ख्याति में वृद्धि –

बीमा कराने से बीमित की ख्याति बढ़ती है, उन्हें अन्य लोगों से अधिक समृद्ध एवं सुरक्षित समझा जाता है साथ ही ऐसे व्यक्तियों को भविष्य में वित्तीय संस्थाओं यथा बैंक आदि से ऋण मिलने में सुविधा रहती है।

(11) साख सुविधाऐं –

बीमित व्यक्ति जीवन बीमापत्र पर जमा प्रीमियम के एक निश्चित भाग तक ऋण भी प्राप्त कर सकता है। बीमित व्यक्ति अपने व्यवसाय तथा अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं जैसे पुत्री के विवाह, बच्चों की शिक्षा आदि के लिये ऋण प्राप्त कर सकता है।

(12) निवेश – मेगी के अनुसार –

यद्यपि निवेश बीमा का प्रमुख कार्य नही है, फिर भी बीमे से विनियोग का लाभ मिलने लगा है। जीवन बीमा में सुरक्षा के साथ साथ निवेश का तत्त्व भी पाया जाता है। जीवन बीमा में घटना के घटित होने के बाद बीमित व्यक्ति या उसके उत्तराधिकारियों का एक निश्चित राशि प्राप्त हो जाती है अन्यथा अवधि समाप्ति पर बीमित राशि के साथ साथ बोनस भी अतिरिक्त मिलता है।

(II) व्यावसायिक दृष्टि से आवश्यकता / महत्व

आधुनिक व्यवसाय बीमा के बिना असम्भव है। व्यावसायिक जटिलताओं में वृद्धि और भौगोलिक दूरी के कारण अनश्चितता से बचने का उपाय बीमा ही है। पीटर एफ ड्रकर लिखते हैं – ''यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं है कि बीमा के बिना औद्योगिक अर्थव्यवस्था कोई भी कार्य नहीं कर सकती है। एक व्यवसायी को बीमा से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है।

(1) जोखिमों से सुरक्षा –

व्यवसाय में अनेक जोखिमें होती है। प्रतिदिन करोड़ों रुपयों का माल जहाजों, रेलों, या ट्रकों के माध्यम से भेजा जाता है। गोदामों में भारी माल जमा रहता है। कारखानों में महंगी – महँगी आधुनिक मशीनों की स्थापना की जाती है। इन सबके नष्ट होने की जोखिम सदैव बनी रहती है। ऐसे समय में व्यवसायी अपनी सम्पत्तियों तथा माल का बीमा करवाकर सुरक्षित हो जाते हैं।

(2) महत्वपूर्ण व्यक्तियों की हानि से सुरक्षा –

महत्वपूर्ण व्यक्ति वह विशेष व्यक्ति होता है जिसकी पूँजी, विशेषज्ञता, अनुभव, शक्ति, नियंत्रण की योग्यता, ख्याति तथा कर्मठता उसे व्यापार में बहुत अमूल्य सम्पत्ति बना देते हैं जिसकी अनुपस्थिति में नियोक्ता की आय में बहुत कमी हो जाती है। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु या अयोग्यता से होने वाली सम्भावित हानि और उसके आश्रितों को क्षतिपूर्ति देने के लिये पर्याप्त व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसे एक जीवन बीमापत्र लेकर पूरा किया जा सकता है। आज कल कई कम्पनियाँ अपने अध्यक्षों, प्रबन्ध संचालकों तथा महत्वपूर्ण प्रबन्धकों का बीमा करवा लेती है। इसी प्रकार साझेदारी संस्थाऐं भी अपने सभी साझेदारों का बीमा करवाने लगी है।

(3) कार्यक्षमता में वृद्धि –

बीमा के जरिये व्यवसाय का स्वामी हानियों की चिन्ता से मुक्त हो जाता है तो निश्चिय ही वह अधिक समय व्यापार में लगायेगा तथा लाभ बढ़ाने का प्रयास करेगा। व्यवसायी अपने व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों तथा सम्पतियों का बीमा कराकर उनकी मृत्यु या सम्पति के नष्ट या क्षतिग्रस्त होने पर हानि की पूर्ति की गारन्टी प्राप्त कर लेता है। व्यवसाय बन्द होने की आशंका समाप्त हो जाती है। इन सबसे व्यवसायी की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

(4) साख में वृद्धि –

बीमा से सामान्य व्यक्तियों और व्यवसायियों की साख में भी वृद्धि होती हैं उन्हें ऋण प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती। ऋणदाताओं को भी ऋणों की वसूली की निश्चितता रहती है, क्योंकि ब्याज सहित ऋण की कुल राशि से बीमापत्र का नकद मूल्य अधिक ही होता है।

(5) कर्मचारी हितों की सुरक्षा –

बीमा के द्वारा कर्मचारियों के हितों को भी आसानी से सुरक्षित किया जा सकता है क्योंकि व्यवसाय में हानि की स्थिति का सबसे विपरीत प्रभाव कर्मचारियों पर पड़ता है। उनकी नौकरी छूट सकती है साथ ही उन्हें प्राप्त होने वाले विभिन्न लाभों यथा ग्रेच्युटी, पेंशन एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभों से भी वंचित होना पड़ता है परन्तु व्यावसायिक संस्थाऐं कर्मचारियों के लिये ग्रेच्युटी, पेंशन तथा अन्य लाभों का बीमा करवाकर उन्हें तथा उनके हितों को सुरक्षित कर सकती है।

(6) कर्मचारी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का आसान प्रबन्ध –

भारत में अनेक ऐसे कानून है जिनके अनुसार सेवानियोजकों को अपने कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा एवं सहायता की व्यवस्था करनी पड़ती है। पेन्शन, ग्रेच्युटी, बीमारी लाभ, गर्भावस्था एवं शिशुजन्म पर लाभ, अपंगता या मृत्यु पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आश्रितों की आय की सुरक्षा आदि की व्यवस्था करना सेवायोजकों का दायित्व बन गया है। बीमा संस्थाऐं इन सभी दायित्वों के लिये सामूहिक बीमा योजना तथा अन्य सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का संचालन कर रही है। कोई भी सेवानियोजक इन योजनाओं का लाभ उठाकर अपने कानूनी दायित्वों को पूरा कर सकता है।

(7) विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन –

विदेशी व्यापार में अत्यधिक जोखिम रहती है। समुद्री मार्ग द्वारा माल भेजना जोखिमपूर्ण रहता है साथ ही क्रेता के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी नहीं होती है। अतः भुगतान प्राप्त होने की अनिश्चितता रहती है तथा आयातक देश के साथ निर्यातक देश के सम्बन्ध अच्छे रहे इसकी भी गारन्टी नहीं होती। मार्ग की कठिनाइयों की अनभिज्ञता आदि ऐसे कारण है जिनसे विदेशी व्यापार में अधिक जोखिम रहती है परन्तु व्यवसायी बीमा के द्वारा विदेशी व्यापार की जोखिमों से बच सकता है।

(8) लागतों में कमी –

बीमा के द्वारा एक उत्पादक/ निर्माता, आग, तूफान, विस्फोट, दंगे, चोरी आदि की जोखिमों का बीमा करवाकर सुरक्षित होकर बड़ी हानियों से बच जाता है और कम कीमत पर माल उपलब्ध कर सकता है। बीमा के अभाव में ये समस्त जोखिमें उत्पादक/ निर्माता को स्वयं उठानी पड़ती है जिसके लिये वह अधिक कीमतें वसूल करता है। बीमा के द्वारा थोड़ी सी प्रीमियम देकर व्यवसायी/ उत्पादक अपनी अनेक जोखिमों से सुरक्षा प्राप्त कर सकता हैं

(9) औद्योगीकरण के लिये आधारभूत ढांचा के विकास में सहायक –

बीमा संस्थाएँ देश में शक्ति, परिवहन, संचार, औद्योगिक सम्पदा, बाँध–पुल आदि साधनों के विकास के लिए भारी मात्रा में धनराशि उपलब्ध कराती है जिससे देश में उद्योगों के लिये आधारभूत ढाँचा विकसित करने में सहायता मिलती है।

(10) नागरिक दायित्वों से सुरक्षा –

वर्तमान युग में औद्योगिक प्रतिष्ठान निर्माण प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न विषैली गैस एवं निकलने वाले विषाक्त पानी के आस पास रहने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य की क्षति तथा भूमि तथा फसलों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से उत्पन्न हानियों का बीमा करवा कर अपने सामाजिक एवं नागरिक दायित्वों से सुरक्षा प्राप्त कर लेते हैं। नागरिक दायित्वों से सुरक्षा के फलस्वरूप उद्योग एवं व्यापार के निर्विघ्न संचालन में स्थानीय समुदाय भी सहयोग करता है।

(11) लाभों की हानि से सुरक्षा –

लाभों के न होने की दशा में होने वाली हानियों को सुरक्षित करने की व्यवस्था हेतु भी बीमा कम्पनियाँ बीमापत्र निर्गमित करती है। उदाहरणार्थ यदि किसी उद्योग में आग लग जाने के कारण नुकसान हो जाता है और उत्पादन कुछ समय के लिये बन्द हो जाता है। उत्पादन बंद होने के फलस्वरूप लाभों की हानि होती है। बीमा व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रत्यक्ष रूप से होने वाली हानि (लाभ न होने के कारण) की क्षतिपूर्ति हेतु बीमा करवा कर औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठा सुरक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

(12) औद्योगिक प्रतिष्ठानों को वित्तीय सहायता –

बीमा कम्पनियाँ औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ऋणों के रूप में दीर्घकालीन आधार पर वित्तीय सहायता प्रदान कर औद्योगिक एवं व्यवसायिक विकास में योगदान करते हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम तथा साधारण बीमा निगम की चार सहयोगी कम्पनियों ने इस सम्बन्ध में महत्पूर्ण योगदान प्रदान किया है।

(13) प्रतिभूतियों का अभिगोपन –

बीमा कम्पनियाँ विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों यथा – अशंपत्र, ऋणपत्र आदि का अभिगोपन कर समय पर वित्तीय कोष उपलब्ध कराती है। इससे प्रतिभूतियों का विक्रय आसान और सुनिश्चित हो जाता है।

(14) प्रतिभूतियों में निवेश –

बीमा कम्पनियाँ न केवल प्रतिभूतियों का अभिगोपन करती है, अपितु वे प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों में भी अपने वित्तीय कोषों का विनियोजन कर उन्हें पूँजीगत स्त्रोत उपलब्ध कराती है।

(15) प्रबन्ध व्यवस्था में योगदान –

वर्तमान में बीमा कम्पनियाँ जिन औद्योगिक प्रतिष्ठानों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है उनके संचालक मण्डल में अनुभवी एवं कुशल व्यक्ति संचालक के रूप में नियुक्त करने का अधिकार रखती है। ऐसी दशा में न केवल बीमा कम्पनियों के हितों की रक्षा होती है वरन् उन औद्योगिक प्रतिष्ठानों की प्रबन्ध व्यवस्था सुदृढ़ एवं गतिशील हो जाती है जिसके फलस्वरूप औद्योगिक एवं व्यावसायिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(III) सामाजिक दृष्टि से आवश्यकता/ महत्व

(1) पारिवारिक जीवन में स्थायित्वता –

बीमा के द्वारा समाज के लोगों के जीवन में स्थायित्वता लायी जा सकती है। कई बार परिवार के भरण पोषण करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने से सारा पारिवारिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। समाज में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जबकि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अच्छा जीवन यापन करने वाले परिवार में अचानक कमाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर पीछे परिवार का पालन पोषण करना कठिन हो जाता है। किन्तु जीवन बीमा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार को स्थायित्व प्रदान करता, क्योंकि बीमा मृत्यु उपरान्त आर्थिक क्षतिपूर्ति करता है।

(2) जोखिमों का सामूहिक विभाजन –

बीमा के द्वारा एक व्यक्ति की जोखिमों को अनेकों में बाँटा जाता है। समूह के सभी व्यक्तियों द्वारा जोखिमों को वहन किया जाता है। इसलिये एण्डोल ने लिखा है – दुर्घटनाओं की लागत को व्यक्तियों के एक बहुत बड़े समूह में विभाजित करके ऐसे दुर्भाग्य की लागत को आसानी से बर्दाश्त किया जा सकता है।

(3) सामाजिक बुराइयों की रोकथाम –

आर्थिक बुराइयों एवं गरीबी के कारण ही समाज में लोग चोरी करने, भीख मांगने और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराइयों को प्रोत्साहन मिलता है लेकिन बीमा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको और अपने आश्रितों को आर्थिक रूप से सक्षम कर सकता है। फलतः समाज स्वस्थ, समृद्ध और बुराईयों से मुक्त रहता है।

(4) सभ्यता का प्रतीक –

बीमा सामाजिक सभ्यता के विकसित होने का प्रतीक है जिन देशों में बीमा का विकास नहीं हुआ है उन्हें पिछड़ा ही माना जाता है।

(5) जीवन स्तर में सुधार –

बीमा लोगों को बचत करने तथा जोखिमों को हस्तान्तरित करने का अवसर प्रदान करता है। इससे बीमितों की आर्थिक स्थिति सन्तुलित रहती है। फलतः बीमित अपने जीवनस्तर को समान बनाये रखने और निरन्तर ऊँचा उठाये रखने में सफल हो जाते हैं।

(6) स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता –

बीमा जनता को स्वास्थ्य के प्रति सतर्क बनाता है। पूरे विश्व में अनेक बीमा कम्पनियाँ स्वास्थ्य सुधार आन्दोलन चला रही है। बीमा कम्पनियाँ अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये भारी मात्रा में शिक्षाप्रद सामग्री का भी वितरण कर रही है। बीमा कराते समय स्वास्थ्य जाँच भी काफी लाभप्रद सिद्ध होती है क्योंकि इससे बीमित यदि किसी बीमारी से ग्रसित है तो उसे इसकी जानकारी भी मिल जाती है।

(7) शिक्षा को प्रोत्साहन –

आज अनेक बीमाकर्ता शिक्षा के प्रोत्साहन में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दे रहे हैं। अपने बच्चों की शिक्षा का बीमापत्र क्रय करके माता–पिता अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं साथ ही कई बीमा कम्पनियाँ पढ़ने के इच्छुक आर्थिक दृष्टि से गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी प्रदान करती है। वे शिक्षा ऋण के द्वारा भी शिक्षा को प्रोत्साहित करते

(8) समाज में रोजगार अवसरों का विकास –

बीमा कम्पनियाँ समाज में रोजगार अवसरों में वृद्धि करती है। बीमा कम्पनियों में हजारों व्यक्ति एजेन्ट, विकास अधिकारियों, लिपिकों, शाखा प्रबन्धकों एवं अन्य ऊँचे पदों पर कार्यरत है। सामान्य बीमा निगम एवं उसकी सहायक कम्पनियों में लगभग 85000 तथा जीवन बीमा निगम में लगभग डेढ़ लाख कर्मचारी कार्यरत है। निजी बीमा कम्पनियों में भी रोजगार के अनेक अवसर विद्यमान रहते हैं।

(9) सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति में सहायक –

समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के प्रति विभिन्न भूमिकाओं में उत्तरदायित्व रहता है। उदाहरणार्थ पति का पत्नी या बच्चों के प्रति, सेवानियोजक का अपने कर्मचारियों के प्रति, उत्पादक या निर्माता का अपने ग्राहकों के प्रति बीमा समाज के व्यक्तियों की अपने आर्थिक दायित्वों को निभाने में सहायता प्रदान करता है।

(10) सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का क्रियान्वयन –

बीमा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा समाज के गरीब एवं पिछड़े लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा की योजनाएँ क्रियान्वित की जा सकती है। हमारे देश में सरकार ने बीमा कम्पनियों यथा जीवन बीमा निगम और सामान्य बीमा निगम के माध्यम से कई पिछड़े वर्गों के लिए ''सामाजिक सहायता की समूह बीमा योजनाएँ'' तथा ''जनता व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजनाएँ लागू की है।''

(11) आर्थिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में सहायक –

बीमा समाज का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में योगदान देता है। बीमितों की छोटी–छोटी बचतों के एकत्र होने तथा बड़ी–बड़ी जोखिमों में बंट जाने से समाज में सभी व्यक्ति आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेते है।

12. सामाजिक परिवर्तन का साधन –

बीमा सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन है। मेहर तथा केमेक के अनुसार ''बीमा सामाजिक परिवर्तन की प्रभावशाली शक्ति हो सकती है।'' वस्तुतः यह समाज के विचारों, जीवनस्तर, जीवन की किस्म सभी में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सक्षम है।

(IV) राष्ट्रीय दृष्टि से आवश्यकता / महत्व

बीमा से सम्पूर्ण राष्ट्र को होने वाले प्रमुख लाभ निम्नलिखित है–

1. राष्ट्रीय बचत को प्रोत्साहन– बीमा कम्पनियाँ अपने ग्राहकों (बीमितों) से थोड़ी–थोड़ी मात्रा में बचत एकत्रित करने पर बल देती है, लोगों में बचत की आदत को प्रोत्साहित करती है जिससे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राष्ट्रीय बचत को बढ़ावा मिलता है।

2. देश के आर्थिक विकास में सहायक –

किसी भी देश का आर्थिक विकास, निर्माण कार्यों को पूरा करने तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं को गति देने के लिये पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधनों की आवयश्कता होती है। बीमा कम्पनियाँ समूचे देश में फैले हुए अपने बीमितों से थोड़ी–थोड़ी राशि एकत्र कर सरकार को अधिक मात्रा में धनराशि उपलब्ध कराती है जिससे देश के तीव्र औद्योगिक एवं आर्थिक विकास में मदद मिलती है। ऐंजल के अनुसार ''बीमा कम्पनियाँ कई लोगों की बचतों पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और उन्हें अर्थव्यवस्था में विनियोजित करती है। ऐसी कम्पनियों के अभाव में ज्यादातर बचत विनियोग के लिये कभी भी उपलब्ध नहीं हो पाते।

3. मुद्राबाजार के विकास में योगदान –

बीमा प्रीमियम की बड़ी धन राशि से देश के मुद्राबाजार के विकास में भी योगदान मिलता है। फलतः अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में लेन–देन आसान हो जाता है और बैंक तथा कम्पनियों सभी अपनी आवश्यकतानुसार मुद्रा तत्काल प्राप्त कर सकती है और विनियोग कर सकती है।

4. अति जोखिमपूर्ण कार्यों को प्रोत्साहान –

देश के चहुँमुखी आर्थिक विकास के लिए अति जोखिमपूर्ण कार्य भी करने आवश्यक होते है जैसे भूमि एवं समुद्र के तेल एवं गैस की खोज करना, दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण खनिजों की खोज करना, नक्षत्रों की खोज करना, आषविक अनुसन्धान करना, रक्षा–उपकरणों में प्रयोग करना आदि अत्यन्त जोखिम भरे कार्य है किन्तु ये आर्थिक विकास के लिये अतिमहत्वपूर्ण बीमा संस्थाऐं इन शोध एवं अनुसंधान कार्यों की जोखिम बीमा कर लेती है और इन शोध एवंअनुसंधान करने वाली संस्थाओं की जोखिम को सीमित कर देती है। फलतः देश में अति जोखिमपूर्ण विकास कार्यों में बाधा नही आती है बल्कि उन्हे प्रोत्साहन मिलता रहता है।

5. वृहद् उद्योगों के विकास में योगदान –

बीमा संस्थाऐं वृहद् उद्योगों के विकास में योगदान देकर देश के आर्थिक विकास में योगदान दे रही है बड़े उद्योगों के संयत्रों परिसर मशीनों का बीमा करके उन्हें सहयोग कर रही है। वही दूसरी और बड़े उद्योगों के अंशों एवं पत्रों में करोड़ो रू निवेश कर उन्हें प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सुविधा प्रदान कर रही है।

6. रोजगार अवसरों में वृद्धि –

देश में बीमा के कारण विभिन्न उद्योगों में पूँजी निवेश बढ़ने, सेवा क्षेत्रों के विकास होने, कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, दुग्ध उत्पादन कार्यों का व्यवसायीकरण होने से देश में रोजगार के अवसर बढ़ रहे है। बीमा संस्थाओं के कार्यालयों में प्रबन्धक लिपिक, कर्मचारी, विकास अधिकारी के रूप में लाखों लोगो को रोजगार मिल रहा है। लाखों व्यक्ति देश–विदेश में बीमा एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहे है। इस प्रकार बीमा रोजगार सृजन में बीमा संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है।

7. उद्यमिता विकास में योगदान –

बीमा युवावर्ग में उद्यमिता विकास एवं स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहन का कार्य भी कर रहा है। यह लघु एवं मध्यम व्यवसायियों को जोखिम उठाने एवं प्रतिस्पर्द्धी बनाने में सहायक वित्तीय संस्थाऐं एवं बैंक उन्हें बीमा के आधार पर अधिक ऋण उपलब्ध करा देते है। कई तकनीकी एवं पेशेवर शिक्षा प्राप्त नवयुवक उदाहरणार्थ डॉक्टर, इंजिनियर, अपने उपक्रम स्थापित कर रहे है।

8. अधिक उत्पादकता –

बीमा लोगों को भयमुक्त करता है। जन सामान्य जोखिम का बीमा करवाकर बिना किसी चिन्ता के अपने कार्यों को अधिक से अधिक अच्छा करने में लग जाते हैं। वे अपने साधनों को जोखिम युक्त कार्यों में लगाने की हिम्मत भी करते है। कुछ नये प्रयोगों एवं नयी चुनौतियों के साथ कार्य करने का साहस भी करते है। फलतः संसाधनों एवं क्षमताओं का पूरा उपयोग होता है और अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

9. सामाजिक उत्थान कार्यों में योगदान–

सामाजिक उत्थान के लिए गरीबी एवं आर्थिक असमानता को खत्म करना जरूरी है बीमा संस्थाऐं इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सामाजिक क्षेत्र में असंगठित क्षेत्र के लोगों यथा–कृषि, श्रमिक, खाती, लुहार, ईंट, भट्टो के श्रमिक, दस्तबार, हाथकरधा मजदूर, मोची, टेलर, सफाई कर्मचारी आदि। अनौपचारिक क्षेत्र के लोगों (यथा–स्वयं नियोजित व्यक्ति जैसे फूटकर व्यापारी, परिवहन कार्य में लगे व्यक्ति, रिपेयर करने वाले व्यक्ति, नल व बिजली के कार्य करने वाले व्यक्ति) आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों एवं गरीबों आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। बीमा संस्थाओं ने इन लोगों के हित के लिए स्वयं अपनी ओर से जनता दुर्घटना बीमा, नया रक्षा बीमापत्र आदि बीमापत्र जारी किये है। केन्द्र तथा राज्य सरकार के सहयोग से ''जनश्री'' सामूहिक बीमा योजना भी बीमा संस्थाओं ने लागू की है। इस योजना में गरीबी की रेखा तथा उसके थोड़े से ऊपर के लोगों के बीमा किया जाता है। बीमा नियामक एवं विकास प्राधिकरण (IRDA) ने सभी बीमाकर्ताओं के लिए सामाजिक क्षेत्र के लोगों का बीमा करना अनिवार्य कर दिया है। इस प्रकार सामाजिक उत्थान में बीमाकर्ताओं की भूमिका निरन्तर बढती ही जा रही है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

10. विदेशी मुद्राकोष में योगदान–

बीमा कम्पनियाँ अन्य देशों में भी बीमा व्यवसाय करती है फलतः उन्हें प्रीमियम के रूप में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है जिसमें हमारे देश के विदेशी मुद्राकोषों को बढ़ाने में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरह से योगदान मिलता है। भारतीय जीवन बीमा निगम ओर साधारण बीमा निगम की चारों कम्पनियाँ विदेशी मुद्रा कोष में योगदान दे रही है।

11. सतत् विकास की सम्भावना –

वर्तमान में कई ऐसे बीमापत्र विकसित हो गये है जो विकास पहलों को निरन्तर सुरक्षा प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ लाभों की सुरक्षा का बीमा, पुनःस्थापना बीमा आदि ऐसे बीमापत्र है जो अर्थव्यवस्था को सम्बल प्रदान करते है। लाभों की हानि से सुरक्षा के बीमापत्र की दशा में बीमित को बीमा जोखिम हुई क्षति की पूर्ति ही नहीं की जाती है बल्कि उस क्षति के कारण लाभ में हुई कमी की भी पूर्ति की जाती है। पुनःस्थापना बीमापत्र में बीमित को नष्ट हुई सम्पति की पुनःस्थापना करने में आने वाली राशि की क्षतिपूर्ति की जाती है। इससे अत्यधिक जोखिम वाले कार्यों की जोखिम उठाने में संस्थाऐं सक्षम बनी रहती है।

12. जन कल्याणकारी बीमों में योगदान –

बीमा सरकार के अनेक जन कल्याणकारी कार्यों को पूरा करने में महत्वूपर्ण रूप से योगदान देता है। आज सभी देशों बीमा संस्थान अपने कोषों में एक भाग सरकार को कार्यो यथा– शिक्षा, चिकित्सा, समाज कल्याण, सामाजिक न्याय, संतुलित आर्थिक विकास के कार्यों में विनियोग कर रहे है। इससे सरकार को जनकल्याण कार्यों को पूरा करने में सफलता मिलती है।

13. सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास –

बीमा से उद्योगों के विकास रोजगार अवसरों के विकास, अधिक बचत एवं पूँजी निर्माण, सभी सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

14. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के विकास में सहायक –

बीमा कम्पनियाँ अपने विशाल प्रीमियम एवं संचय कोषों के एक भाग को स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में भी विनियोग करती है। बीमा कम्पनियाँ अंशों एवं प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय द्वारा देश से स्कन्ध–विनिमय बाजारों को सक्रियता प्रदान करती है।

सामाजिक सुरक्षा (Social Security) अर्थ एवं परिभाषा

''सामाजिक सुरक्षा'' शब्द का अर्थ विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न लगाया जाता है। वास्तव में प्रत्येक देश की परिस्थितियों एवं वहाँ की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अनुरूप ही उस देश में इस शब्द का अर्थ लगाया जाता है। किन्तु सामान्यतः सामाजिक सुरक्षा शब्द से तात्पर्य समाज के लोगों को किसी दुर्घटना, बीमारी, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि के समय प्रदान की जाने वाली सुरक्षा से है। दुर्घटना घटने, बीमारी हो जाने वृद्धावस्था में कार्यक्षमता न रहने अथवा परिवार चलाने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने पर आश्रितों के लिये आर्थिक कठिनाईयों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। सामजिक सुरक्षा इसी प्रकार की असुरक्षाओं के विरूद्ध सुरक्षा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार ''सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा उपयुक्त संस्थाओं के माध्यम से अपने सदस्यों के जीवन में आ सकने वाली कुछ जोखिमों के विरूद्ध प्रदान की जाती है।''

सर विलियम बेवरीज के मतानुसार '' सामाजिक सुरक्षा पाँच दानवों – अभाव, बीमारी, अज्ञानता, गन्दगी एवं बेकारी पर आक्रमण है।

यहाँ अभाव से आशय श्रमिक को उसकी आधारभुत– आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित मजदूरी दिलाना है जबकि बीमारी से सुरक्षा का तात्पर्य श्रेष्ठ कार्यदशाएँ उपलब्ध कराना तथा बीमारी की दशा में अच्छी चिकित्सा सेवाऐं उपलब्ध कराना। अज्ञानता से सुरक्षा यानि समाज के लोगों के लिये शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना। गन्दगी पर आक्रमण करने के लिये नगरों के अनियोजित विकास को रोकने की व्यवस्था की जानी है। बेकारी के विरूद्ध सुरक्षा से तात्पर्य है नागरिक को उचित कार्य दिलाना तथा उसकी आय के स्थायी स्त्रोत का विकास करना।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा किसी उपयुक्त संगठन के माध्यम से समाज के उन लोगों को जोखिमों या आकस्मिक दुर्घटनाओं के विरूद्ध प्रदान की जाती है जो स्वयं अपनी क्षमता एवं दूरदर्शिता से या अपने साथियों के सहयोग से भी उन जोखिमों को नहीं उठा सकते है। ये जोखिमें या दुर्घटनाएँ अनेक प्रकार की हो सकती है यथा बीमारी, बेकारी, वृद्धावस्था, औद्योगिक दुर्घटनाएँ आदि।

सामाजिक सुरक्षा में बीमा की भूमिका के अध्ययन करते समय हम उन सभी योजनाओं को ध्यान में रखेगे जो निम्नाकिंत में से किसी के भी अंशदान से संचालित की जाती है–

(1) बीमित के स्वयं के अंशदान से, अथवा (2) बीमित तथा सेवानियोजक के अंशदान से अथवा (3) बीमित या सेवानियोजक तथा सरकारी अंशदान से अथवा (4) बीमित व्यक्तियों से संघ तथा/अथवा सेवानियोजक तथा सरकार के अंशदान से।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सामाजिक सुरक्षा की विशेषताएँ

1. सामाजिक सुरक्षा समाज के लोगों की सुरक्षा का सामूहिक प्रयास है किन्तु इससे सुरक्षा प्राप्त करने वाला भी अंशदान दे सकता है।
2. यह सामूहिक प्रयास किसी संस्था या संगठन या सरकार के माध्यम से किया जा सकता है।
3. सामाजिक सुरक्षा कोई दान नहीं है।
4. सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य विपत्तियों या दुर्घटनाओं की स्थिति में एक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराना है।
5. यह लोगों को भावी चिन्ताओं से मुक्त करने का एक तरीका है।
6. सामाजिक सुरक्षा की विचारधारा सामाजिक न्याय तथा मानवीय प्रतिष्ठा के सिद्धान्त पर आधारित है।

सामाजिक सुरक्षा में बीमा की भूमिका

1. वृद्धावस्था के दौरान धन या आय की व्यवस्था –

बीमा संस्थाओं ने अनेक ऐसे बीमापत्र एवं बीमा–योजनाओं का निर्माण दिया है। जिसके अधीन बीमित को वृद्धावस्था के दौरान बीमा की सम्पूर्णराशि या वार्षिकी मिलती है। सम्पूर्ण बीमा राशि एक साथ मिलने पर बीमित उसको स्वयं निवेश कर सकता है तथा वृद्धावस्था के दौरान उस निवेश की आय से अपना जीवनयापन करता है। बीमा पत्र में ही समय–समय पर वार्षिकी के भगुतान की व्यवस्था है तो बीमित को वृद्धावस्था में वार्षिकी की राशि मिल जाती है। इस प्रकार बीमा वृद्धावस्था में आवश्यक सुरक्षा प्रदान करता है। भारत में बीमा संस्थाओं ने आजीवन बीमापत्र, बन्दोबस्ती, बीमापत्र, पेंशन, बीमापत्र, यूनिट लिंकड बीमापत्र उपलब्ध कराये है। बीमित स्वयं अपनी आवश्यकता एवं अपनी सुविधानुसार योजना का चयन कर अपना बीमा करवाकर वृद्धावस्था में आय की व्यवस्था कर सकता है।

2. आकस्मिक मृत्यु पर आश्रितों को सुरक्षा –

बीमित की अचानक मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को सुरक्षा प्रदान करने में बीमा की महत्वपूर्ण भूमिका है। आजीवन, बन्दोबस्ती एवं अवधि बीमापत्रों तथा अन्य प्रकार के मिश्रित बीमापत्रों की दशा मे बीमित की मृत्यु पर उसके आश्रितों (नामांकित व्यक्ति) को धनराशि या वार्षिकी (पेंशन) मिलती है।

3. बीमारियों की दशा में आर्थिक संकट में सहायक

बीमा बीमितों को गम्भीर बीमारी की दशा में आर्थिक सहायता भी प्रदान करता है। आजकल ऐसे बीमापत्र भी प्रचलित है जिनमें अतिरिक्त प्रीमियम पर गम्भीर बीमारी शर्त को जोड़ा जा सकता है। जब बीमित के बीमापत्र में ऐसी शर्त जोड़ दी जाती है तो बीमित को उसमें संवरित किसी भी गम्भीर बीमारी के होने पर पूर्व निर्धारित राशि का भुगतान कर दिया जाता है। भारतीय जीवन बीमा निगम ने जीवन अनुराग, जीवन भारती, जीवन आनन्द, जीवन मित्र दोहरा बीमापत्र आदि में गम्भीर बीमारी की शर्त जोड़ने का प्रावधान किया हुआ है। फलतः बीमित द्वारा शर्त के अधीन बीमापत्र लेने पर गम्भीर बीमारी की दशा में सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।

4. दुर्घटना की दशा में सुरक्षा–

जीवन बीमापत्रों में प्रायः दुर्घटना बीमा की शर्त होती हैं। इसके अधीन बीमित अतिरिक्त प्रीमियम देकर अपना दुर्घटना बीमा करवा सकता है। कई बीमा सस्थाऐं केवल व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा भी करवाती है दोनों ही दशाओं में यदि बीमित की मृत्यु हो जाती हैं तो बीमित के आश्रितों (नामांकिती को) पुर्व निश्चित राशि का भुगतान कर दिया जाता है। यदि बीमित दुर्घटना में आंशिक या पूर्ण रूप से अपंग हो जाता है तो उसे स्वयं एक निर्धारित राशि एक मुश्त या वार्षिकी के रूप में मिलती है।

5. अपंग आश्रितों को सुरक्षा –

बीमा संस्थाऐं कुछ विशेष बीमापत्र केवल उन अभिभावकों के जीवन पर जारी करती है जिनका कोई आश्रित अपंग हो। इन बीमापत्रों के अधीन आश्रित को नामांकित किया जाता है। जबकि अभिभावक का बीमा किया जाता है। फलतः अभिभावक की मृत्यु की दशा में अपंग आश्रित को बीमाराशि एवं अन्य परिपक्व राशि प्राप्त हो जाती है। जीवन बीमा निगम ने ''जीवन आधार'' और ''जीवन विश्वास'' दो ऐसे विशेष बीमापत्र जारी किये है।

6. पेशेवर व्यक्तियों की सुरक्षा –

पेशेवर व्यक्तियों यथा डॉक्टर, वकील आदि से जाने अनजाने में हुई गलतियों से उत्पन्न दायित्वों के लिये वे अपना बीमा करवाकर पूर्णतः सुरक्षित हो जाते है। तथा उनके जीवन में कोई संकट या व्यवधान उत्पन्न नहीं होता है।

7. बेरोजगारी की दशा में सुरक्षा –

यद्यपि भीख में बेरोजगारी बीमा नहीं है किन्तु कुछ विकसित देशों में बेरोजगारी बीमा की सुविधा है। जब किसी बीमित कर्मचारी को रोजगार से बाहर कर दिया जाता है। (छंटनी जबरन छुट्टी के अधीन) तो उसे एक निर्धारित अवधि के लिये निर्धारित राशि की क्षतिपूर्ति दी जाती है।

8. सार्वजनिक दायित्व बीमा के अधीन सुरक्षा –

कई व्यवसायी एवं व्यावसायिक संस्थाएँ कई खतरनाक निर्माण प्रक्रियाओं का संचालन कर उत्पादन कार्य करते है। इन प्रक्रियाओं में कई खतरनाक पदार्थों, द्रव्यों, गैसों आदि को भी लाया ले जाया जाता है तथा उपयोग किया जाता है। इनसे जनसामान्य को शारीरिक क्षति, पहुँच सकती है तथा आम

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जनता में भी कुछ लोग मर जाते है। ऐसे में व्यवसायी या व्यावसायिक संस्थाओं को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इसमें बचने के लिये व्यवसायी या व्यावसायिक संस्थाएँ सार्वजनिक दायित्व बीमा करवा सकते है।

भारत में बीमा द्वारा सामाजिक सुरक्षा (Social Security in India through Insurance)

भारत में बीमा द्वारा सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने की अनेक योजनाएँ प्रचलित है। इन्हें निम्नांकित भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. केवल बीमित के अंशदान द्वारा संचालित योजनाऐं–

इन योजनाओं में बीमित स्वयं ही बीमा प्रीमियम का भुगतान करता है। यथा अपने एवं अपने आश्रितों की सुरक्षा की व्यवस्था करता है। भारतीय जीवन बीमा निगम एवं निजी क्षेत्र के सभी बीमाकर्ता आजीवन बीमापत्रों, बन्दोबस्ती, बीमापत्रों, अवधि बीमापत्रों इन तीनों बीमापत्रों में दो या तीन की विशेषताओं से विकसित मिश्रित बीमापत्रों के अधीन–बीमा सुविधा प्रदान कर बीमितों को सुरक्षा प्रदान करते है। इनमें प्रीमियम बीमाकर्ता स्वयं या उनके अभिभावक (नाना–नानी, दादा–दादी सहित) द्वारा दी जा सकती है।

2. बीमित तथा/अथवा सेवायोजक अथवा श्रंम संघ के अंशदान से संचालित सामूहिक बीमा योजनाऐं–

कुछ बीमा योजनाऐं बीमित या/सेवानियोजक के अंशदान से सामूहिक बीमा योजनाओं के रूप में संचालित की जाती है। भारतीय जीवन बीमा निगम ऐसी निम्नलिखित सामूहिक बीमा योजनाएं संचालित कर रहा है–

(1) समूह अनुदान या अनुग्रह (ग्रेच्यूटी) बीमा योजना
(2) सेवानिवृति/ अधिवार्षिक बीमा योजना
(3) बचत सम्बन्ध समूह बीमा येाजना
(4) समूह अवधि बीमा योजना
(5) समूह अवकाश नकदीकरण योजना
(6) समूह बन्धक शोधन बीमा योजना

3. केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार अथवा बीमितों के संघ या संयोजन (Nodal Agency) के अंशदान द्वारा संचालित सामूहिक सामाजिक सुरक्षा बीमा योजनाऐं–

भारत में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार अथवा संयोजन संस्था या बीमित के समूह अंशदान से समाज के आर्थिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों के लिये सामाजिक सुरक्षा की योजनाऐं संचालित की जाती है। इन योजनाओं का संचालन जीवन बीमा निगम की देखरेख में होता हे। केन्द्रीय सरकार ने 1988–89 में सामाजिक सुरक्षा कोष बनाने हेतु जीवन बीमा निगम को 100 करोड़े रू दिये थे। अगस्त 2000 से इस कोष से एक ही योजना के अधीन गरीबों के लिये सामाजिक सुरक्षा की बीमा योजनाऐं संचालित की जाती है। उसका नाम है जन श्री बीमा योजना।

गरीबी की रेखा से नीचे (बीपीएल) तथा इससे थोडा ऊपर आय वाले लोगों का सामाजिक समूह बीमा करने के लिये जन श्री बीमा येाजना का विकास किया गया है। 31 मार्च 2005 तक 43 व्यवसाय धन्धों जैसे बीडी मजदूर, बाई, मोची कुली मछुआरे स्त्री दर्जी जंगल मजदूर सफाई कर्मचारी आटो रिक्शा चालक ग्रामीण गरीब प्लान्टेशन मजदूर आदि।

बीमा एजेन्ट (Insurance Agent)

एक बीमाकर्ता के बीमा व्यवसाय की सफलता का मूल्यांकन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि बीमा कम्पनी की समाज में लोकप्रियता और विश्वानीयता कैसी है? बीमा कम्पनी किन–किन बीमा उत्पादों को कितनी मात्रा में और कितने समय से विक्रय कर रही है। वर्तमान में बीमाकम्पनी के सम्पादित ग्राहक दूरस्थ स्थानों पर बिखरे होने से साथ–साथ बीमा कम्पनी के सम्पादित ग्राहक दूरस्थ स्थानों पर बिखरे होने से साथ–साथ बीमा कम्पनी अनेकों योजनाओं के द्वारा बीमितो को अनेक बीमा उत्पाद की सुविधा प्रदान कर रही है। ऐसी स्थिति में बीमाकर्ता अकेला ग्राहको से सम्पर्क स्थापित करने में असमर्थ रहता है। फलतः बीमाकर्ता एवं बीमित के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होती है। बीमाकर्ता और बीमित के मध्य मध्यस्थ का कार्य करने वाला व्यक्ति की बीमा अभिकर्ता (एजेन्ट) कहलाता है। बीमा एजेन्ट और एक सामान्य अभिकर्ता (एजेन्ट) में अन्तर है। अतः सर्वप्रथम हमें एजेन्ट का अध्ययन करना उचित होगा।

एजेन्ट का अर्थ (Meaning of Agent)

भारत में ऐजेन्ट की नियुक्ति उसके अधिकार तथा प्रधान एवं एजेन्ट के बीच सम्बन्धों का नियमन एजेन्सी कानून की अनुसार होता है। एजेन्सी विधि (कानून) के प्रावधान भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 182 से 238 में दिये गये है। एजेन्सी सम्बन्धी प्रावधानों के अनुसार एजेन्सी, एजेन्ट एवं प्रधान (Principal) के बीच सम्बन्ध का नाम है।

धारा 182 के अनुसार ''ऐजेन्ट वह व्यक्ति है जिसे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपने किसी कार्य को करने अथवा किसी अन्य या तृतीय पक्षकार के साथ व्यवहार करने हेतु अपना प्रतिनिधित्व करने के लिय नियुक्त किया जाता है।

ऐजेन्ट जिस व्यक्ति या कार्य या प्रतिनिधित्व करता है

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उस व्यक्ति को प्रधान या नियोक्ता या मालिक कहते है। (धारा 182)

इस प्रकार स्पष्ट है कि एजेन्ट वह व्यक्ति होता है जिसे प्रधान द्वारा तृतीय पक्षकारों के साथ अपने (प्रधान) के अनुबंधात्मक सम्बन्ध स्थापित कराने के लिये नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार एजेन्ट प्रधान एवं तृतीय पक्षकारों के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। एजेन्ट अपने मालिक (प्रधान) के सभी कार्य मालिक द्वारा प्रदत स्पष्ट या गर्भित अधिकारों एवं निर्देशों की सीमा के भीतर रहकर ही करता है।

एजेन्ट कौन नियुक्त कर सकता है?

एजेन्ट की नियुक्ति प्रधान द्वारा की जाती है। किन्तु प्रधान केवल वही व्यक्ति हो सकता है जिसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो। अतः निम्नाकिंन व्यक्ति एजेन्ट नियुक्ति कर सकते है–

(1) सभी व्यस्क व्यक्ति

(2) सभी स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति

(3) सभी ऐसे व्यक्ति जिन्हें देश के किसी भी कानून द्वारा अयोग्य घोषित नही किया गया है।

इसके अतिरिक्त एजेन्ट की नियुक्ति कानून द्वारा अधिकृत किसी भी व्यक्ति द्वारा की जा सकती है। इसी कारण निम्नांकित व्यक्ति द्वारा भी एजेन्ट की नियुक्ति की जा सकती है

(1) किसी भी निगम या कम्पनी द्वारा।

(2) नैसर्गिक संरक्षक या न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक द्वारा नियुक्ति।

(3) कई प्रधानों द्वारा संयुक्त रूप से एजेन्ट की नियुक्ति।

कौन व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है?

धारा 184 के अनुसार कोई भी व्यक्ति एजेन्ट बन सकता है। अतः कोई भी व्यक्ति चाहे उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो अथवा नहीं सभी एजेन्ट नियुक्त किये जा सकते है। अतः अव्यस्क, अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति भी एजेन्ट नियुक्त किये जा सकते है। इसी कारण एजेन्सी की स्थापना करने के लिये ठहराव का होना पर्याप्त है। किन्तु किसी भी अवयस्क या अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति को एजेन्ट नियुक्त करना जोखिम भरा कार्य है। ऐसा करने के निम्नाकिंत परिणाम हो सकते है–

(1) ऐसा एजेन्ट अपने अनाधिकृत एवं गलत कार्यों के लिए प्रधान के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है।

(2) प्रधान ऐसे एजेन्ट के किये गये कार्यों के लिये तृतीय पक्षकार के प्रतिस्वयं उत्तरदायी होता है क्योंकि उसने प्रधान की ओर से कार्य किये है।

एजेन्ट और नौकर के मध्य अन्तर – भारतीय उच्च न्यायालय के अनुसार ऐजेन्ट और नौकर के मध्य अन्तर है। ऐजेन्टे का पारिश्रमिक कमीशन या फीस के रूप में होता है जबकि नौकर पारिश्रमिक वेतन के रूप में होता है। एजेन्ट कभी भी नौकर नहीं बन सकता, जबकि नौकर कई बार एजेन्ट हो सकता है। एजेन्ट नियोक्ता की ओर से तीसरे पक्षकार क साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है लेकिन नौकर ऐसा नहीं करता है।

एक बीमा अभिकर्ता वह महत्वपूर्ण माध्यम है, सम्पर्क सूत्र है जिसके द्वारा बीमित एवं बीमाकर्ता के मध्य–सम्बन्ध स्थापित किये जाते है। बीमा कम्पनियां के ऐसे कार्यकर्ता है जो जीवनों (बीमितो) को खोजते है, बीमा करवाने के लिये प्रोत्साहित करते है, उन्हे तैयार करके निगम तक ले जाते है, और बीमा सेवाऐं प्रदान करते है। बीमा एजेन्ट के बिना बीमा – कम्पनियों का कार्य ठप्प हो जाता है।

सामान्य अर्थ में बीमा एजेन्ट बीमाकर्ता द्वारा लाईसेन्स प्राप्त प्रतिनिधि है जो मूल रूप से बीमा के व्यवसाय को चालू रखने नवीनीकरण करने या पुनःचालन से सम्बन्धित कार्य कमीशन या अन्य पुनःचालन पारिश्रमिक के बदले करने के लिये सहमत हो जाता है।

बीमा एजेन्ट की विशेषताएँ (Charactoustics of Insurance Agent)

1. बीमाकर्ता (बीमा कम्पनी) इसका नियोक्ता (मालिक) होता है।
2. बीमा एजेन्ट को बीमा अधिनियम की धारा 42 के अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अधीन लाईसेन्स प्राप्त करना होता है।
3. बीमा एजेन्ट बीमा व्यवसाय को प्राप्त करने के लिये प्रयास करना है।
4. बीमा एजेन्ट को कमीशन या अन्य आधार पर प्रतिफल का भुगतान किया जाता है।
5. बीमा एजेन्ट बीमा व्यवसाय प्राप्त करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को कमीशन या पारिश्रमिक नही दे सकता है। यह कार्य एक अवैध कार्य है।

जीवनबीमा की योग्यताएँ (Qualification of Insurance Agent)

बीमा अधिनियम तथा बीमा एजेन्टस विनियम 2000 के अनुसार बीमा एजेन्ट का लाईसेन्स प्राप्त करने हेतु आवेदन करने वाले व्यक्ति में निम्नाकिंत योग्यताएँ होनी चाहिए

(1) वह भारत का नागरिक हो

(2) आवेदक कम से कम 18 वर्ष की आयु का हो अर्थात् व्यस्क हो।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(3) वह स्वस्थ मस्तिष्क का हो।

(4) वह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा गबन धोखाधड़ी जालसाजी अपराध के लिए उकसाने या किसी ऐसे दण्डनीय अपराध के लिए दोषी नहीं पाया गया हो, किन्तु यदि किसी अपराधी को ऐसे किसी अपराध की सजा पूरी किये 5 वर्ष बीत गये है तो वह इस श्रेणी में नहीं आता है।

बीमा एजेन्ट के कार्य
(Function of Insurance Agent)

एक एजेन्ट चाहे वह जीवन बीमा या सामान्य बीमा के क्षेत्र में व्यवसाय कर रहा हो उसे अपने नियोक्ता (बीमाकर्ता) के लिये निम्नलिखित कार्य अनिवार्यतः करने होते है–

(1) प्रस्तावकों से सम्पर्क करना –

इस कार्य के तहत एजेन्ट ऐसे लोगों से सम्पर्क स्थापित करता है जिन्होंने या तो बिल्कुल ही बीमा नहीं करवाया है या जो पुनः बीमा कराने के इच्छुक हों। इसके लिये वह उन्हें बीमा सम्बन्धी नयी–नयी जानकारियाँ देता है, शंका समाधान करता है, विभिन्न योजनाओं का महत्व समझाता है।

(2) प्रस्तावकों को प्रोत्साहित करना –

एजेन्ट अपनी बातों यथा योजना की जानकारी एवं प्रभावी तरीके से प्रस्तावक की आवश्यकतानुसार योजना को समझा कर उन्हें बीमा करवाने हेतु प्रेरित करता है। इसके लिये उसे बार बार प्रस्तावक से सम्पर्क भी करना पड़ता है।

(3) प्रस्ताव पत्र की पूर्ति करना –

एजेन्ट प्रस्तावक को बीमा प्रस्ताव पत्र देता है तथा उसके प्रत्येक बिन्दू को स्पष्ट कर सही ढंग से पूरा करने में मदद करता है जो बातें प्रस्तावक को समझ में नहीं आती, अभिकर्ता को स्पष्टतः समझाना पड़ता है।

(4) आवश्यक प्रपत्र तैयार करना –

प्रस्तावक को प्रस्ताव के साथ आवश्यक प्रपत्र यथा जन्म प्रमाण पत्र, चिकित्सा प्रमाण पत्र भी देना पड़ता है। इसकी व्यवस्था में भी एजेन्ट उसकी सहायता करता है।

(5) प्रीमियम प्राप्त कर प्रस्ताव पत्र जमा कराना।

(6) बीमितों या उनके उत्तराधिकारियों को बीमा दारों के भुगतान प्राप्त करने की जानकारी देना।

(7) बीमा प्राधिकरण द्वारा अधिसूचित बातों/निर्देशों का पालन करना।

(8) प्रस्तावकों को बीमापत्र के नामांकन, हस्तांकन या नवीनीकरण के सम्बन्ध में परामर्श देना।

(9) दावा भुगतान, बीमापत्र के खो जाने नष्ट होने आदि कार्यों में सहायता करना।

(10) जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम अथवा बीमकर्ता के विकास कार्यों, कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।

बीमा ऐजेन्ट के निषिध कर्तव्य – एक बीमा ऐजेन्ट निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता है–

(1) बीमाकर्ता अथवा निगम के लिए किसी भी प्रकार की धनराशि वसूल करना।

(2) बीमा के लिए कमीशन या छूट प्रदान करना।

(3) बीमाकर्ता की ओर से किसी जोखिम को स्वीकार करना।

(4) निगम अथवा बीमाकर्ता की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का विज्ञापन या पत्र पत्रिका न तो छपवा सकता है और न ही बाँट सकता है।

(5) किसी दूसरे बीमा एजेन्ट के कार्यों में हस्तक्षेप करना या उसके प्रस्तावकों को बहलाना, फुसलाना आदि।

(6) बीमकर्ता द्वारा प्राप्त वैध लाईसेन्स के बिना अथवा लाईसेन्स की अवधि समाप्त होने के बाद कार्य नहीं कर सकता।

(7) किसी अन्य बीमाकर्ता के क्षेत्र में जाकर कार्यवाही करना।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1 ''जोखिम'' से क्या आशय है?
2 बीमा क्या है?
3 'बीमा सहकारी व्यवस्था है' कैसे?
4 सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते हैं?
5 एजेन्ट एवं नौकर में क्या अन्तर है?
6 बीमा एजेन्ट कौन बन सकता है?
7 प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना क्या है?
8 सामाजिक बीमा क्या है?
9 'योगक्षेम' का उल्लेख किस ग्रंथ में किया गया है?
10 बीमा का आधारभूत उद्देश्य क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 बीमा की परिभाषा दीजिये।
2 'इंश्योरेन्स' तथा 'एश्योरेन्स' में अन्तर बताइए।
3 बीमा तथा जुए में अन्तर कीजिए।
4 'बीमा जोखिमों को रोकने की विधि नहीं बल्कि जोखिम बाँटने की विधि है' समीक्षा कीजिए।
5 बीमा के प्राथमिक उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
6 'फसल बीमा' पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7 'बीमा मानसिक शांति प्रदान करता है' टीका कीजिए।
8 'जीवन बीमा बीमा के साथ साथ निवेश भी है' समीक्षा कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबन्धात्मक प्रश्न

1 बीमा की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

2 बीमा के क्षेत्र की विस्तृत विवेचना कीजिए।

3 सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते है? सामाजिक सुरक्षा में बीमा की भूमिका की विवेचना कीजिए।

4 बीमा एजेन्ट की परिभाषा दीजिये। एजेन्ट के कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

5 बीमा की सामाजिक, आर्थिक उपयोगिता को समझाइए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रबन्ध का सामाजिक उत्तरदायित्व एवं निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व
Social Responsibility of Management Corporate Social Responsibility (CSR)

प्रबन्ध क्या है, प्रबन्ध क्यों आवश्यक है, प्रबन्ध कैसे कार्य करता है, प्रबन्धक की भूमिका क्या रहती है इन सभी जिज्ञासाओं को पूर्व अध्याय में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान परिस्थितियों में व्यापार–उद्योग तथा ग्राहक के सम्बन्ध में , व्यापार की सीमाएँ या क्षेत्र, व्यापार जगत की प्रतिस्पर्द्धाएँ, समाज की जागरूकता, सरकार का हस्तक्षेप या कानूनी शिकंजा, व्यापार व समाज में तकनीकी का प्रयोग, सूचना क्रान्ति आदि सभी तत्वों का तीव्र विस्तार एवं प्रगति हो रही है। इस परिवेश में प्रबन्ध या प्रबन्धक का समाज के प्रति नजरिया या दृष्टिकोण तथा उत्तरदायित्व भी एक व्यापार को परखने का पैमाना बन गया है। चूंकि व्यापार की उत्पति, अस्तित्व एवं प्रगति का मूल आधार समाज है इसलिए जागरूक, विवेकशील समाज की व्यापार से भी अपेक्षाएँ रखना वांछित या सहज है । समाज व्यापार जगत से जो अपेक्षाएँ रखता है उन्हें प्रबन्ध या प्रबन्धक को पुरा करना चाहिए। यही प्रबन्ध का समाज के प्रति दायित्व या उत्तरदायित्व है।

समाज की चाहत व अपेक्षाएं समय व परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है प्रबन्ध उन्हें पुरा करने का प्रयास करता रहता है, कई बार व्यापारी अत्यधिक लाभ एकत्र करने की इच्छा के कारण दायित्व भूल जाता है, जैसे हेनरी फोर्ड ने कहा था कि "व्यवसाय आखिर व्यवसाय है, कोई सामाजिक संस्था नहीं है" या फ्रिडमेन में लिखा कि – "उत्तरदायित्व व्यक्तियों के होते है, व्यवसाय के नहीं, जो ऐसा करते है वो केवल दिखावा होता है।" ऐसी सोच वाले व्यापार जगत के लिए सरकार (समाज के प्रतिनिधि के रूप में) कुछ कानुनी प्रावधान के द्वारा प्रबन्ध को लाभ का एक हिस्सा सामाजिक कार्यों पर व्यय करने के लिए बाध्य करता है।

इसके विपरित कई बार समाज की रूढ़िवादी सोच, परम्पराओं से बाहर निकालने के लिए व्यापार जगत व प्रबन्ध स्वयं पहल कर ग्राहकों एवं समाज की आदतों, व्यवहार एवं चिन्तन दृष्टिकोण को परिवर्तित करने का साहस करता है। अभियान चलाता है समाज को नए विचारों एवं नई तकनीक–नए उपकरण, नई कार्य शैली, से परिचित करवाने का प्रयास कर उनके जीवन स्तर एवं शैली में परिवर्तन लाकर दुनिया के समक्ष खड़ा करने के दायित्व का निर्वहन भी करता है। अर्थात् जिस समाज से हम लाभ कमाते है उनके उनके लिए कुछ व्यय करना व्यापार व प्रबन्ध का दायित्व बनता है। यदि वृक्ष व हरियाली हमें प्राणवायु देती है तो हमें भी उनका संरक्षण करना चाहिए यह हमारा कर्त्तव्य या दायित्व है; यदि नहीं करेंगे तो पर्यावरण असन्तुलन व विनाश होगा तो हम जीवित नहीं रह पायेंगे। ठीक इसी तरह व्यापारी जो लाभ कमाता है वह समाज की आवश्यकता पूर्ति अनुरूप–उत्पादन व विक्रय करके ही कमाता है, यदि समाज नहीं रहेगा तो विक्रय व उत्पादन की प्रांसगिकता एवं लाभ प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो जायेगी।

व्यापार एवं प्रबन्ध द्वारा समाज सेवा या कल्याण के लिए कई कार्य एवं कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं जैसे स्वास्थ्य एवं सुचिता के लिए बच्चों में हाथ धोने की आदत का विकास करना, स्वस्थ–स्वच्छ भारत अभियान के लिए जागरूकता फैलाना, समाज में कुशल रोजगार के लिए कौशल अभियान में जिम्मेदारी लेकर सहभागिता से प्रशिक्षण देना एवं युवाओं को रोजगार योग्य बनाना, भ्रष्टाचार समाप्ति के लिए या प्रत्येक आर्थिक क्रिया का लेखा–जोखा रखने के लिए डिजिटल–इकोनोमी के तहत कैश–लेश लेनदेन का बढ़ावा देने एवं प्रोत्साहन के लिए विविध प्रकार के जागरूकता अभियान संचालित करना, डिस्काउन्ट या सुविधा के रूप में ग्राहक को लाभ देकर प्रोत्साहित करना या ग्राहक द्वारा खरीदे गए उत्पाद के विक्रय मूल्य में से एक निश्चित राशी सामाजिक कल्याण–गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए अंशदान, खेल को बढावा देने में अंशदान इत्यादि अनेक छोटे–बड़े कार्यक्रम प्रबन्ध समाज हित के लिए करता है निश्चित ही वो विपणन योजना के तहत करता होगा किन्तु अन्ततः इसका लाभ समाज को ही प्राप्त होता है। यही सामाजिक उत्तरदायित्व है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परिभाषा :

एच.आर. बोवेन ने सामाजिक दायित्व की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि **"सामाजिक उत्तरदायित्व से तात्पर्य उन नीतियों को लागू करना, उन निर्णयों को लेना तथा उन कार्यों को करना जो समाज के मूल्यों एवं उद्देश्यों के लिए वांछनीय है।"**

एण्ड्रूज़ के अनुसार, **'प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व से तात्पर्य समाज के कल्याण के प्रति बुद्धिमतापूर्ण एवं वास्तविक लगाव से है जो किसी संस्थान को चरम विनाशकारी कार्यों को करने से रोकता है तथा मानव कल्याण की अभिवृद्धि में योगदान देने वाली दिशा की ओर प्रवृत्त करता है।"**

सामाजिक उत्तरदायित्व : अवधारणा

प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा को लेकर विभिन्न प्रबन्ध चिन्तकों व लेखकों के अभिमत पृथक–पृथक है। कुछ विद्वान वस्तुओं व सेवाओं के कुशल उत्पादन एवं विपणन को आधार मानकर अधिकतम लाभ अर्जन को प्रबन्ध का दायित्व मानते हैं। तो कुछ विद्वान प्रबन्ध द्वारा आर्थिक निर्णय लेते समय समाज हित एवं उसकी अपेक्षाओं को ध्यान रखने (जैसे–टाटा द्वारा नैनो कार की कीमत निर्धारण) को सामाजिक उत्तरदायित्व मानते हैं; ठीक इसी तरह प्रगतिशील एवं समग्र चिन्तनशील विद्वान समाज के लोकोपयोगी एवं कल्याणकारी कार्यों की ओर प्रयास किए जाने वाले कार्यक्रम जैसे – गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, प्रदुषण निवारण, पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा–रोजगार आदि को सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन मानते हैं।

प्रबन्ध समाज का आर्थिक एवं उत्प्रेरक एजेन्ट है अतः प्रबन्ध को समाज में सामाजिक एवं आर्थिक मूल्यों का विकास करने, ग्राहकों के हितों की रक्षा करने, समाज के विभिन्न वर्ग–पुरुष, महिला, युवा, बच्चे, ग्रामीण, शहरी, कामकाजी महिला, पेशेवर आदि विभिन्न वर्गों की आकांक्षाओं को पूरा करने एवं भावी चुनौतिया की तैयारी के लिए योजनाएँ, कार्यक्रम एवं अभियान चलाकर स्वैच्छिक रूप से जिम्मेदारी को वहन करना चाहिए।

आर. जोसेफ मोनसेन ने प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना के विकास के निम्न चार स्तरों का उल्लेख किया है–

कानून का पालन	⇨	प्रथम स्तर
जन आकांक्षाओं की पूर्ति	⇨	द्वितीय स्तर
जन आकांक्षाओं का पूर्वानुमान	⇨	तृतीय स्तर
जन आकांक्षाओं का सृजन	⇨	चतुर्थ स्तर

प्रथम स्तर– इस स्तर पर प्रबन्ध उपक्रम के संदर्भ में व्यावसायिक कानूनों का पालन करके सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। यह सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का न्यूनतम स्तर है।

द्वितीय स्तर–प्रथम स्तर से ऊपर उठकर प्रबन्ध जन आकांक्षाओं, अपेक्षाओं का अनुमान करता है एवं उसके अनुकूल दृष्टिकोण व कदम उठाता है।

तृतीय स्तर–इस स्तर पर प्रबन्ध पहले से ही जनमत व जन आकांक्षाओं का अनुमान करता है एवं उसके अनुकूल दृष्टिकोण व कदम उठाता है।

चतुर्थ स्तर – यह सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का उच्चतम स्तर है। इसमें प्रबन्ध आदर्श समाज के निर्माण को दृष्टिगत रखते हुए स्वेच्छा से नई जन आकांक्षाओं को जन्म देता है।

रॉबर्ट हे तथा इडग्रे ने प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा के निम्न प्रारूपों का उल्लेख किया है–

1. अधिकतम लाभ प्रबन्ध –अधिकतम लाभ प्रबन्ध की अवधारणा एडम स्मिथ को प्रसिद्ध कृति "वेल्थ ऑफ नेशन्स" (Wealth of Nation) पर आधारित है। इस पुस्तक में स्मिथ ने यह विचार व्यक्त किया है कि उद्यमी समाज की इच्छानुसार उत्पादन तभी करता है जब ऐसा करने से उसे लाभ होता हो। इस प्रकार जब समाज उद्यमियो को अधिकतम लाभ अर्जित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर देता है तो उनकी **'स्वार्थ भावना'** ही उत्पादन बढ़ाने का आधार बन जाती है। इससे समाज को अधिकाधिक वस्तुओं की उपलब्धि हो जाती है। इस प्रकार के प्रबन्ध में यह अवधारणा होती है कि **"मेरे लिए जो अच्छा है, वह मेरे देश के लिए अच्छा है** (What's good for me is good for my country)।"

2. न्यासिता प्रबन्ध – न्यासिता प्रबन्ध की अवधारणा तीसा की मन्दी से प्रेरित है। इसमें यह स्वीकार किया गया है कि प्रबन्ध का उत्तरदायित्व केवल लाभ अधिकतम करने तक सीमित नहीं है, बल्कि कर्मचारियों, अंशधारियों, पूर्तिकर्ताओं, ग्राहकों और जन सामान्य के प्रति इसका दायित्व है। इस मत के अनुसार प्रबन्धकों को ट्रस्टी के रूप में संगठन के परस्पर विरोधी दावेदारों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार यह मान्यता स्वीकार की गई है कि **"जो एक उपक्रम के लिए अच्छा है, वह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए अच्छा है।"**

3. जीवन की गुणवत्ता प्रबन्ध –प्रबन्ध का यह विचार सामाजिक उत्तरदायित्व के नवीनतम दर्शन को प्रकट करता है जो लाभ अधिकतम करने वाले प्रबन्ध तथा न्यासिता प्रबन्ध दोनों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

से भिन्न है। यह अवधारणा इस दर्शन को स्वीकार करती है **"जो समाज के लिए अच्छा है, वह हमारी कम्पनी के लिए अच्छा है"** (What's goods for society is good for our company)। इस प्रकार लाभार्जन को स्वीकार करते हुए जीवन–गुणवत्ता प्रबन्ध में विश्वास रखने वाला प्रबन्ध समाज के लिए हानिप्रद माल का उत्पादन और विक्रय नहीं करेगा। इस अवधारणा में प्रबन्ध समाज की समस्याओं को संयुक्त रूप से हल करते हुए सरकार को एक साझेदार के रूप में देखता है। इस अवधारणा को स्वीकार करने वाला प्रबन्ध समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करने, व्यक्तियों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने तथा हर प्रकार से समाज के उत्थान में योगदान देने के लिए तैयार रहता है। वह जन स्वीकृति के आधार पर कार्य करता है, समाज द्वारा अपने कार्यों का मूल्यांकन चाहता है।

सामाजिक उत्तरायित्व की नवीन अवधारणा

कुछ वर्षों पूर्व तक प्रबन्ध का सामाजिक दायित्व केवल 'कल्याणकारी कार्य' करने तक ही सीमित था। किन्तु बीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध से सामाजिक दायित्व की अवधारणा पूर्णतः बदल गई है।

प्रबन्ध का वास्तविक स्वरूप सामाजिक एवं मानवीय है, क्योंकि वह समाज के संसाधनों का प्रन्यासी है। अतः प्रबन्ध को सामाजिक आकांक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करना होता है। आर ऑकरमैन (R. Ackerman) का कथन है कि "हाल ही के वर्षों में समाज ने प्रबन्ध से कुछ नयी अपेक्षाएँ की है, इनमें प्रमुख है – सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन में नेतृत्व प्रदान करने की।" एडवर्ड कोल (Edward Cole) के अनुसार, "आज प्रबन्ध के सामने सबसे बड़ी चुनौती निरन्तर बदल रही सामाजिक अपेक्षाओं का मूल्यांकन करके उचित सामाजिक व्यवहार करने की है।"

स्पष्ट है कि सामाजिक दायित्व की विचारधारा एक विस्तृत विचारधारा है जो प्रबन्धकों को सामाजिक हितों के मूल्यों को ध्यान रखकर निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है। यह समाज की मान्यताओं, जीवन किस्म, स्थिरता, एकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना व्यवसाय का संचालन करने पर बल देती है यह प्रबन्धकों को समाज के हित में नीतियों व कार्यक्रमों का निर्माण करने, सामाजिक समस्याओं को हल करने तथा उन्हें समाज की श्रेष्ठ रचना के लिए प्रोत्साहित करती है ताकि समाज कल्याण में अभिवृद्धि की जा सके। संक्षेप में प्रबन्ध की सामाजिक प्रतिबद्धता अथवा सामाजिक दायित्व के निम्न तीन स्तर हैं –

1. निम्न स्तर – सामाजिक बाध्यता अथवा कर्तव्य–इस स्तर पर प्रबन्धक प्रचलित कानूनों तथा आर्थिक प्रणाली के अनुरूप ही समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का दायित्वों का पालन करते हैं। इसमें प्रबन्धक वैधानिक नियमों की बाध्यता, वैधानिक आवश्यकताओं अथवा अपने स्वयं के हित के कारण ही सामाजिक दायित्वों को निभाते हैं। (क. अधिनिमय 2013 धारा – 135 के अन्तर्गत)

2. मध्य स्तर – इस स्तर पर प्रबन्ध सामाजिक परम्पराओ (Social Norms) मूल्यों, आकांक्षाओं के कारण अपने दायित्वों का निर्वाह करते हैं। वे स्वैच्छिक रूप से अपने फायदे पर विचार न करके तथा कानूनी आवश्यकतओं से कुछ अधिक ही सामाजिक कल्याण के कार्य करते हैं। वे न्यासिता की भावना तथा 'अच्छे निगमीय नागरिक' (Good Corporate Citizens) की आकांक्षा से कार्य करते हैं। किन्तु इस स्तर पर जनसमस्याओं पर विचार नहं करते हैं। (कौशल विकास कार्यक्रम)

3. उच्चतम स्तर पर सामाजिक संवेदनशील – इस स्तर पर प्रबन्धक समाज की समस्याओ, कठिनाइयों, व महत्वपूर्ण मसलों के प्रति प्रतिसंवेदी (Proactive) तथा जागरूक होते हैं। उनका व्यवहार समाज के हित में कार्य करने तथा समाज को 'समस्या–मुक्त समाज' बनाने का होता है। वे समाज की समस्याओं का पूर्वानुमान करके उनके घटित होने के पूर्व ही उन्हें दूर करने का प्रयास करते है। वे दूर दृष्टि रखकर समाज की भावी समस्याओं को हल करने के उपाय ढूंढते हैं।

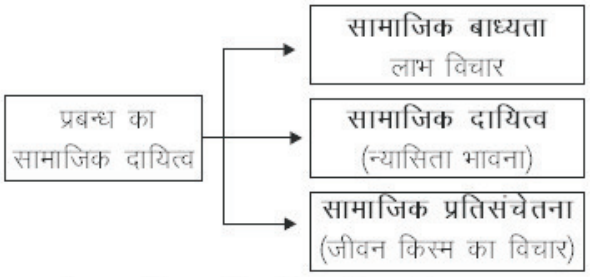

प्रबन्ध के सामाजिक दायित्वों का क्षेत्र एवं प्रकार :

प्रबन्ध को समाज के सभी वर्गो के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करना होता है। कुछ प्रमुख वर्गों के प्रति प्रबन्ध का सामाजिक दायित्व निम्न प्रकार है–

1. स्वयं के प्रति दायित्व –प्रबन्धको के अपने स्वयं के प्रति तथा अपने पेशे के प्रति कुछ प्रमुख दायित्व निम्नलिखित हैं–

(i) सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर निर्णय लेना।

(ii) प्रबन्ध के पेशे के प्रति प्रतिष्ठा बनाए रखना।

(iii) पेशेवर संगठनों की सदस्यता ग्रहण करना।

(iv) पेशेवर शिष्टाचार का पालन करना।

(v) प्रबन्ध आचार संहिता का पालन करना।

(vi) प्रबन्धकीय ज्ञान एवं शोध के प्रति विकास में योगदान देना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. अपनी संस्था के प्रति दायित्व –एक प्रबन्धक के अपने संस्था के प्रति निम्न दायित्व होते हैं –

(i) संस्था के व्यवसाय का सफल संचालन करना।

(ii) संस्था के उत्पादों की मांग उत्पन्न करना।

(iii) संस्था को प्रतिस्पर्धी बनाए रखना।

(iv) व्यवसाय में नवाचार को प्रोत्साहित करना।

(v) संस्था का विकास एवं विस्तार करना।

(vi) शोध कार्य को बढ़ावा देना।

(vii) संस्था की लाभार्जन क्षमता बनाए रखना।

(viii) संस्था की छवि एवं प्रतिष्ठा का निर्माण करना।

3. स्वामियों के प्रति दायित्व – प्रबन्ध एवं स्वामित्व के पृथक–पृथक हो जाने के कारण प्रबन्धकों के अपने स्वामियों के प्रति भी कुछ दायित्व उत्पन्न हो गये हैं, इनमें कुछ प्रमुख निम्न है–

(i) विनियोजित पूंजी की सुरक्षा प्रदान करना।

(ii) निश्चित उद्देश्यों के लिए ही पूंजी का उपयोग करना

(iii) अंशधारियों को उचित लाभांश का भुगतान करना।

(iv) अंशपूंजी में अभिवृद्धि के प्रयास करना।

(v) विभिन्न प्रकार के अंशधारियों के साथ समता एवं न्याय का व्यवहार करना।

(vi) व्यवसाय की प्रगति की यथार्थ सूचना देना।

(vii) कपटपूर्ण व्यवहार न करना। गुप्त लाभ न कमाना।

(viii) अंशों के हस्तान्तरण में बाधा उपस्थित न करना।

4. ऋणदाताओं के प्रति दायित्व – व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति में ऋणदाताओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः प्रबन्धक को अति निम्न दायित्व को पूरा करना चाहिए–

(i) ऋण राशि का सदुपयोग करना।

(ii) ऋण प्राप्ति एवं ब्याज की उचित शर्ते रखना।

(iii) मूल पूँजी व ब्याज का समय पर भुगतान करना।

(iv) बन्धक रखी गई सम्पत्ति की पूर्ण सुरक्षा करना।

(v) ऋणदाताओं को इच्छित सूचनाएँ उपलब्ध कराना।

5. कर्मचारियों के प्रति दायित्व – कर्मचारी संस्था की महत्वपूर्ण सम्पत्ति होते हैं। वे यान्त्रिक मानव (Robots) नहीं, वरन् संवेदनशील भावनाओं वाले प्राणी होते है। चार्ल्स मायर्स के अनुसार, "जो उद्योग मानीवय तत्वों की आवश्यकताओं एवं भावनाओं की अपेक्षा करते हैं वे यंत्र समूह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं।" एक प्रबन्धक के अपने कर्मचारियों के प्रति अग्र प्रमुख दायित्व होते हैं –

(i) उचित वेतन का भुगतान करना।

(ii) प्रेरणात्मक मजदूरी योजनाओं को लागू करना।

(iii) कर्मचारियों को कार्य की सुरक्षा प्रदान करना।

(iv) स्वस्थ कार्य–दशाएँ उपलब्ध कराना।

(v) श्रम कल्याण के कार्य करना।

(vi) सामाजिक सुरक्षा–पेन्शन, ग्रेच्युटी, बीमा, भविष्य निधि आदि की व्यवस्था करना।

(vii) कर्मचारियों को उनकी योग्यता एवं रुचि के अनुरूप कार्य सौंपना।

(viii) कर्मचारियों को प्रशिक्षण उपलबध कराना।

(ix) पदोन्नति के अवसर प्रदान करना।

(x) कर्मचारियों को प्रबन्ध में भागीदारी प्रदान करना।

(xi) बोनस एवं लाभों में हिस्सा देना।

(xii) क्षमता एवं व्यक्तित्व विकास में नये–नये अवसर प्रदान करना।

6. ग्राहकों के प्रति दायित्व –ग्राहक 'बाजार का राजा' होता है। ग्राहक–सन्तुष्टि ही व्यवसाय की सफलता का आधार है। सरकार भी उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षण प्रदान करती है। ग्राहक की उपेक्षा व्यवसाय के लिए घातक सिद्ध होती है। ऐसी स्थिति में ग्राहकों के प्रति प्रबन्धकों को कुछ विशेष दायित्वों को पूरा करना होता है। ये निम्नलिखित है–

(i) ग्राहकों की रुचियों व आवश्यकता का अध्ययन करना।

(ii) उचित मूल्य पर वस्तुएँ एवं सेवाएं उपलब्ध करना।

(iii) प्रमाणित किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध कराना।

(iv) अनुचित प्रवृत्तियों–कम माप–तोल, झूठ हिसाब, जमाखोरी, मिलावट आदि को त्यागना।

(v) झूठे, अनैतिक विज्ञापन व भ्रामक प्रचार न करना।

(vi) विक्रय के समय दिये आश्वासनों व वादों को पूरा करना।

(vii) विक्रय उपरान्त सेवाएँ प्रदान करना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(viii) उपभोक्ताओं की शिकायतों को दूर करना।

(ix) आचार संहिताओं का पालन करना।

(x) बाजार, उपभोक्ता व वस्तुओं की उपयोगिता के बारे में शोध करना।

(xi) वस्तु के उपयोगों, विधियों आदि के बारे में ग्राहकों को जानकारी देना।

(xii) उपयोगी जीवनस्तर व जीवन किस्म में वृद्धि करने वाली वस्तुओं का निर्माण करना।

(xiii) कृत्रिम कमी उत्पन्न न करना व पूर्ति को नियमित बनाना।

7. आपूर्तिकर्ताओं के प्रति दायित्व – आपूर्तिकताओ के प्रति प्रबन्धकों के निम्न दायित्व हैं –

(i) आपूर्तिकर्ताओं को उनके माल का उचित मूल्य प्रदान करना।

(ii) क्रय की उचित शर्तें रखना।

(iii) लेनदारों का यथासमय भुगतान करना।

(iv) नवीन प्रकार के कच्चे माल को प्रस्तुत करने का अवसर देना।

(v) बाजार सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना।

8. अन्य व्यवसायियों के प्रति दायित्व–अन्य व्यवसायों के प्रति निम्न दायित्व है–

(i) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनाये रखना।

(ii) दूसरे व्यवसायों की निन्दा या आलोचना न करना।

(iii) केवल सामाजिक हितों में अभिवृद्धि एवं व्यवसायिक कुशलता के लिए संयोजन को प्रोत्साहन देना।

(iv) आपूर्ति पर एकाधिकार न जमाना।

(v) दूसरे व्यवसायियों के ब्राण्ड, ट्रेडमार्क आदि का प्रयोग न करना।

9. व्यावसाकिय संघों तथा पेशेवर संस्थाओं के प्रति दायित्व – इनके प्रति प्रबन्धकों के निम्न दायित्व है –

(i) चैम्बर ऑफ कॉमर्स व अन्य व्यापार संघों की सदस्यता ग्रहण करना।

(ii) इन संस्थाओं की प्रकाशित सामग्री का उपयोग करना।

(iii) इन संघों की आचार संहिताओं का पालन करना।

(iv) इन संस्थाओं के सदस्य–छात्रों को सेवा में नियुक्ति देना।

(v) इनकी परियोजनाओं में मौद्रिक सहयोग देना।

(vi) इनकी सभाओं में भाग लेना। इनके साथ विचार–विमर्श करना।

10. स्थानीय जनसमुदाय के प्रति दायित्व – इस वर्ग के प्रति प्रबन्ध के निम्न दायित्व हैं –

(i) प्राकृतिक सम्पदा की सुरक्षा करना।

(ii) जल, वायु व ध्वनि प्रदूषण को रोकना।

(iii) स्थानीय जन–समुदाय को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।

(iv) जन–कल्याण संस्थाओं – अस्पताल, शिक्षण संस्थाएं, धर्मशाला आदि की स्थापना करना।

(v) महिलाओं, विकलांगों व कमजोर वर्ग को आर्थिक सहायता देना।

(vi) स्थानीय समुदाय की परम्पराओं व नियमों का पालन करना।

11. सरकार के प्रति दायित्व – प्रत्येक प्रबन्ध एक निगमीय नागरिक है। अतः सरकार के प्रति उसके निम्न दायित्व होते हैं–

(i) सभी सरकारी नियमों व कानूनों का पालन करना।

(ii) सरकार की नीतियों के अनुरूप व्यवसाय का संचालन करना।

(iii) व्यावसायिक उत्पादन क्षमता व लाइसेन्स क्षमता का पूर्ण उपयोग करना।

(iv) राष्ट्रीय हित में देश के आर्थिक संसाधनों का विदोहन करना।

(v) सरकारी क्षेत्र व प्रक्रिया को भ्रष्ट न करना।

(vi) करों का भुगतान करना। सरकार को सही विवरण देना।

(vii) राष्ट्रीय कार्यक्रमों–अल्प बचत, परिवार कल्याण आदि व सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में सहयोग करना।

12. विश्व के प्रति दायित्व –आज व्यवसाय का स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। अतः प्रबन्धकों का दायित्व सम्पूर्ण विश्व के प्रति उत्पन्न हो गया है। यह निम्नलिखित है–

(i) अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय की अभिवृद्धि में सहयोग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करना।

(ii) अन्य राष्ट्रों की व्यावसायिक नीति व घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करना।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी व तकनीकों को अपनाना।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यावसायिक नैतिकता व संहिताओं का पालन करना।

(v) अन्य देशों के सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का आदर करना।

(vi) विकासशील व पिछड़े राष्ट्रों की तकनीकी व प्रबन्धकीय सहायता उपलब्ध कराना।

(vii) पिछड़े राष्ट्रो में उद्योग स्थापित करना।

(viii) न्यायोचित व्यवहार, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों पर ध्यान देना।

निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व

(Corporate Socia Responsibilites - CSR)

व्यवसाय का समाज के प्रति विभिन्न रूपों में उत्तरदायित्व होता है। व्यवसाय से यह अपेक्षा की जाती है क वह समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करे। इस दृष्टि से सरकार तथा व्यावसायिक संगठनों द्वारा समय–समय पर विभिन्न रूपों में प्रयास किये गये, लेकिन इसे कानूनी स्वरूप देने का प्रयास **पहली बार कम्पनी अधिनियम, 2013** के माध्यम से किया गया है। इसे निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में शामिल किया गया है।

सामान्य शब्दों में निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व का आशय व्यवसाय द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के हितों हेतु की जाने वाली विभिन्न सामाजिक क्रियाओं तथा गतिविधियों से हैं।

निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (धारा 135) –कम्पनी अधिनियम, 2013 द्वारा बड़ी कम्पनियों पर निगमीय सामाजिक दायित्व सौंपा गया है ताकि देश के आर्थिक–सामाजिक उत्थान एवं विकास में उनकी सक्रिय साझेदारी सुनिश्चित की जा सके। कम्पनी अधिनियम की धारा 135 के अनुसार प्रत्येक ऐसी कम्पनी जिसकी कुल क्षमता पांच सौ करोड़ रुपये या अधिक हो या सकल–उत्पाद एक हजार करोड़ रुपये से अधिक हो, या वित्तीय वर्ष में कुल लाभ पांच करोड़ रुपये से अधिक हो, अपने निदेशक मण्डल की तीन या अधिक निदेशकों की एक **निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व समिति (CSR समिति)** का गठन करेगी। इन निदेशकों में से कम से कम एक स्वतंत्र निदेशक होना आवश्यक हैं।

उक्त CSR समिति उन सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों के बारे में नीतियां निर्धारित करेगी जो कम्पनी अधिनियम, 2013 की अनुसूची VII में दर्शायी गयी है। समिति इन गतिविधियों में लगने वाला संभावित खर्च तथा इस हेतु बजट आवंटन करने के लिए निदेशक मण्डल के पास प्रस्ताव भेजकर अनुशंसा करेगी। इन सामाजिक–आर्थिक गतिविधियों का किस प्रकार संचालन हो रहा है इसका पर्यवेक्षण करना भी CSR समिति का कार्य होगा। इन कार्यों का विवरण वेबसाइट (Website) पर प्रसारित किया जायेगा। समिति यह भी सुनिश्चित करेगी कि कम्पनी के सकल लाभ का कम से कम दो प्रतिशत CSR नीतियों के क्रियान्वयन पर खर्च हो तथा इन कार्यों के क्रियान्वयन में स्थानीय क्षेत्रों (Local Area) को प्राथमिकता दी जायेगी।

यदि कम्पनी द्वारा CSR गतिविधियों पर खर्च नहीं किया जाता है तो निदेशक मण्डल इसके कारणों का उल्लेख धारा 134 (3) के अन्तर्गत प्रेषित की जाने वाली अपनी वार्षिक रिपोर्ट में करेगा।

कम्पनी कानून 2013 के अन्तर्गत प्रावधान

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 135 तथा इसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अनुसार इस सम्बन्ध में मुख्य प्रावधान इस प्रकार है :

1. लागू होना (Applicability) : निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी प्रावधान प्रत्येक ऐसी कम्पनी पर लागू होते हैं जिस कम्पनी की शुद्ध सम्पत्ति किसी वित्तीय वर्ष के दौरान ₹ 500 करोड़ या अधिक या बिक्री ₹ 1000 करोड़ या अधिक या जिसका शुद्ध लाभ ₹ 5 करोड़ या इससे अधिक हो। उस कम्पनी को अपने संचालकों की एक निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व समिति का गठन करना होगा। इस कमेटी में कम से कम तीन संचालक होंगे। इनमें से कम कम से कम एक स्वतंत्र संचालक होना चाहिये। {धारा 135(1)}

2. संचालकों की रिपोर्ट में व्यक्त करना – कम्पनी द्वारा बनायी गयी निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व समिति के गठन की जानकारी कम्पनी के संचालक मण्डल की रिपोर्ट में सम्मिलित करनी होगी। {धारा 135(2)}

3. समिति के कार्य –निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व समिति निम्नांकित कार्य करेगी :

(क) एक निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति का निर्धारण करेगी जो इस अधिनियम की अनुसूची 7 में बताये गये क्रियाकलापों में से कम्पनी द्वारा किये गये क्रियाकलापों के सम्बन्ध में संचालक मण्डल की सिफारिश करेगी।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ख) इन क्रियाकलापों पर व्यय की राशि सिफारिश करेगी।

(ग) कम्पनी द्वारा निर्धारित निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति को मोनीटर करेगी। {धारा 135(3)}

4. संचालक मण्डल द्वारा कार्यवाही : कम्पनी का संचालक मण्डल निम्नांकित कार्यवाही करेगा :

(क) संचालक मण्डल समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर विचार करेगा तथा कम्पनी की निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति का अनुमोदन करेगा तथा अपनी रिपोर्ट में निर्धारित तरीके से इस नीति को प्रकट करेगा। इसे कम्पनी की वेबसाइट पर भी डाला जायेगा।

(ख) संचालक मण्डल यह भी सुनिश्चित करेगा कि कम्पनी की निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति में सम्मिलित क्रियाकलाप कम्पनी द्वारा किये जाये। {धारा 135(4)}

5. खर्च करना : कम्पनी को अपने प्रत्येक वित्तीय वर्ष के ठीक पहले के तीन वर्षों के औसत शुद्ध लाभों का कम से कम 2 प्रतिशत निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व कार्यों पर खर्च करना होगा। संचालक मण्डल यह सुनिश्चित करेगा कि यह राशि निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति के अनुसरण में खर्च की जाये। {धारा 135(5)}

6. स्थानीय क्षेत्र को प्राथमिकता : कम्पनी निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति के अन्तर्गत निष्पादित किये जाने वाले क्रियाकलापों में उस स्थानीय क्षेत्र को प्राथमिकता देनी होगी, जिस क्षेत्र में कम्पनी कार्यरत हो। {धारा 135(5)}

7. असफलता का उल्लेख : यदि कोई कम्पनी निर्धारित राशि को निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति के क्रियाकलापों में खर्च करने में असफल रहती है तो उसे अपनी संचालक मण्डल की रिपोर्ट में इसके कारणों का उल्लेख करना होगा। {धारा 135(5)}

8. शुद्ध लाभ की गणना : निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व की गतिविधियों पर व्यय की जाने वाली राशि के लिए शुद्ध लाभ की गणना कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 198 के प्रावधानों के अनुसार की जायेगी। {धारा 135(5)}

9. अन्य प्रावधान : धारा 135 के अन्तर्गत निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व की नीति को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए (निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व) नियम 2014 बनाये गये जो 1 अप्रैल, 2014 से लागू हैं। इन नियमों के मुख्य प्रावधान इस प्रकार है :

(i) निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व सम्बन्धी प्रावधान प्रत्येक कम्पनी, उसकी सहायक या सूत्रधारी कम्पनी तथा ऐसी प्रत्येक विदेशी कम्पनी पर भी लागू होते हैं जिसकी शाखा या परियोजना कार्यालय भारत में स्थित हैं।

(ii) एक कम्पनी सी एस आर गतिविधियों या कार्यकलापों के निष्पादन में अन्य कम्पनियों के साथ मिलकर भी कार्य कर सकती हैं लेकिन इसका उसे अपनी सी एस आर कमेटी से अनुमोदन कराना होगा।

(iii) निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व नीति के अन्तर्गत केवल भारत में किये जाने वाले क्रियाकलापों के व्यय को ही सम्मिलित किया जायेगा।

(iv) ऐसे क्रियाकलाप जो कम्पनी के केवल कर्मचारियों एवं उनके परिवार के लाभ के लिये किये जाते हों उन्हें सीएस आर गतिविधियों में सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

(v) गैर सूचीबद्ध कम्पनी या निजी कम्पनी को सी एस आर समिति में स्वतंत्र संचालक की नियुक्ति की आवश्यकता नहीं होगी।

(vi) यदि किसी निजी कम्पनी में केवल 2 ही संचालक है तो वे ही सीएसआर कमेटी के सदस्य माने जायेंगे।

(vii) सी एस आर कमेटी निगमिय समाजिक उत्तरदायित्व नीति के क्रियाकलापों के निष्पादन के सम्बन्ध में पारदर्शी निगरानी व्यवस्था कायम करेगी।

(viii) कम्पनी के संचालक मण्डल को सम्बन्धित वित्तीय वर्ष के बाद अपनी सी एस आर गतिविधियों के सम्बनध में एक वार्षिक प्रतिवेदन देना होगा।

(ix) सी एस आर गतिविधियों के व्यय के बाद कोई राशि बचती है तो उसे कम्पनी के व्यावसायिक लाभ का भाग नहीं माना जायेगा।

(x) कम्पनी को अपनी सी एस आर नीति तथा इसके अन्तर्गत किये गये क्रियाकलापों का विवरण निर्धारित तरीके से अपनी वेबसाइट पर प्रकट करना होगा।

निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत भारत में कार्यरत विभिन्न कम्पनियों द्वारा वर्ष 2015–16 में सीएसआर पर किये गये वास्तविक व्यय तथा कार्यों का "इण्डिया सीएसआर आउटलूक" की एक रिपोर्ट के अनुसार जो एक करोड़ से अधिक व्यय करने वाली 250 कम्पनियों पर आधारित है के अनुसार सर्वाधिक व्यय करने वाली कम्पनियों की सूची निम्न प्रकार है :

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

A Case study of CSR

पश्चिमी राजस्थान में कार्यरत केयर्न क. द्वारा सामाजिक दायित्व ैत्त की कहानी

तेल उत्पादन के साथ बही समृद्धि की बयार

राज्य सरकार विभिन्न कॉर्पोरेटस के साथ मिल कर बाड़मेर जिले के सामुदायिक विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को आगे बढ़ा रही है। थार रेगिस्तान में 2004 में हुई ढाई दशक की सबसे बड़ी तेल मंगला के बाद केयर्न इंडिया ने क्रूड ऑयल का उत्पादन शुय किया तो बाड़मेर जिला विश्व के तेल मानचित्र पर स्थापित हो गया। गत दो वर्षों के दौरान राज्य सरकार और केयर्न इंडिया ने साथ मिल कर विभिन्न सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को जन–जन तक पहुँचाया है। इन कार्यक्रमों में जीवन अमृत जैसे प्रकल्प हैं जो गांव–गांव में शुद्ध पेयजल पहुँचाने का काम कर रहा है वहीं स्वच्छ भारत अभियान की क्रियान्विति में भी यह सहयोग सफल रहा है।

1. जीवन अमृत प्रोजेक्ट

समुदाय तक स्वच्छ पेयजल पहुँचाने के उद्देश्य से राज्य के जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, केयर्न इंडिया, टाटा पीरामल हेल्थ, सर्वजल और स्थानीय एनजीओं ने मिल कर जिले के विभिन्न गांवों में पीने का आरओ फिल्टर जल उपयोगकर्ता तक पहुंचाने के लिए अभिनव पहल की इस प्रोजेक्ट मेकं वाटर एटीएम कियोस्क की स्थापना गाँवों में ऐसे स्थानों पर की गयी जहाँ ग्रामीण आसानी से पहुँच सकें। ये जल कियोस्क ग्राम जल समिति द्वारा संचालित किये जाते हैं। ग्रामीणों की तरफ से समिति को मामूली भुगतान किया जाता है तथा समिति जल की गुणवत्ता सुनिश्चित करती है। अब तक 34 आरओ प्लांट स्थापित किये जा चुके हैं और आगामी तीन वर्षों मेकं 333 प्लांट स्थापित करने की योजना है।

2. घरेलू स्वच्छता प्रोजेक्ट

घरेलू शौचालय किसी भी समुदाय में स्वास्थ्य और स्वच्छता सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण जरूरत होते हैं। 2013 से निर्मल भारत अभियान के तहत केयर्न इंडिया और सरकार ने साथ मिल कर पीपीपी आधार पर बेरीवाला तलां, भाडखा और मुण्डों की ढाणी ग्राम पंचायतों में शौचालय तथा स्नानागार बनाने का कार्य शुरू किया है। पंचायतों ने 4500 परिवारों में से 2657 शौचालय निर्मित किये गए हैं।

3. सोलर प्रोजेक्ट

बाड़मेर जिले में ऑफ गाँवों में विद्युत उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सरकारी योजनाओं के अनुरूप सौर ऊर्जा से रोशनी पहुँचाने का कार्य किया जा रहा है। गाँव को अब सौर ऊर्जा से संचालित किमन ग्रिड की बिजली से रोशनी ओर अच्छी रातें मिल गयी हैं। यहाँ मेघवालों की ढाणी ने पहली बार अपने घर आँगन को विद्युत बल, ब से रोशन पाया तो मानो उनका जीवन रोशन हो गया। इस गांव के 80 वर्षीय मालाराम, गंगाराम और लच्छू राम के लिए वो क्षण वाकई अनमोल था जब उन्होंने अपने जीवन में पहली बार अपने गांव में बिजली का उजाला देखा। अपने घ्ज्ञर में टीवी देखने की तो उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। केयर्न इंडिया ने सन् एडिसन के साथ मिल कर 27 किलोवाट सौर मिनीग्रिड पावर प्रोजेक्ट के जरिये सौपरिवारों तकविद्युत पहुँचाने का बीड़ा उठाया और ग्रामीणों के सहयोग से नब्बे दिनों की रिकॉर्ड अवधि में यह कार्य पूरा किया गया।

4. स्कूल शिक्षा सुधार प्रोजेक्ट

इस प्रोजेक्ट के तहत सितम्बर 2013 में केयर्न इंडिया चिन्हित क्षेत्रों में शिक्षा गुणवत्ता सुधारने के उद्देश्य से राजकीय विद्यालयों को गोद लेने का कार्य कर रही है। मुख्य रूप से माध्यमिक विद्यालयों मे शिक्षकों की कमी शिक्षण सहायक सामग्री का अभाव व अन्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सुधार कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं।

5. मोबाइल हैल्थ वैन

राज्य सरकार और केयर्न इंडिया अन्य संस्थाओं के साथ मिल कर दूर दराज ग्रामीण क्षेत्रों तक स्वास्थ्य सेवाओं को पहुँचाने का बीड़ा उठाया है। इस कार्यक्रम के तहत चौदह मोबाइल हेल्थ वैन 144 गाँवों में अपनी सेवाएं दे रही है।

6. ग्रीन बाड़मेर अभियान और राजकीय अस्पताल में विविध प्रयास

ग्रीन बाड़मेन – क्लीन बाड़मेर अभियान की शुरुआत 2013 में की गयी। इसका उद्देश्य बाड़मेर के नागरिकों में स्वच्छता के प्रति जागरुकता पैदा करना था। केयर्न इंडिया के सहयोग से इस अभियान को एक कदम आगे ले जाते हुए जिला मुख्यालय के राजकयी अस्पताल में सफाई और सौंदर्यीकरण का कार्य शुरू किया गया। आज बाड़मेर के राजकीय अस्पताल में रोगियों के लिए बेहतर और स्वच्छ माहौल उपलब्ध है।

7. राजकीय अस्पताल में विशेषज्ञ सेवाएं

फरवरी 2015 से राज्य सरकार के स्वास्थ्य विभाग और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

केयर्न नेमिल कर सीएसआर स्वास्थ्य पहल के अन्तर्गत प्रोजेक्ट रचना में विभिन्न नवाचार किए गए। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों पर सेवाओं को बेहतर बनाते हुए मातृ स्वास्थ्य, जागरूकता कार्यक्रम, परिवार नियोजन और किशोर स्वास्थ्य, प्रसव पश्चात एवं शिशु देखभाल, टीकाकरण तथा टीबी और एचआईवी रोधक प्रयासों को केयर इंडिया के माध्यम से करना है।

9. बाड़मेर के विद्यालयों के शौचालय निर्माण

इस प्रोजेक्ट का मुख्य उद्देश्य स्वच्छ भारत अभियान को शालाओं में आगे बढ़ाते हुए विद्यार्थियों को एक स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण प्रदान करना है। बाड़मेर जिले के 91 विद्यालयों में 161 शौचालयों का निर्माण केयर्न इंडिया के सहयोग से करवाया जा रहा है उन्हें विद्यार्थियों को समर्पित किया जा चुका है।

10. केयर्न उद्मिता केन्द्र

राजस्थान सरकार के सहयोग से केयर्न इंडिया ने आईटीआई बाड़मेर परिसर के निकट जिले में निकट भविष्य में पनपने वाली रोज़गार संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए उद्यमिता केन्द्र की स्थापना की गयी है। वहाँ पर वतमान आईएलएफएस के ज़रिये विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। साथ ही स्पोकन इंग्लिश और सॉफ्ट स्किल ट्रेनिंग भी प्रदान की जाती है। स्थानीय उद्यमों की सहायतार्थ लोकर वैंडर सेल भी यहाँ संचालित होता है। यहाँ अभी तक 12000 युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जा चुका है। जोधपुर में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय स्तर के केयर्न सेंटर ऑफ़ एक्सीलेंस में भी राज्य सरकार भागीदार है तथा वहां बाड़ेमेर के स्थानीय युवाओं को प्रशिक्षण में प्राथमिकतापूर्वक सहयोग प्रदान किया जाता है।

11. स्नातक रोजगार अनुकूलन कार्यक्रम

बाड़मेर जिला मुख्यालय के दोनों राजकीय महाविद्यालयों के साथ सहमति पत्र हस्ताक्षरित कर केयर्न इंडिया ने स्नातकों की दक्षता में अभिवृद्धि के उद्देश्य से प्रत्येक कालेज में कंप्यूटर लैब तथा क्लासरूप निर्मित तथा विकसित किये हैं।

12. आईटीआई एडॉप्शन कार्यक्रम

जिले में नए औद्योगिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए आईटीआई के प्रशिक्षण स्तर में बदलाव महती आवश्यकता है। तकनीकी शिक्षा विभाग और केयर्न इंडिया कदम में हुए एमओयू के तहत केयर्न द्वारा बाड़मेर और बालोतरा आईटीआई को गोद लेते हुए उन्हें ढांचागत विकास के साथ–साथ लैब सुविधा, प्रशिक्षण, गुणवत्ता और उद्योगों से संपर्क में सुधार के कदम उठाये जायेंगे।

13. दीर्घावधि आजीविका – कृषि आधारित कार्यक्रम

कृषि विभाग विशेषज्ञों तथा राजकयी संस्थाओं को साथ लेते हए केयर्न इंडिया और सहयोगी एनजीओं कृषि आधणरित दीर्घावधि आजीविका कार्यक्रम संचालित कर रहे हैं। इनमें कृषि उत्पादन बढ़ाने वाले नवाचारों वाला वाडी प्रोजेक्ट, वर्षा जल संभरण के लिए खडीन निर्माण और डेयरी विकास कार्यक्रम विभिन्न गाँवों में संचाति किये जा रहे हैं।

14. आंगनवाड़ी प्रोजेक्ट

सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के बीच हुए एमओयू के अनुसार केयर्न इंडिया द्वारा बाड़मेर में प्रथम फेज में 50 आधुनिक आंगनवाड़ी का निर्माण करवाया जायेगा। राष्ट्रीय स्तर पर बनने वाले 4000 आंगनवाड़ियों में पहले केन्द्र के लिए शिलापूजन बाड़मेर जिले के छीतर का पार गांव में किया गया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. सामाजिक उत्तरदायित्व किसे कहते है ?
2. प्रबंध के सामाजिक उत्तरदायित्व की कोई एक परिभाषा दीजिये।
3. सामाजिक चेतना से क्या आशय है ?
4. निगम से क्या आशय है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रबंध के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा संक्षेप में बताइये।
2. प्रबंध की सामाजिक उत्तरदायित्व की नवीन अवधारणा की विवेचना कीजिये।
3. व्यवसाय के स्वयं के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्वों की संक्षेप में विवेचना कीजिये।
4. व्यवसाय का ग्राहक के प्रति दायित्वों की संक्षेप में कीजियें।
5. व्यवसाय का सरकार के प्रति दायित्वों की संक्षेप में कीजियें।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रबंध के सामाजिक उत्तरदायित्व से आप क्या समझते है ? इसकी अवधारणाओं की विवेचना कीजिये।
2. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों की संक्षेप में विवेचना कीजिये।
3. कम्पनी अधिनियम 2013 के अन्तर्गत निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्वों के लिए किये गये प्रावधानों की विवेचना कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

माल एवं सेवा कर
Goods and Service Tax

देश में 1 अप्रैल 2017 से जीएसटी लागू किये जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। देश की 15 विधान सभाएं अब तक जीएसटी संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर चुकी है। अब राष्ट्रपति की मंजूरी मिलने के बाद संविधान संशोधन लागू हो जायेगा। इसके बाद जीएसटी अधिनियम तथा आई जीएसटी अधिनियम को लोकसभा, राज्यसभा द्वारा पारित किया जायेगा तथा सभी विधानसभाओं द्वारा भी इसे पारित किया जायेगा। कानून बनने के बाद सम्बन्धित नियम बनाये जायेंगे ।

इतिहास एवं विकास –

भारत में प्राचीन समय से ही किसी न किसी रूप में उत्पादन, विक्रय पर शुल्क आरोपित एवं वसूल किया जाता रहा है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में मौर्य शासन काल में निर्मित वस्तुओं पर चुकाए जाने वाले कर के प्रमाण उपलब्ध है। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा भारत में नमक के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क लगाया गया। उसके पश्चात उत्पाद शुल्क की परिधि में आने वाली वस्तुओं की संख्या में अंग्रेज सरकार द्वारा निरन्तर वृद्धि की गई। 1917 में मोटर स्पिरिट पर तथा 1922 में केरोसिन के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क लगाया गया। 1943 में द्वितीय विश्व युद्ध काल में अतिरिक्त वित्त जुटाने के लिए सरकार द्वारा तम्बाकू पर उत्पाद शुल्क आरोपित किया गया। 1948 में सिगरेट उत्पादन को भी उत्पाद शुल्क की परिधि में लाया गया। विभिन्न उत्पादों पर एक ही नियम से उत्पाद शुल्क आरोपित करने एवं वसूल करने में सरकार को कठिनाई महसूस हो रही थी। उत्पाद शुल्क संग्रहण में सरलता की दृष्टि से सरकार द्वारा विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन पर उत्पाद शुल्क वसूल करने के लिए पृथक पृथक अधिनियम पारित किए गए।

भारत में वस्तुओं के क्रय विक्रय पर विक्रय कर लगाने का अधिकार पहली बार 'भारत सरकार अधिनियम, 1935' द्वारा प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् अनेक राज्य सरकारों द्वारा विक्रय कर अधिनियम पारित करके राज्य विशेष में वस्तुओं के क्रय विक्रय पर कर वसूल किया जाने लगा। सर्वप्रथम विक्रय कर मध्य प्रदेश में 1938 में लागू किया गया। इस प्रकार सभी राज्य सरकारें किसी भी तरीकें से विभिन्न वस्तुओं पर कर लगाने के लिए स्वतन्त्र थी। इन राज्य सरकारों द्वारा इस अधिकार का दुरुपयोग व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं के विरूद्ध किया जाने लगा।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम 1944 पारित होने से पूर्व भारत में विभिन्न उत्पादों पर उत्पाद शुल्क आरोपित करने हेतु 16 अधिनियम बनाए जा चुके थे। सरकार द्वारा 1944 में विभिन्न उत्पाद शुल्क कानूनों के स्थान पर एक समेकित अधिनियम केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं नमक अधिनियम 1944 पारित किया गया।

भारत सरकार द्वारा 1953 में डॉ. जॉन मथाई की अध्यक्षता में अप्रत्यक्ष कर ढ़ाँचे पर विचार करने और अप्रत्यक्ष करों के दायरें को बढ़ाने के लिए एक कर जाँच समिति की स्थापना की गई। कर जाँच समिति द्वारा की गई अनुशंसाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा कई उत्पादों को उत्पाद शुल्क के दायरे में लाया गया।

अतः केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों से विचार विमर्श करने के बाद एवं करारोपण जाँच आयोग की सिफारिशों के आधार पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 286 में सितम्बर, 1956 में कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किए गये। सरकार द्वारा पुनः 1965 में देश में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर ढ़ाँचे को सरल व युक्तिसंगत बनाने के लिए सुझाव देने हेतु वित्त मंत्रालय के भूतपूर्व सचिव भूतलिंगम की अध्यक्षता में भूतलिंगम समिति गठित की गई।

भारत में सेवा कर की शुरूआत 1 जुलाई, 1994 से हुई। उस समय इसमें संगठित क्षेत्र की तीन सेवाएं शामिल की गई थी। उदाहरण के लिए टेलीफोन, साधारण बीमा और शेयर दलाली 1994 से अब तक प्रतिवर्ष इसमें संशोधन करके और अधिक सेवाओं को इसकी परिधि में लाया गया है। सेवा कर एक अप्रत्यक्ष कर है जो वित्त अधिनियम, 1994 के अध्याय अ तथा अ. । के द्वारा जम्मू और कश्मीर को छोडकर सम्पूर्ण भारत में लागू है। यह कर धारा 65 (105) में बताई गई करायोग्य सेवाओं को प्रदान करने पर लगाया जाता है। धारा 66 के अधीन यह कर की प्रभारित होता है।

भारत में सेवा क्षेत्र की राजस्व योग्यता की पहचान कर चयनित सेवाओं पर सेवाकर लगाने की अनुसंशा डा. राजा जे. चैलेय्या की अध्यक्षता वाली कर सुधार समिति ने की। तत्कालीन केन्द्रीय वित्त मंत्री ने सेवा कर की नयी अवधारणा को जन्म दिया तथा निम्न वक्तव्य दिया – ''सेवाओं की कराधान से मुक्ति देने के लिए कोई ठोस कारण नहीं है जबकि वस्तुओं पर कर लगाया जाता है तथा कई देश कर उद्देश्य के लिए सेवाओं तथा वस्तुओं को एक जैसा मानते है। इस प्रकार मैं दूरभाष, जीवन बीमा तथा स्टॉक दलाल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की सेवाओं पर कर लगाकर देश की कर प्रणाली में एक नया अध्याय जोड़ने का प्रयत्न करता हुँ।''

इस प्रकार सेवा कर प्रथम बार सन् 1994 में वित्त अधिनियम, 1994 के अध्याय के द्वारा दूर संचार, सामान्य बीमा और शेयर दलाली सेवा पर लगाया गया था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश में करों की संख्या केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सत्ता द्वारा अलग अलग करारोपण से इतनी अधिक हो गई है कि व्यापार, व्यापारी दिशाहीन है। आवश्यकता महसूस की गई कि सम्पूर्ण देश में एक कर होना चाहिए। अन्य देशों में लगने वाले माल एवं सेवा कर को भारत में लगाने पर विचार किया गया। परन्तु भारतीय संवैधानिक व्यवस्था को देखते हुए एकल कर लगाना आसान नहीं था क्योंकि केन्द्र तथा राज्य सरकार के बीच इस हेतु सामंजस्य स्थापित नहीं हो पा रहा था।

अतः भारत में दोहरा जी एस टी करारोपित करने का विचार किया गया। वर्तमान जीएसटी मॉडल इसी दोहरा मॉडल पर आधारित है।

परिचय –

माल एवं सेवाकर (जी एस टी) एक अप्रत्यक्ष कर है जो माल के उत्पादक एवं विक्रेता पर एक समान रूप से लगाया जायेगा। यह कर माल एवं सेवा दोनों पर लगेगा। वर्तमान कर प्रणाली में इस प्रकार के तीन कर है पहला उत्पाद शुल्क, दूसरा सेवा कर तथा तीसरा राज्य वैट। इन तीनों के स्थान पर यह अकेला कर लगेगा।

स्पष्ट है कि तीन करों के स्थान पर एक कर होने से सरलता बढेगी। वर्तमान में उत्पाद शुल्क, सेवाकर और वैट तीन अलग अलग कानून है लेकिन ये तीनों सभी पर लागू नहीं होते है। हमारे देश में व्यापारियों की संख्या सर्वाधिक है जिन्हे केवल वैट चुकाना होता है। उनका उत्पाद एवं सेवाकर से कोई लेना देना नहीं है। उन्हें इन तीनों करों के मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इसके विपरीत जीएसटी में स्टेट जीएसटी एवं सैन्ट्रल जीएसटी दो तरह के कर वसूल करने होंगे जिसका मतलब है जो व्यापारी अभी एक वैट वसूल कर रहे है उन्हें जीएसटी के तहत दो प्रकार के कर वसूल करके जमा कराने होंगे तथा दो दो आगम कर जमा प्राप्त करनी होगी। पूरे विश्व में जहां भी जीएसटी लागू है वहां केवल एक जीएसटी ही लागू होता है। किन्तु भारत में इसे परिवर्तित कर दोहरा जीएसटी लागू किया गया है।

इसमें राज्य एवं केन्द्र दोनों समान रूप से जीएसटी वसूल करेंगे अर्थात जीएसटी में हमें दो दो विभागों से व्यवहार करना होगा। इसके अतिरिक्त अन्तर्राज्यीय बिक्री करने पर आई जीएसटी वसूल करके जमा कराना होगा।

जीएसटी, बिक्री के प्रत्येक बिन्दु पर लगने वाला कर है तथा वैट की तरह ही खरीद पर चुकाये जीएसटी का इनपुट क्रेडिट क्रेता को प्राप्त हो जायेगा। जीएसटी में तीन इनपुट कर होंगे। सी जीएसटी, एस जीएसटी तथा आई जीएसटी ।

जीएसटी से आशय –

जीएसटी एक तरह का मूल्य संवर्धित कर ही है जो कि एक बहुस्तरीय कर है जो किसी वस्तु या सेवा के विक्रय के प्रत्येक स्तर पर वर्धित मूल्य पर लगाया जाता है। वर्धित मूल्य से आशय किसी व्यापारी द्वारा माल या सेवा के मूल्य में जोड़े गये मूल्य से है। उदारणार्थ – श्रीगजानन, किसी माल या सेवा को 2000रू. में खरीदकर हेमन्त को 3000रू. में बेचता है तो उसके द्वारा 1000रू. अपनी लागत एवं लाभ के जोड़े गये है यही उस मूल्य का वर्धित मूल्य कहलायेगा तथा इसी वर्धित मूल्य पर कर देना होगा। जीएसटी की गणना निम्न प्रकार से समझी जा सकती है, मानाकि केन्द्रीय जीएसटी की दर 15 प्रतिशत तथा राज्य जीएसटी की दर 5 प्रतिशत है–

श्रीगजानन द्वारा जो माल या सेवा खरीदी जायेगी उसपर जीएसटी आगम कर जमा बिल में निम्न प्रकार होगी –

विवरण	राशि रू.
क्रय मूल्य	2,000
जोडें : केन्द्रीय जीएसटी 15 प्रतिशत	300
जोडें : राज्य जीएसटी 5 प्रतिशत	100
कुल चुकाई गई राशि	2,400

श्रीगजानन द्वारा जो माल या सेवा बेची जायेगी उस पर जीएसटी निर्गम कर बिल में निम्न प्रकार होगी –

विवरण	राशि रू.
विक्रय मूल्य	3,000
जोडें: केन्द्रीय जीएसटी 15 प्रतिशत	450
जोडें : राज्य जीएसटी 5 प्रतिशत	150
कुल चुकाई गई राशि	3,600

श्रीगजानन द्वारा देय जीएसटी की गणना निम्न प्रकार होगी –

विवरण	केन्द्रीय जीएसटी	राज्य जीएसटी
विक्रय मूल्य पर देय जीएसटी	450	150
घटायें : क्रय मूल्य पर चुकाई गई जीएसटी	300	100
कुल देय कर	150	50

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जीएसटी की विशेषताएँ –

जीएसटी की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार है –

1. यह बिक्री के स्थान के आधार पर लगने वाला कर है।
2. यह बिक्री के प्रत्येक स्तर पर लगाया जायेगा।
3. सभी कर योग्य माल एवं सेवायें जो किसी प्रतिफल के लिए होती है पर यह लागू होगा।
   निम्न पर जीएसटी लागू नहीं होगा –
   – कर मुक्त माल एवं सेवाएं – सी जीएसटी एवं एस जीएसटी के लिए एक समान सूची जारी होगी।
   – माल एवं सेवाएं जो जीएसटी की परिधि से बाहर होगी।
   – एक निर्धारित सीमा से कम होने वाले लेनदेन।
4. दोहरा जीएसटी देश में लागू किया जा रहा है –
   – सैन्ट्रल जीएसटी जो केन्द्र सरकार द्वारा वसूला जायेगा।
   – राज्य जीएसटी जो राज्यों द्वारा वसूला जायेगा।
5. राज्य के भीतर होने वाली बिक्री या राज्य में प्रदान की जाने वाली सेवा पर सी जीएसटी तथा एस जीएसटी दोनों वसूल किये जायेंगे।
6. अन्तर्राज्यीय बिक्री के मामले में आई जीएसटी व स ू ल किया जायेगा जो कि केन्द्र सरकार द्वारा वसूल किया जायेगा।
7. आई जीएसटी राज्य के बाहर से माल आयात करने पर लगेगा तथा माल या सेवाओं के अन्तर्राज्यीय स्टॉक हस्तान्तरण पर भी वसूल किया जायेगा।
8. देश के बाहर होने वाले निर्यात शून्य दर से कर योग्य होंगे। ऐसा होने से उन्हें माल की खरीद पर इनपुट कर जमा का पुर्नभुगतान प्रतिदाय प्राप्त करने का अधिकार होगा।
9. पूर्व में जो राज्य माल का निर्माता था उसे 1 प्रतिशत अतिरिक्त जीएसटी वसूल करने का अधिकार था परन्तु अब इसे वसूल नहीं करने का निर्णय लिया गया है।,
10. निम्न को छोड़कर सभी माल एवं सेवाएं जीएसटी के दायरे में आने की सम्भावना है –
    – शराब – इस पर राजकीय उत्पाद शुल्क तथा वैट देय होगा।
    – बिजली – इस पर बिजली शुल्क देय होगा।
    – रीयल एस्टेट – इस पर प्रोपर्टी कर एवं स्टाम्प ड्यूटी देय होगी।
    – पेट्रोलियम उत्पाद
    – तम्बाकू उत्पाद सैन्ट्रल उत्पाद शुल्क विभाग के अधीन होंगे।
11. निम्नलिखित कर जीएसटी में शामिल किये जायेंगे –
    केन्द्रीय कर –
    – केन्द्रीय उत्पाद शुल्क
    – अतिरिक्त उत्पाद शुल्क
    – उत्पाद शुल्क जो मेडिसिन एवं टायलेटरीज प्रप्रेरेशन कानून के तहत वसूल की जाती है।
    – अतिरिक्त सीमा शुल्क
    – सेवा कर
    – सरचार्ज एवं सैस राज्य कर
    – स्टेट वैट / विक्रय कर
    – केन्द्रीय विक्रय कर
    – क्रय कर
    – मनोरंजन कर
    – विलासिता कर
    – एन्ट्री कर
    – लॉटरी, शर्त एवं जुए पर लगने वाला कर
    – सरचार्ज एवं सैस
12. जीएसटी की चार दरें निर्धारित की जायेगी –
    – आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं की मेरीट दर
    – सामान्य वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रमापित दर
    – कीमती धातुओं की विशेषदर
    – शून्य दर
13. न्यूनतम कर योग्य राशि सी जीएसटी तथा एस जीएसटी दोनों पर लागू होगी। इसे 20 लाख रू. रखा गया है। यानि 20 लाख रू. तक की बिक्री करने वाले व्यवहारी जीएसटी के दायरे में नहीं आयेंगे।
14. कम्पोजिशन स्कीम उन व्यवहारियों के लिए होगी जिनकी एक सीमा तक कर योग्य विक्रय है। इसे 50 लाख रू. रखे जाने का विचार है। यानि ऐसे व्यवहारी एक मुश्त कर जमा करा सकेंगे।
15. वस्तुओं के वर्गीकरण के लिए एच एस एन (Harmonized System of Nomenclature) कोड इस्तेमाल किया जायेगा।
16. सेवाओं के लिए वर्तमान कोडिंग सिस्टम को उपयोग में लिया जायेगा।

जीएसटी में इनपुट कर जमा –

जीएसटी में तीन प्रकार के कर लगाये जाने है। अन्तर्राज्यीय बिक्री पर आई जीएसटी देय होगा। राज्य के भीतर माल बेचने पर एस जीएसटी एवं सी जीएसटी दोनों कर देय होंगे। तीनों ही कर की राशि के अलग अलग खाते रखने होंगे तथा उन्हें निम्न प्रकार समायोजित किया जायेगा।

आई जीएसटी की जमा –

यदि कोई व्यापारी अन्तर्राज्यीय खरीद करता है जो उस पर आई जीएसटी का भुगतान किया गया हो तो उसका इनपुट कर जमा सबसे पहले देय आई जीएसटी के निर्गम कर से प्राप्त होगा। इसके बाद सी जीएसटी के आउटपुट कर से तथा शेष बचे इनपुट को एस जीएसटी के आउटपुट कर से समायोजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये जय एण्ड कम्पनी ने 2,00,000रू. का माल दिल्ली से खरीदा जिस पर उसने 18 प्रतिशत की दर से 36,000रू. आई जीएसटी का भुगतान किया। उसका माह के दौरान आई जीएसटी का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आउटपुट कर 15,000रू. बनता है, सी जीएसटी का 19,000रू. तथा एस जीएसटी का 16,000रू. बनता है तो व्यापारी उपरोक्त आउटपुट कर में से इनपुट कर की जमा निम्न प्रकार प्राप्त करेगा–

कुल इनपुट कर	36,000रू.
सर्वप्रथम आई जीएसटी से समायोजन	15,000रू.
शेष इनपुट कर	21,000रू.
उपरोक्त का समायोजन अब सी जीएसटी से	19,000रू.
शेष इनपुट कर जिसका समायोजन एस जीएसटी से किया जा सकेगा	2,000रू.

इस प्रकार समस्त समायोजन के पश्चात व्यापारी को एस जीएसटी 14,000रू. (16,000– 2,000) जमा कराना होगा।

सी जीएसटी की जमा –

यदि व्यापारी राज्य के भीतर माल की खरीद करता है तो उस पर उसने सी जीएसटी एवं एस जीएसटी दोनों कर चुकाये है। इस सी जीएसटी का इनपुट कर जमा सर्वप्रथम व्यापारी को सी जीएसटी के आउटपुट कर से प्राप्त होगा तथा शेष आई जीएसटी के आउटपुट से प्राप्त होगी। सी जीएसटी के इनपुट जमा का लाभ एस जीएसटी के आउटपुट कर में से प्राप्त नहीं होगा।

एस जीएसटी की जमा –

राज्य के भीतर माल खरीदने पर जो एस जीएसटी का भुगतान किया गया है उसका इनपुट कर जमा सर्वप्रथम एस जीएसटी के आउटपुट कर से प्राप्त होगा तथा शेष आई जीएसटी के आउटपुट कर से समायोजित किया जा सकता है। एस जीएसटी के इनपुट जमा का लाभ सी जीएसटी के आउटपुट कर से तथा सी जीएसटी के इनपुट का लाभ एस जीएसटी के आउटपुट कर से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण 1 : मानाकि राजस्थान के एक निर्माता ने 8,00,000रू. का कच्चा माल जयपुर के एक व्यापारी से खरीदा जिसने सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत लगाकर कच्चे माल का विक्रय किया। निर्माता ने इस कच्चे माल से वस्तु क की 16,000 इकाइयाँ निर्मित की तथा 1,60,000रू. का अतिरक्त व्यय किया। उसने लाभ सहित सभी इकाइयों को 15,00,000रू. में एक पंजीकृत व्यापारी को बेच दी तथा इस पर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत वसूल की। देय कर की गणना निम्न प्रकार की जायेगी –

निर्माता द्वारा जो माल की खरीद पर जीएसटी आगम कर जमा बिल में निम्न प्रकार होगी –

विवरण	राशि रू.
क्रय मूल्य	8,00,000
जोडें : केन्द्रीय जीएसटी 12 प्रतिशत	96,000
जोडें : राज्य जीएसटी 6 प्रतिशत	48,000
कुल चुकाई गई राशि	9,44,000

निर्माता द्वारा जो माल के विक्रय पर जीएसटी निर्गम कर बिल में निम्न प्रकार होगी –

विवरण	राशि रू.
विक्रय मूल्य	15,00,000
जोडें : केन्द्रीय जीएसटी 12 प्रतिशत	1,80,000
जोडें : राज्य जीएसटी 6 प्रतिशत	90,000
कुल चुकाई गई राशि	17,70,000

निर्माता द्वारा देय जीएसटी की गणना निम्न प्रकार होगी –

विवरण	केन्द्रीय जीएसटी	राज्य जीएसटी
विक्रय मूल्य पर देय जीएसटी	1,80,000	90,000
घटायें : क्रय मूल्य पर चुकाई गई जीएसटी	96,000	48,000
कुल देय कर	84,000	42,000

उदाहरण 2 : मानाकि राजस्थान के एक व्यापारी ने 18,00,000रू. का माल जयपुर के एक व्यापारी से खरीदा जिसपर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत लगाया गया है। व्यापारी ने इस माल का 3/4 भाग 20,00,000रू. में एक पंजीकृत व्यापारी को राजस्थान में बेच दिया इस पर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत वसूल की। शेष माल 6,00,000रू. में गुजरात के एक व्यापारी को बेच दिया इस पर आईजीएसटी 16 प्रतिशत वसूल की। तथा देय कर की गणना निम्न प्रकार की जायेगी –

व्यापारी द्वारा जो माल की खरीद पर जीएसटी आगम कर जमा बिल में निम्न प्रकार होगी –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विवरण	राशि रू.
विक्रय मूल्य	18,00,000
जोडें : केन्द्रीय जीएसटी 12 प्रतिशत	2,16,000
जोडें : राज्य जीएसटी 6 प्रतिशत	1,08,000
कुल चुकाई गई राशि	21,24,000

व्यापारी द्वारा जो माल के विक्रय पर जीएसटी निर्गम कर बिल में निम्न प्रकार होगी –

विवरण	राज्य के भीतर बिक्री रू. में	अन्तर्राज्यीय बिक्री रू. में
विक्रय मूल्य	20,00,000	6,00,000
जोड़े : केन्द्रीय जीएसटी 12 प्रतिशत	2,40,000	
जोड़ें : राज्य जीएसटी 6 प्रतिशत	1,20,000	
जोड़ें : आई जीएसटी 16 प्रतिशत		96,000
कुल चुकाई गई राशि	23,60,000	6,96,000

व्यापारी द्वारा देय जीएसटी की गणना निम्न प्रकार होगी –

विवरण	केन्द्रीय जीएसटी	राज्य के भीतर बिक्री रू. में	अन्तर्राज्यीय बिक्री रू. में
विक्रय मूल्य पर देय जीएसटी	2,40,000	1,20,000	96,000
घटाये : क्रय मूल्य पर चुकाई गई जीएसटी	2,16,000	1,08,000	–
कुल देय कर	24,000	12,000	96,000

माल एवं सेवाकर में जॉब वर्क –

कई उत्पादन इकाइयां उत्पादन से सम्बन्धित कई कार्य दूसरे उत्पादकों से करवाते है जिसे जॉब वर्क कहा जाता है। इन्जिनियरिंग इकाइयां मशीनिंग, ड्रिलिंग, वेल्डिंग, पेन्टिंग आदि कार्य जॉब वर्क के आधार पर करवाते है जबकि टैक्सटाइल इकाइयां ब्लिचिंग, डाइंग, प्रिंटिंग आदि कार्य जॉब वर्क के आधार पर करवाते है। इसके अतिरिक्त कैमीकल इकाइयां आदि भी कई कार्य अपनी फैक्ट्री के बाहर जॉब वर्क के आधार पर करवाते है। इन इकाइयों द्वारा वर्तमान में जब माल जॉब वर्क के लिए भेजा जाता है तो उत्पाद शुल्क एवं वैट के कानून इन पर लागू होते है। ऐसे मामलों में विभाग यह देखते है कि जॉब वर्क की आड़ में माल की बिक्री तो नहीं की जा रही है।

वर्तमान में वैट कानून में माल को जॉब वर्क के लिए यदि स्टॉक हस्तान्तरण किया जाता है तो राज्य के भीतर माल भेजने पर कोई अलग प्रावधान नहीं है। ऐसे मामले में चालान पर माल भेजा जा सकता है तथा जॉब वर्क के बाद वापस प्राप्त किया जा सकता है। यदि जॉब वर्क के लिए माल राज्य के बाहर भेजा जाता है तब माल के साथ रोड परमिट लगाये जाने का प्रावधन है तथा साथ ही फार्म 'एफ' भी उक्त लेनदेन के लिए माल भेजने वाले एवं माल प्राप्त करने वाले के बीच में आदान प्रदान करना होता है। 'एफ' फार्म के अभाव में लेनदेन को बिक्री मानने का प्रावधान है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यापारी उत्पाद शुल्क के तहत पंजीकृत है तो उसे जॉबवर्क के लिए माल भेजते समय कुछ नियमों की पालना करनी होती है लेकिन जॉब वर्क पर उत्पाद शुल्क देय नहीं होती है। इस प्रकार वर्तमान कानून में जॉब वर्क का कार्य करवाने में कोई ज्यादा परेशानी नहीं होती है। जीएसटी कानून में जॉब वर्क के लिए धारा 43ए में प्रावधान किया गया है। धारा 43ए इस प्रकार है –

43A. Special procedure for removal of goods for certain purposes

(1) The commissioner may, by special order and subject to conditions as may be specified by him, permit a registered taxable person (hereinafter referred to in this section as ths "principal") to send taxable goods, without payment of tax, to a job worker for job work and from there subsequently sent to another job worker and likewise, and may after completion of job work, allow to -

(a) Brink back such goods to any of his place of business, without payment of tax, for supply therefrom on payment of tax within India, or with or without payment of tax for export as the case may be, or

(b) Supply such goods from the place of business of a job worker on payment of tax within India, or with or without payment of tax for export as the case may be.

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) The responsibility for accountability of the goods including payment of tax there on shall lie with the "principal".

उपरोक्त से स्पष्ट है कि जीएसटी लागू होने के पश्चात कमिश्नर इस सम्बन्ध में विशेष आदेश जारी करेंगे। इस आदेश में रजिस्टर्ड व्यवहारी को जॉब वर्क के लिए माल भेजने पर पालन किये जाने वाले नियमों को तय किया जायेगा। यह माल बिना कोई कर चुकाये भेजने का प्रावधान इस धारा में किया गया है। एक जॉब वर्कर दूसरे जॉब वर्कर को भी माल बिना जीएसटी चुकाये भेज सकेगा तथा उत्पादक जॉब वर्कर की साईट से सीधे माल की बिक्री भी कर सकेगा।

प्रशासनिक ढाँचा –

सी जीएसटी एवं एस जीएसटी का प्रशासनिक ढांचा अलग अलग होगा। सी जीएसटी एवं आई जीएसटी से सम्बन्धित कार्य वर्तमान में कार्यरत उत्पाद एवं सेवा कर विभाग देखेगा जिसका नाम बदल कर केन्द्रीय गुड्स एवं सर्विस टैक्स विभाग कर दिया जायेगा। यह केन्द्र सरकार के अधीन होगा तथा यह विभाग सभी व्यवहारियों के सी जीएसटी एवं आई जीएसटी से संबंधित कार्यो को देखेगा उनका निर्धारण करेगा तथा टैक्स की वसूली या रिफण्ड जारी करेगा।

एस जीएसटी से संबंधित कार्य प्रत्येक राज्य में स्थित वाणिज्यिक कर विभाग करेगा जिसका नाम राजस्थान के लिए राजस्थान गुड्स एवं सर्विस टैक्स विभाग होगा। यह राज्य के भीतर होने वाली बिक्री पर लगने वाले एस जीएसटी से सम्बन्धित कार्यो को देखेगा, उनका निर्धारण करेगा तथा टैक्स की वसूली या रिफण्ड जारी करेगा।

इस प्रकार प्रत्येक व्यवहारी यदि वह व्यापारी भी है जो केन्द्र एवं राज्य दोनों विभागों को रिर्पोट करेगा तथा दोनों ही विभाग के अधिकारी उस पर कार्यक्षेत्र रखेंगे। सर्वे, तलाशी, जब्ती आदि के समस्त अधिकार दोनों विभागों के पास रहेंगे तथा व्यवहारी को दोनों विभागों से निपटना होगा।

पंजीकरण –

जीएसटी की वसूली केन्द्र एवं राज्य दोनों सरकारों द्वारा की जायेगी लेकिन व्यवहारी को केवल एक ही ऑन लाइन पंजीकरण लेना होगा तथा एक ही रिटर्न भरनी होगी। जीएसटी का कम्प्यूटर सिस्टम केन्द्र एवं राज्य से सम्बन्धित जानकारी उन के बीच में बांट देगा। कोई भी व्यक्ति जो वर्तमान में वैट के तहत अपने राज्य में पंजीकृत है उसे स्वतः ही जीएसटी पंजीकरण नम्बर जारी कर दिया जायेगा लेकिन पंजीकरण जारी करने से पहले उससे कुछ अतिरिक्त जानकारी मांगी जायेगी तथा वह जानकारी प्रस्तुत करने के पश्चात ही उसे जीएसटी पंजीकरण नम्बर जारी किया जायेगा।

जीएसटी पंजीकरण पैन कार्ड नम्बर पर आधारित होगा। जीएसटी पंजीकरण नम्बर 15 अंकों का होगा। पंजीकरण नम्बर इस प्रकार होगा –

State Code	PAN					Entity Code	Blank Digit	Check
1	3	5	7	9	11	12	14	15
2	4	6	8	10		13		

पंजीकरण का कार्य राज्य सरकार के हाथ होगा तथा राज्य जीएसटी विभाग व्यवहारी का पंजीकरण करेगा।

वर्तमान पंजीकृत व्यवहारियों की स्थिति –

जो व्यवहारी वर्तमान वैट या उत्पाद या सर्विस कर कानून में पंजीकृत है उनकी समस्त जानकारी जीएसटी कॉमन पोर्टल पर उपलब्ध हो जायेगी तथा उनका जीएसटीआईएन (GSTIN) जनरेट हो जायेगा। अभी कुछ करदाता राज्य या केन्द्रीय कर के तहत पंजीकृत है या कुछ करदाता दोनों में ही पंजीकृत है। जीएसटी कानून में व्यवहारी को राज्य जीएसटी के तहत ही पंजीकृत किया जायेगा। एक राज्य में एक व्यवहारी चाहे तो एक रजिस्ट्रेशन कराये या अपने अलग अलग व्यवसायों के लिए अलग अलग पंजीकरण कराये इस बात की उसे छूट मिलेगी। पंजीकरण डेटा का राष्ट्रीय प्रतिभूति डिपॉजिटरी लिमिटेड (NSDL) एवं जीएसटीएन (GSTN) दोनों उपयोग करेंगे।

जिन व्यवहारियों का डेटा पूरा उपलब्ध नहीं होगा उन्हें अखबार में विज्ञापन देकर सूचित किया जायेगा तथा निश्चित अवधि में उन्हे अपना डेटा विभाग की वैबसाइट पर पूरा करना होगा। इसके बाद पूरा डेटा राज्यों को भेजा जायेगा जो उस डेटा का जांच करेंगे। यदि कोई व्यवहारी निर्धारित अवधि में डैटा अपडेशन नहीं करेगा तो उसका पंजीकरण स्थगित कर दिया जायेगा तथा जब तक वह अपना डेटा सही नहीं करता है ऐसा स्थगन जारी रहेगा।

नये व्यवहारियों का पंजीकरण –

ऐसे व्यवहारी जो जीएसटी में पहली बार नया पंजीकरण कराना चाहते है उन्हें जीएसटी पोर्टल पर जाकर अपना पंजीकरण करवाना होगा। यदि कोई व्यक्ति एक ही राज्य में एक से ज्यादा पंजीकरण कराना चाहता है या अलग अलग राज्यों में पंजीकरण कराना चाहता है जो वह ऐसा कर सकता है।

आवेदन के साथ लगने वाले दस्तावेज –

प्रत्येक व्यवहारी को ऑन लाईन आवेदन के साथ निम्न दस्तावेज की स्कैन प्रतिलिपि लगानी होगी –

(1) साझेदारी फर्म के मामलें में साझेदारी संलेख, सोसायटी ट्रस्ट के मामले में पंजीकरण प्रमाण पत्र, कम्पनी के मामले में एमसीए 21 से ऑन लाईन जांच की जायेगी, कोई दस्तावेज लगाने की आवश्यकता नहीं होगी।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) कार्य के मुख्य स्थान के सबूत के रूप में यदि स्वयं का स्थान है जो मालिकाना हक से सम्बन्धित कागज या किराये के मामले में किरायानामा यदि बिना किराये जगह मिली है जो उससे सम्बन्धित सबूत।

(3) बैंक स्टेटमेन्ट की प्रति।

(4) अधिकृत प्रतिनिधि के सम्बन्ध में अधिकार पत्र।

(5) एकल व्यापारी, साझेदार, कर्ता, मैनेजिंग डायरेक्टर, मैनेजिंग ट्रस्टी की फोटो।

जीएसटी पोर्टल इन तमाम सूचनाओं को केन्द्र/राज्य अधिकारीणी को भेजेगा जो सम्बन्धित न्यायिक अधिकारी को इन्हें देंगे जो तीन दिन में दी गई सूचना की जांच करके पुनः जीएसटी पोर्टल को रिपोर्ट करेंगे। यदि प्रस्तुत की गई जानकारी सही पाई जायेगी तो पोर्टल पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी कर देगा। यदि प्रस्तुत की गई सूचना में कोई कमी पाई जाती है तो इसकी जानकारी आवेदक को या तो अधिकारी सीधे ही देंगे या फिर कॉमन पोर्टल के जरिये उसे इसकी जानकारी दी जायेगी। यदि केन्द्र का अधिकारी कोई कमी निकालता है तो इसकी जानकारी राज्य विभाग को भी दी जायेगी तथा यदि राज्य का अधिकारी कोई कमी निकालता है तो इसकी जानकारी केन्द्र जीएसटी को भी दी जायेगी। इस प्रावधान से स्पष्ट है कि राज्य एवं केन्द्र दोनों जीएसटी विभाग पंजीकरण के आवेदन की जांच करेंगे।

कर विवरणियाँ –

जीएसटी लागू होने के बाद व्यापारियों को मासिक रिटर्न भरना पड सकता है। अभी वैट एवं उत्पाद शुल्क में छोटे व्यापारियों को तिमाही रिटर्न भरनी होती है तथा सर्विस कर में छमाही रिटर्न भरे जाने का प्रावधान है। प्रत्येक व्यवहारी को निम्न तीन रिटर्न प्रस्तुत करनी होगी –

(1) बिक्री का विवरण (धारा 25) –

माह के दौरान माल की बिक्री या प्रदान की गई सेवा की जानकारी इस रिटर्न में प्रस्तुत करनी होगी। यह जानकारी माह की समाप्ति से 10 दिन के भीतर प्रस्तुत करनी होगी। इस रिटर्न में शून्य दर पर की गई बिक्री, अन्तर्राज्यीय बिक्री, क्रय वापसी, देश के बाहर निर्यात, डेबिट नोट, क्रेडिट नोट, आदि सभी को शामिल करना होगा।इस जानकारी को क्रेता द्वारा धारा 26 में पेश की गई रिटर्न से मैच किया जायेगा तथा यदि कोई मिस मैच आता है तो उसे ठीक करने का मौका व्यवहारी को दिया जायेगा।

(2) खरीद का विवरण (धारा 26) –

माह के दौरान खरीदे गये माल एवं प्राप्त की गई सेवाओं की जानकारी माह की समाप्ति से 15 दिन के भीतर देनी होगी। इसमें अन्तर्राज्यीय खरीद की जानकारी भी देनी होगी। ऐसी संस्थाए जिन पर रिवर्स चार्ज के तहत सेवा प्राप्तकर्ता को सेवाकर जमा कराना है उन सेवाओं की जानकारी अलग से देनी होगी। आपूर्ति के सम्बन्ध में कोई डेबिट नोट या क्रेडिट नोट प्राप्त हुए है उनकी जानकारी भी देनी होगी।

इस जानकारी को विक्रेता व्यवहारी द्वारा धारा 25 में प्रस्तुत बिक्री के विवरण से मिलान किया जायेगा तथा यदि कोई अन्तर आता है तो उसे ठीक करने का मौका व्यवहारी को दिया जायेगा।

(3) मासिक विवरणी (धारा 27) –

बिक्री एवं खरीद का विवरण क्रमशः 10 एवं 15 तारीख को प्रस्तुत करने के पश्चात व्यवहारी को 20 तारीख तक अपनी मासिक विवरणी ऑन लाईन प्रस्तुत करनी होगी। मासिक विवरणी में खरीद एवं बिक्री की जानकारी के अतिरिक्त इनपुट कर जमा, चुकाये गये कर की जानकारी एवं अन्य जानकारियां प्रस्तुत करनी होगी।

कम्पोजीशन स्कीम के तहत आने वाले व्यवहारी बिक्री विवरण, खरीद विवरण एवं विवरण को तिमाही आधार पर प्रस्तुत करेंगे।

विवरण प्रस्तुत करने से पूर्व देय कर जमा कराना आवश्यक है अन्यथा प्रस्तुत की गई विवरणी को अयोग्य करार दे दिया जायेगा। यदि किसी माह में कोई खरीद बिक्री नहीं है तब भी शून्य की विवरणी प्रस्तुत करना आवश्यक है। कर कटौती करने वाले व्यवहारियों को भी मासिक विवरणी भरनी होगी।

विवरणी समय पर न भरने पर लेट फीस –

यदि कोई व्यवहारी अपनी विवरणी समय पर प्रस्तुत नहीं कर पाता है तो उस पर लेट फीस लगाये जाने का प्रावधान धारा 33 में किया गया है। धारा 25, 26 में बताये गये बिक्री एवं खरीद विवरण को समय पर प्रस्तुत न करने पर 100 रू. प्रतिदिन अधिकतम 5000रू. की पेनल्टी लगाई जा सकती है।

धारा 30 में प्रस्तुत की जाने वाले वार्षिक विवरणी को देरी से प्रस्तुत करने में देरी होने पर 100रू. प्रतिदिन की शास्ति लगाई जा सकती है जो कि विक्रय राशि के 0.25 प्रतिशत तक अधिकतम हो सकती है।

जीएसटी मॉडल में अनुत्तरीत प्रश्न –

1. वर्तमान में उत्पाद शुल्क के तहत 1.50 करोड़ रू. तक की बिक्री पर छूट उपलब्ध है तथा वैट के अन्तर्गत 10 लाख रू. तक छूट उपलब्ध है। जीएसटी में यह छूट कितनी बिक्री तक होगी इसके बारे में अभी कुछ ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार सर्विस टैक्स के तहत वर्तमान में 10 लाख रू. तक की छूट उपलब्ध है। जीएसटी कानून में छोटी इकाई एवं छोटे स्तर के व्यापरियों किसे माना जायेगा तथा उसे कर से क्या छूट प्राप्त होगी इसकी कोई जानकारी किसी को भी नहीं है।
2. क्या प्रत्येक व्यवहारी को केन्द्रीय माल एवं सेवाकर विभाग एवं राज्य माल एवं सेवाकर विभाग के सम्पर्क में रहना होगा? एसजीएसटी के इनपुट क्रेडिट एवं रिफण्ड के लिए राज्य के विभाग से सम्पर्क करना होगा तथा सीजीएसटी के इनपुट क्रेडिट एवं रिफण्ड के लिए केन्द्र के विभाग से सम्पर्क करना होगा या राज्य के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विभाग के साथ ही उसे सम्पर्क में रहना होगा। किस विभाग का क्या कार्य होगा इस पर अभी कुछ भी स्पष्ट नहीं है।

3. क्या किसी व्यवहारी के यहां केन्द्रीय माल एवं सेवाकर विभाग एवं राज्य माल एवं सेवाकर विभाग दोनों अलग अलग तलाशी एवं जब्ती की कार्यवाही कर सकते है या दोनों में से कोई एक विभाग ही कार्यवाही करने के लिए अधिकृत होगा। केन्द्र एवं राज्य के विभागों के टर्नओवर के आधार पर कार्यक्षेत्र बंटेगा या दोनों ही विभाग एक व्यापारी पर अपना कार्य क्षेत्र रखेंगे। यह वर्तमान मॉडल में उचित मार्गदर्शित नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न (Short Type Questions)

1. माल एवं सेवाकर भारत में कब से लागू होगा। इसे देश में लागू करने की प्रक्रिया क्या रहेगी?
2. माल एवं सेवाकर का संक्षिप्त में परिचय दीजिये।
3. माल एवं सेवाकर अधिनियम में मूल्य वर्धन पर किस प्रकार कर लगेगा? उदाहरण से समझाइये।
4. जीएसटी की कोई चार विशेषताये लिखिये।
5. जीएसटी में किन किन वर्तमान करों को शामिल किया जायेगा?
6. जीएसटीआईएन क्या है? समझाइए।
7. पंजीकरण हेतु आवेदन के साथ लगने वाले किन्हीं चार दस्तावेजों के नाम बताइए।

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. माल एवं सेवाकर का संक्षिप्त में परिचय दीजिये। इसकी विशेषताओं को भी समझाइये।
2. माल एवं सेवाकर के अधीन पंजीकरण प्रक्रिया को समझाइये।
3. दोहरा जीएसटी क्या है? यह किस प्रकार भारत में लागू किया जायेगा? विस्तृत रूप से समझाइये।
4. जीएसटी के अधीन व्यापारी को कौन कौन सी विवरणीयाँ जमा करवानी होगी? समझाइये।

व्यावहारिक प्रश्न (Practical questions)

1. यदि राजस्थान के एक निर्माता ने 15,00,000रू. का कच्चा माल जयपुर के एक व्यापारी से खरीदा जिसने सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्य जीएसटी 6 प्रतिशत लगाकर कच्चे माल का विक्रय किया। निर्माता ने इस कच्चे माल से वस्तु क की 56,000 इकाइयाँ निर्मित की तथा 8,60,000रू. का अतिरक्त व्यय किया। उसने लाभ सहित सभी इकाइयों को 25,00,000रू. में एक पंजीकृत व्यापारी को बेच दी तथा इस पर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत वसूल की। देय कर की गणना कीजिये।
2. राजस्थान के एक व्यापारी ने 6,00,000रू. का माल जयपुर के एक व्यापारी से खरीदा जिसपर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत लगाया गया है। व्यापारी ने इस माल का 3/4 भाग 8,00,000रू. में एक पंजीकृत व्यापारी को राजस्थान में बेच दिया इस पर सीजीएसटी 12 प्रतिशत तथा राज्यजीएसटी 6 प्रतिशत वसूल की। शेष माल 1,00,000रू. में मध्यप्रदेश के एक व्यापारी को बेच दिया इस पर आईजीएसटी 14 प्रतिशत वसूल की। देय कर की गणना कीजिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com